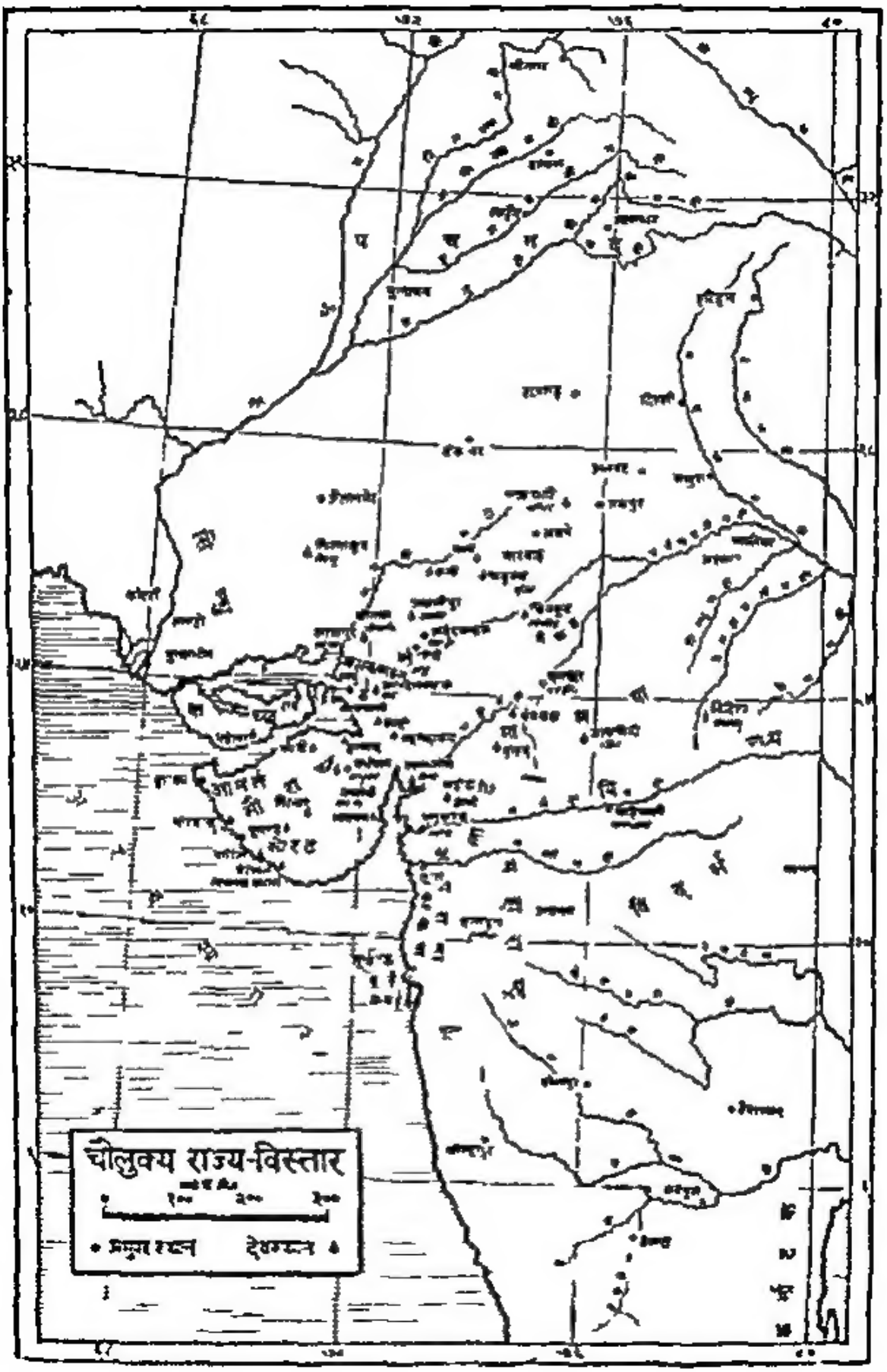
चोलुक्य राज्य-विस्तार

- जिनकी कभी सेवा-शुश्रूषा न कर सका—
- बचपनके नटखटपनके कारण जिन्हें सदा दुखी किया—
- जिनका चित्र हृदय पटलपर अंकित किया करता हूँ—
- जिनके प्यार-पुचकारके लिए जी मचल उठता है—
- जिनके अन्तिम दर्शन और आशीर्वादसे वंचित रहा—

उन्हीं पूजनीया स्वर्गीय माताजीके
श्रीचरणोंमें यह कृति
श्रद्धया समर्पित है

—लक्ष्मीशंकर व्यास

प्रास्ताविक

इतिहासके प्रतिभावान अध्येता, उदीयमान साहित्यिक और अनुभवी पत्रकार श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए० (ऑनर्स)का प्रस्तुत ग्रन्थ 'चौलुक्य कुमारपाल' एक ख्याति-लब्ध रचना है। क्योंकि उत्तर प्रदेशीय सरकारने इस रचनाका इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि पाण्डुलिपिके आधार-पर ही इसे पुरस्कृत किया है।

पुस्तककी मुख्य उपादेयता इस बातमें है कि यह भारतीय इतिहासके एक ऐसे महिमावान व्यक्तिके कार्यकलापका अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसकी गणना हमारे देशके महानतम सम्राटों और राष्ट्र-निर्माताओंमें होती है। चौलुक्य कुमारपाल अपनी महानताओंके आधारपर चन्द्रगुप्त मौर्य अशोक और हर्षवर्द्धनके समकक्ष हैं। चौलुक्य कुमारपाल सम्बन्धी इतिवृत्तको आवलित और योजित करनेके लिए श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने इतिहासके सभी प्रामाणिक मूल आधारों और उपादानोंका विधिवत् गहन अध्ययन किया है—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके दर्जनों ग्रन्थ, बीसियों शिलापट्ट और उत्कीर्ण लेख, देशी विदेशी विद्वानों द्वारा लिखित पचासों ग्रन्थ, और अनेकों मन्दिरों तथा विहारोंके शताधिक खण्डावशेष। जिन-जिन विद्वानोंने इस ग्रन्थको देखा है, वे श्री व्यासके परिश्रम, प्रबुद्ध अवलोकन, निष्पक्ष आकलन और वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावित हुए हैं। इसके अति-रिक्त विचारोंकी क्रम-बद्धता, और शैलीकी सरलता पाठकको उस खोजसे बचाते हैं, जो खोजकी पुस्तकोंमें यास-अनायास आ पैठती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके ग्रन्थोंमें प्रायः इस मान्यतापर बल दिया जाता रहा है कि हिन्दू साम्राज्यकी एक छत्र बड़ी इकाईका अन्तिम स्वामी सम्राट् हर्षवर्द्धन था, जिसकी मृत्यु सन् ६४७ ई०में हुई। हर्षवर्द्धनके बाद भारतीय राष्ट्रका झंडा शासकीय मेरुदंडसे जो गिरा तो गिरा ही रहा। एकके बाद दूसरे विदेशी दल और वंश आये-गये तथा हमारी धरा और ध्वजको रौंदते रहे—अरब, तुर्क, पठान, मुगल, अंग्रेज! लगभग १३ शताब्दियों बाद, १५ अगस्त १९४७को ही, हमारा राष्ट्रध्वज फिर एक बार स्वतन्त्रताके वायुमंडलमें लहरा पाया है।

पराधीनताकी इन १३ शताब्दियोंके लम्बे व्यवधानमें क्या सचमुच ही हमारा राष्ट्र पराशायी होकर अचेत पडा रहा ? क्या यह कल्पना सच है ? चौलुक्य कुमारपाल पुस्तक शताब्दियोंकी लम्बी खाईको कुछ इस तरह भरती है कि हम हर्षके बादकी ६ शताब्दियोंके ध्वंसपर निर्मित नई खोज और नई प्रतीतिके ठोस धरातलपर पहुँच जाते हैं। जहाँ हमें १२वीं शताब्दीकी उस गरिमासे साक्षात्कार होता है जो हमारे राष्ट्रकी सतत प्रवाहमयी जीवनी शक्तिका ज्वलंत प्रमाण है।

जब हम सोचते हैं कि चौलुक्य कुमारपालने देशके ह्रासोन्मुख वातावरणकी तमसावृत छायामें अपने ३० वर्षके शासनकालमें साम्राज्यका इतना विस्तार किया कि तुर्किस्तानसे मालवदेश तक तथा काठियावाडसे कन्नौज तकके प्रदेश उसके आधीन हो गये तो हम उसकी शासन-योग्यता और अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होते हैं। कुमारपालकी साम्राज्य-परिधिमें कोकण, कर्नाटक, लाट गुजर, सौराष्ट्र, कच्छ सिन्धु उच्चा, भम्भरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, कीर, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर महाराष्ट्र इत्यादि १८ प्रदेश सम्मिलित थे। और जब हमें इस बातका बोध होता है कि कुमारपालका ३० वर्षका शासनकाल उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वह ५० वर्षका हो चुका था तो हम उसकी अप्रतिम क्षमतापर आश्चर्य चकित हो जाना पडता है। वास्तविक विस्मयकी बात तो इस महाप्राण मानवका सारे-का-सारा जीवन ही है जो दुर्दम संघर्ष, अप्रतिहत प्रेरणा और अक्षय आस्थासे ओतप्रोत है। अग्नि और प्रभंजनका यह दीप्तिपुंज कहाँसे उठा, कहाँ-कहाँ पहुँचा और कहाँ-कहाँ मँडराया ! किस प्रकार इसकी प्रतिभाके निर्माणकारी विस्फोटने दिग्दिगन्तको आगत-अनागतकी सुदूरवर्ती सीमाओं तक आलोकित कर दिया है ! उडती हुई विहंगम दृष्टि डालकर देख।

कुमारपाल राजकीय कुलमें जन्मा तो किन्तु इस अभिशापके साथ कि उसके प्रपितामह भीमदेवने जिस बकुलादेवीको वरण करके कुमारपालके वंशकी परम्परा डाली थी, वह बकुलादेवी एक नर्तकी थी। कुमारपालके ताऊ सिद्धराज जयसिंहके सन्तान न थी। अतः स्पष्ट था कि जयसिंहके उपरान्त राज्य कुमारपालको मिलेगा। जयसिंहको यह अनुकूल नहीं जँचा कि उसका राज्य ऐसे भतीजेके हाथमें जाय जिसकी शिराओंमें नर्तकी-

का रक्त है। लिपिबद्ध परम्परा साक्षी है कि जयसिंहने यहांतक चाहा कि कुमारपालकी जीवन-बेलि सदाके लिए निर्मूल कर दी जाये। कुमारपाल अपने भविष्यके प्रति सशक हो गया और अपने बहनोई कृष्णदेवकी सहायता-से वह अनहिलवाडा छोडकर भाग खडा हुआ। जयसिंहकी इसी दुरभि-सन्धिकी भूमिकामेंसे कालान्तरमें कुमारपालकी अभिवृद्धिकी लता फूटी! पलायनके इसी क्षणसे कुमारपालने जगत् और जीवनकी खुली पोथीसे ज्ञानसचय प्रारम्भ कर दिया। वडौदा, भडौच, कोल्हापुर, कल्याण, दक्षिणदेश, प्रतिष्ठान, मालवा आदि नाना देशो और नाना वेशोमें घूम-फिरकर कुमारपालने अनेक ज्ञानियो, साधुओ, राजाओ, मन्त्रियो और सैनिक भटोसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कष्ट भी अनेको झेले, क्योकि सिद्धराज जयसिंहके गुप्तचर बराबर पीछा कर रहे थे। कुमारपालने प्रवासमें रहते हुए अपनी जन्मभूमिसे भी बराबर सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न किया। यहांतक कि एक बार जब वह स्वय साधुवेशमें अलहिणपुर पहुँचा तो जयसिंहको गुप्तचरो-द्वारा सूचना मिल गई। उस दिन जयसिंहके पिता कर्णदेवका श्राद्ध-दिवस था। जयसिंहकी आज्ञा हुई कि नगर-देहातके समस्त साधुओको तत्काल निमन्त्रित किया जाये, कोई छूटने न पाये। कुमारपालको भी साधुओकी पक्तिमे आ खडा होना पडा। जयसिंह बारी-बारीसे सबके चरण धोता और हाथपर दक्षिणा रखता। जब कुमार-पालके पास पहुँचा तो चरणोकी कोमलता और करतलकी रेखाओने कुमार-पालका आभिजात्य व्यक्त कर दिया। सकेत हो गया कि अनुष्ठानकी समाप्तिपर इस साधुको 'अतिथि' बना लिया जाये। कुमारपाल भी सचेत थे। अब सोचिये उस साहसको और प्रत्युत्पन्न बुद्धिको जिसके द्वारा कुमारपाल उस प्राणान्तक सकटसे बच्च भागे होगे।

कुमारपालके जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ है जहाँ प्राणोकी सकटमय स्थिति प्राप्त होनेपर उसने अपने अपराजित शौर्य तथा युक्तिदक्षतासे ऐसी स्थितियोका निराकरण किया है। इस प्रकारकी सकटमय स्थिति एक बार उस समय आई जब कुमारपालने शासनका श्रीगणेश ही किया था। राज्य प्राप्त होते ही कुमारपालने सारी सत्ताको अपने व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित कर दिया कि सामन्तोकी स्वेच्छा-चारिताको प्रतिबन्धोसे सीमित होना पडा। योजना बनी कि जिस समय राजाकी सवारी निर्दिष्ट द्वारपर

आये, नियुक्त हत्यारे उसपर टूट पडे। पर हत्यारोंको यह अवसर न मिल पाया, क्योंकि मालूम नहीं किस प्रेरणा या किस चर-व्यवस्थासे प्रभावित होकर कुमारपालने हाथीका मुंह दूसरे द्वारकी ओर उन्मुख कर दिया था। कुमारपालका अनलोद्धत व्यक्तित्व अनेक समकालीन राजाओंके लिए भी ईर्ष्याका कारण बन गया था और भागी हो गया था। एक ओर सपादलक्षके चौहान राजा अर्णोराज वर्तमान नागौरकी ओरसे चढाई की तो दूसरी ओरसे उज्जैनके राजा बल्लालने और तीसरी ओरसे चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने आक्रमण कर दिया। इस षड्यन्त्रमें कुमारपालका प्रधान सैनिक बहड भी सम्मिलित हो गया, जिसकी शरताका एक विशिष्ट अंग यह था कि उसकी दहाडसे हाथी विचलित हो जाते थे। यहाँ तक कि कुमारपालका निजी हाथी कलहपंचानन भी उस दहाडसे विकल हो उठता था। बहड ने कुमारपालके महावत कलिंगको भी लोभ देकर फोड लिया। योजना निश्चित हुई कि युद्धक्षेत्रमें बहडकी दहाड सुनकर जब कुमारपालका हाथी कलहपंचानन रोषसे आगे बढेगा तो महावत कलिंग ऐसी स्थितिमें हाथीको ले आयेगा कि बहड अपने हाथीपरसे कूदकर कुमारपालके हाथीपर चढ आये और कुमारपालका वध आसानीसे संभव हो जाय। पर, यह सब संभव न हो पाया, क्योंकि जब युद्धक्षेत्रमें बहडका हाथी कुमारपालके हाथीके मुकाबलेमें आया और बहडने ज्योंही छलांग मारकर कुमारपालके हाथीपर आना चाहा तो पाया कि कुमारपालका हाथी पीछे हटा लिया गया था क्योंकि कलिंगका स्थान किसी दूसरे महावतने ले लिया था, और बहडकी दहाडको लक्ष्य करके प्रतिरक्षा रूपमें हाथीके कानोंपर पट्टी बँधी हुई थी। बहड दो हाथियोंके बीच आकर कुचला गया और कुमारपालकी विजय हुई।

वीरत्व तो मानो कुमारपालकी धमनियोंमें प्रवाहित था। जयसिंहकी मृत्युके बाद जब राजसिंहासनके दो प्रतिद्वन्द्वियोंमेंसे एकका चुनाव होना था तो परिषद्के संचालक-द्वारा यह प्रश्न पूछे जानेपर कि राज्यकी रक्षा किस नीति-द्वारा होगी, जहाँ कुमारपालके प्रतिद्वन्द्वीने विनीत भावसे यह कहा था कि 'जिस प्रकार आप नीति-निपुण महानुभाव मार्ग-दर्शन करेंगे' वहाँ तेजस्वी कुमारपालने स्फूर्तिसे खड़े होकर, छाती तानकर, उक्त प्रश्नके उत्तरमें अपनी तलवार ऊँचे उठा दी थी और कहा था 'राज्यकी रक्षा मेरी भुजाओंके बलपर आश्रित यह तलवार करेगी।' इसी

वीरत्वका दूसरा पहलू था आत्मसम्मान जो कभी-कभी अत्यन्त कठोर रूपमें व्यक्त होता था। कुमारपालका वीरत्व राज्यके प्रति अपमान भावको तो क्या व्यंग्य को भी नही सह्न कर पाता था। कुमारपालके बहनोई जिस कृष्णदेवने उसकी पग-पगपर सहायता की थी, यहाँ तक कि उसे राजगद्दी दिलवाई थी, उस कृष्णदेवको कुमारपालने इसलिए प्राण-दण्ड दे दिया कि वह कुमारपालको बार-बार व्यंग्य बाणोंसे आहत करता था और उसकी पूर्वावस्थाकी खिल्ली उडाया करता था। 'दीपकको मैंने जलाया है, इसलिए क्या उसमे मुझे अपनी उँगली दे देनेकी धृष्टता करनी चाहिए?' यह तथ्य कृष्णदेवने न समझा, इसीलिए दीपककी ज्वालाने उसे भस्म कर दिया। एक और घटना लीजिए। कुमारपाल-द्वारा बार-बार वर्जन करनेपर भी कोंकणका राजा मल्लिकार्जुन अपने लिए 'राज्यपितामह'की उपाधि प्रयुक्त करता रहा। अन्तमें एक दिन यह होकर ही रहा कि कुमारपालके सेनापति अम्बडने मल्लिकार्जुनके छिन्न सिरको स्वर्णपत्रम लपटकर श्रीफलकी भांति कुमारपालकी सेवामें उस समय प्रस्तुत किया जब ७२ राजा राजसभामें उपस्थित थे। कुमारपालकी दृष्टि इतनी तल-स्पर्शी थी और न्यायबुद्धि इतनी कठोर कि शासनके अग-उपागोंको सदा ही स्वस्थ और तत्पर रहना पडता था। कोई भी कही चूका और कुमारपालकी कठोर दृष्टि उसपर पडी। 'राजघट्टा' चहड इसका उदाहरण है। जिस चहडका ऊपर उल्लेख हो चुका है, उसका छोटा भाई चहड सदा ही कुमारपालका आज्ञानुवर्ती रहा। चहडके सेना-पतित्वमें साभरपर इसलिए चढाई की गई कि साभर राज्यकी सेनाएँ कुमारपालके प्रतिपक्षियोंकी सहायता करती थी। चहडने साभरको जीत तो लिया किन्तु अत्यधिक व्ययके उपरान्त। कुमार-पालका आदेश हुआ कि चहडको 'राजघट्टा'की उपाधि दी जाये! दण्डविधानके इतिहासमें कुमारपालकी यह सूझ भी अविस्मरणीय होनी चाहिए।

महान् व्यक्तियोंका चरित्र एकागी नही होता। कुमारपाल कूट-नीतिके क्षेत्रमें जितना कठोर था, जीवनके धरातलपर वह उतना ही सहृदय और कोमल भी! कुमारपालके वैचित्र्यपूर्ण चरित्रका अनुमान इस बातसे लग जायगा कि जिस 'पितामह'की उपाधि-प्रयोगकी उद्दडताके फल-स्वरूप

मल्लिकार्जुनको प्राणोंसे हाथ धोना पडा, वही 'पितामह'-उपाधि कुमारपालने उस वणिक सुभट अम्बडको प्रदान कर दी, जिसकी लपलपाती तलवारने मल्लिकार्जुनके सिरका कमल-पुष्पकी भाँति काट दिया था। शासन-सचालनकी सुचारता और राजकीय सगठनकी दृढताके लिए कुमारपालने जो व्यवस्था की थी, वह इतनी पूर्ण व्यापक तथा निर्दोष है कि उसमें आजकी गणतनात्मक आधुनिकताका आभास मिलता है। पुस्तकमें यथास्थान इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

कुमारपालके जीवनमें यदि हमने सघर्ष, पराक्रम, कूटनीति, शासकीय योग्यता और विजय ही देखी तो मानना चाहिए कि हमने उसकी महानता और सफलताका अधिकाश उपेक्षित कर दिया। कुमारपालकी महानता इस बातमें है कि उसने राजनीतिको कठोर वस्तुस्थिति और यथार्थके आधारपर सचालित करते हुए भी, प्रजाके व्यावहारिक जीवनको सामूहिक अहिंसा, जीवदया, करुणा और चरित्र-गत निर्मलताके आधारपर स्थापित किया। स्वय जैन धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने राज्यमें इतनी उदार सहिष्णुता बरती कि प्रजाका मन मोह लिया। यही कारण है कि उसके नामके साथ जहाँ एक ओर जैन धर्म-सूचक 'परम भट्टारक' और 'आर्हत' उपाधियोंका प्रयोग होता है, वहाँ दूसरी ओर अनेक शिला-लेखोंमें उसे 'उमापति-वरलब्ध' की उपाधिसे भी स्मरण किया गया है। वास्तवमें गुजरातकी सास्कृतिक परम्परामें यह बात सहज-सिद्ध हो गई थी कि वहाँ जैन धर्म और शैव धर्म साथ-साथ रहते थे और फलते फूलते थे। यो तो शिव और शैव धर्म, अपने प्राचीन-तम मूल रूपमें जिन और 'जिन धर्म'के ही परिवर्तित रूप हैं, किन्तु कालान्तरके अति परिवर्तित रूपमें भी और दक्षिण भारतके रक्त रजित धार्मिक सघर्षोंके दिनोंमें भी गुजरातने दोनों धर्मोंकी पारस्परिक सहिष्णुताको प्राय अक्षुण्ण रखा है।

हमारे आजके युगमें महात्मा गाधी-जैसी सर्व धर्म सहिष्णु, अहिंसो पासक विभूतिका गुजरातमें ही प्रादुर्भाव होना कोई आकस्मिक घटना नहीं। ऐसे अशेष मानवतावादी राजनीति नियता ऋषिको जन्म देनेकी पात्रता गुजरातकी ही सस्कृति-पूत गौरवमयी धरामें विशेष रूपसे थी। प्रागैतिहासिक कालके परमयोगी कृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ, १२वी शताब्दीके राजर्षि कुमारपाल और २०वी शताब्दीके महात्मा गाँधी

एव ही विशिष्ट सास्कृतिक परम्पराके अविच्छिन्न अग हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ कुमारपालकी ऐतिहासिक महत्ता और उसके जीवनकी गौरव-गरिमाका बखान करता है, किन्तु वास्तव बात यह है कि कुमारपाल स्वय एक महत्तर ज्योतिपुजकी छाया मात्र है। वह तो एक कण है जो किसी प्रचड प्रतिभाके लीला-विलाससे धरापर छिटक पडा है। उस ज्योतिपुज और मूर्त प्रतिभाका नाम है—आचार्य हेमचन्द्र जिन्हे 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनके सम्बन्धमें कहा गया है :—

> "क्लृप्त व्याकरण नवं विरचित छन्दो नव द्व्याश्रया-
> ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटित श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
> तर्कः सजनितो नवो जिनवरादीना चरित्रं नव
> बद्ध येन न केन के न विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

आचार्य हेमचन्द्रकी जिस विचक्षण प्रतिभा द्वारा प्रसूत नये-नये प्रणयनोका सकेत ऊपरके श्लोकमे दिया गया है उनकी सक्षिप्त सूची इस प्रकार है —

व्याकरणग्रन्थ—सिद्ध हेम व्याकरण, सिद्ध हैम लिंगानुशासन, धातुपरायण।
शब्दकोश—अभिधानचिन्तामणि, अनेकार्थसग्रह, निघटुकोप, देशी नाममाला
अलकारग्रन्थ—काव्यानुशासन छन्दग्रन्थ—छन्दोनुशासन
काव्यग्रन्थ—सस्कृत, प्राकृत द्वयाश्रयकाव्य
जीवनचरित्र—त्रिपष्टिशलाका पुरुपचरित्र
दर्शन-योग ग्रन्थ—प्रमाणमीमासा, योगशास्त्र

इतना ही नही। आचार्य हेमचन्द्रकी गणना भारतके महानतम ज्योतिपियोमें होती है। राजनीति और कूटनीतिके तत्त्वोका ज्ञान भी उनका इतना विशाल और उन तत्त्वोके सफल प्रयोगकी जन्मजात प्रतिभा भी इतनी अद्भुत थी कि देखकर चकित हो जाना पडता है। उनका जीवन सर्वथा अकिंचन, नि स्व, तप पूत और कल्याण-विधायक था ही। मनमें एक कल्पना उठती है। आचार्य चाणक्यकी प्रतिभाको धर्मकी प्रेरणासे परिचालित करके, अपार ज्ञान और दर्शनकी बहुमुखी उपलब्धियोसे पूरित करके एव अद्भुत भव्यताके आलोकसे परिवेष्टित करके जिस प्रणम्य पुरुपकी कल्पना हम करेंगे वह सम्भवतया आचार्य हेमचन्द्रके व्यक्तित्वकी झलक दिखा सके। इन्ही आचार्य हेमचन्द्रका वरदहस्त

कुमारपालके शीषपर सदा रहा है। इन्हींके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कुमारपालने अपने राज्यमें हिंसाका निषेध किया; द्यूत, मांसाहार, मृगया आदि व्यसनोंसे पराङ्मुख होनेकी प्रेरणा प्रजाको दी। निःसन्तान पुरुषकी मृत्युके बाद उसका धन-धाम राजकोषमें चले जानेकी परम्परागत नीतिके कारण विधवाओंकी जो दुर्दशा होती थी, उससे द्रवित होकर कुमारपालने उस प्रथाको बन्द करवाया। कुमारपालने प्रजाकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया; औषधालयों, देवालयों, पान्थशालाओं और कूप-तड़ागोंका निर्माण करवाकर जनताको अनेक प्रकारकी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं। कुमारपालके शासनमें न कभी दुर्भिक्ष पड़ा, न कोई महामारी संघातक रूपसे फैली। अभिनव साहित्य-सृजन, कलात्मक निर्माण, सांस्कृतिक अभ्युत्थान, आर्थिक संवर्धन, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजारंजन आदि सभी दिशाओंमें कुमारपालके शासनकी सफलता परिलक्षित होती है।

विद्वान् लेखकने समस्त इतिवृत्तको अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया है। यदि परम्परागत ग्रन्थ-सन्दर्भों एवं प्रचलित जन-श्रुतियोंके आधारपर कहीं किसी ऐसी प्रतीतिका रसोद्रेक हो गया हो जो इतिहासके शुष्क ठोसपनको मांसल बनाता हो तो लेखक और ग्रन्थमाला-सम्पादक आलोचकोंकी सहानुभूति चाहेंगे। इतिहासकी नई लीक डालनेवालोंके लिए जो व्यक्ति श्रमिकोंके अग्रिम दलकी भाँति रास्ता साफ करनेका काम करे, उनपर उतना ही तो उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जितनी उनकी क्षमता हो।

इतनेपर भी हम आश्वस्त हैं कि भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रकाशन इतिहासवेत्ताओं और साधारण पाठकोंकी दृष्टिमें उसी प्रकार समादृत होगा, जिस प्रकार उत्तरप्रदेशीय सरकारकी दृष्टिमें हुआ है।

लखनऊ
शरत् पूर्णिमा
१९५४

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थ माला

विषय-क्रम

आमुख १५
भूमिका १७-२४

प्रथम अध्याय

इतिहासकी आवश्यक सामग्री २५-४४
संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य २८
उत्कीर्ण लेख ३४
स्मारक ३६
मुद्राएं ४०
विदेशी इतिहासकारोंके विवरण ४२
विभिन्न सामग्रियोंपर एक दृष्टि ४३

द्वितीय अध्याय

वंशकी उत्पत्ति और इतिहास ४५-७२
उत्पत्तिका अग्निकुल सिद्धान्त ४६
चुलुक सिद्धान्त ५०
हेमचन्द्रका अभिमत ५३
चौलुक्यवंशका मूलस्थान ५४
वंशका संस्थापक मूलराज ५५
चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश ६०
मूलस्थान उत्तर भारत ६२
वंशावली ६४
तिथिक्रम ६८
कुमारपालके सम्बन्धी ७१

तृतीय अध्याय

प्रारम्भिक जीवन तथा शिक्षा दीक्षा	७३-८६
शिक्षा-दीक्षा	७६
कुमारपालके प्रति सिद्धराजकी घृणा	७७
कुमारपालका अज्ञातवास	७८
हेमाचार्यसे मिलन	७९
प्रभावकचरित्रमें कुमारपालका प्रारंभिक जीवन	८१
कुमारपालका भ्रमण और जिनमंदन	८२
मुस्लिम इतिहासकी साक्षी	८४
उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण	८८

चौथा अध्याय

कुमारपालका निर्वाचन और राज्याभिषेक	८७-१००
सिंहासनके लिए निर्वाचन	८९
राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव	९०
कुमारपालका राज्याभिषेक	९४
कुमारपाल द्वारा उपाधि धारण	९८

पाँचवाँ अध्याय

सैनिक अभियान और साम्राज्य विस्तार	१०१-१२७
चौहानोंके विरुद्ध युद्ध	१०७
कुमारपालका सैनिक संघटन	१०८
अरुणोराजाकी पराजय	११०
साहित्य और शिलालेखोंमें वर्णन	१११
मालव विजय	११३
परमारोंके विरुद्ध युद्ध	११६
कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष	११७
काठियावाड़पर सैनिक अभियान	१२०

अन्य शक्तियोंसे संघर्ष १२१
गौरवपूर्ण विजयोंका क्रम १२३
कुमारपालकी राज्यसीमा १२४
चौलुक्य साम्राज्य चरम सीमापर १२६

छठा अध्याय

राज्य और शासन व्यवस्था १२९-१८०
राष्ट्रका स्वरूप १३२
नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता १३३
राज्यमें कुलीनतन्त्र १३४
सामन्तवादका अस्तित्व १३५
आभिजात तन्त्रकी प्रमुखता १३७
नागर शासन व्यवस्था १३९
केन्द्रीय सरकार १४१
राजा और उसका व्यक्तित्व १४१
राजाके कर्त्तव्य १४३
शासनपरिषदका अध्यक्ष १४५
सैनिक कर्त्तव्य १४६
वैचारिक कर्त्तव्य १४६
अन्य विभिन्न कर्त्तव्य १४७
राजा नियन्त्रित या अनियन्त्रित १४७
मन्त्रि-परिषद् १४८
मन्त्री और उनका स्वरूप १५०
केन्द्रीय सरकारका संघटन १५२
दंडाधिपति १५४
देशरक्षक १५५
महामंडलेश्वर १५५

अधिष्ठानक १५६
सान्धिविग्रहिक १५६
विषयक १५६
पट्टाकिल १५७
दूतक तथा महासपटलिक १५७
राणक तथा ठाकुर १५७
प्रान्तीय सरकार १५८
मडल १५८
विषयक तथा पाठक १५९
केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारका सगठन १६१
स्थानीय स्वायत्त शासन १६२
आर्थिक व्यवस्था पद्धति १६४
न्याय विभाग १६८
जननिर्माण विभाग १७१
सेना विभाग १७४
परराष्ट्रनीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध १७८

सातवा अध्याय

आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था १८१ २०८
ब्राह्मणोकी वस्तिया १८५
ब्राह्मणवादका पुनरोदय १८७
राजनीतिके क्षत्रमें ब्राह्मण १८९
वैश्योका उदय १९०
विवाह सस्था १९३
सामाजिक रीति और रिवाज १९५
आर्थिक अवस्था १९७

उद्योग और धन्धे १९९
भोजन, वस्त्र और अलंकार २००
चौलुक्यकालीन सिक्के २०३
मनोरंजन और खेलकूदके साधन २०५

आठवाँ अध्याय

धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था २०९-२३६
शैवमतका प्राधान्य २१३
जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष २१५
हेमचन्द्र और कुमारपाल २१७
शिलालेखोंकी साक्षी २१९
जैन समारोहोंका आयोजन २२०
कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ यात्रा २२२
कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा २२२
जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा २२५
अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २२७
धार्मिक सहिष्णुताकी भावना २२९
नवीन युगका समारम्भ २३२

नौवाँ अध्याय

साहित्य और कला २३७-२५५
हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियाँ २४१
सोमप्रभाचार्य और उनकी रचनाएं २४२
राजसभामें विद्वानमंडली २४३
भाषा, साहित्य और शास्त्रोंकी रचना २४४
कला २४९
वास्तुकला २४७
सोमनाथका मन्दिर २४९

शिल्पकला २५२
चित्रकला २५३
नृत्य और संगीत २५४

दसवां अध्याय

महान् चौलुक्य कुमारपाल २५७-२७२
महान् विजेता २६०
महान् निर्माता २६१
समाज सुधारक २६२
साहित्य और कलासे प्रेम २६३
कुमारपालका निधन २६४
कुमारपालका उत्तराधिकारी २६५
कुमारपालका इतिहासमें स्थान २६६
कुमारपाल और सम्राट् अशोक २६८

परिशिष्ट
सहायक ग्रंथोंकी सूची २७३
अनुक्रमणिका २७६-२८७

ग्रंथमें व्यवहृत संक्षिप्त नाम

ए० के० के० : एंटीक्यूटीज आव कच्छ एंड काठियावाड।
ए० ए० के० : आइन-ए-अकबरी।
ए० एस० आई० डब्लू० सी० : आर्केलाजिकल सर्वे इंडिया वेस्टर्न सर्क०।
बी० एच० जी० : बेली हिस्ट्री आव गुजरात।
बी० जी० : बम्बई गजेटियर।
बी० पी० एस० आई० : प्राकृत एंड संस्कृत इन्सक्रिप्शन्स।
डी० एच० एन० आई० : डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नारदरन इंडिया।
आर० ए० आर० बी० पी० : रिवाइज्ड एंटीक्वेरियन रिमेन्स बाम्बे प्रेसि०।
एच० एम० एच० आई : हिस्ट्री आव मेडिवियल हिन्दू इण्डिया।

आमुख

भारतीय इतिहासके समुचित निर्माणके लिये दो बातें बहुत ही आवश्यक हैं—(१) विभिन्न प्रदेशों और स्थानोंके इतिहासमें विस्तृत और प्रमाणिक अनुसंधान और शोध तथा (२) भारतीय इतिहासके प्रमुख महापुरुषों और व्यक्तियोंके चरित्र तथा इतिहासका विशद वर्णन और विवेचन। इन दोनों क्षेत्रोंमें जितना ही अधिक कार्य होगा देशका इतिहास उतना ही पूर्ण और विश्वसनीय लिखा जा सकेगा। चौलुक्य कुमारपालका इतिहास इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण प्रणयन है। विशेषकर हिन्दी भाषामें इस प्रकारके ग्रंथोंकी अभी तक कमी है और प्रस्तुत ग्रंथ इस अभावकी पूर्ति करता है।

इतिहास-लेखनमें दृष्टि और पद्धतिका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इतिहासके उद्देश्य, क्षेत्र, सीमा और परिधिमें इधर बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। जागरूक लेखक ही सफल इतिहासकार हो सकता है। प्रस्तुत लेखककी चेतना इस दिशामें जागृत है। उन्होंने इतिहासके मूल उद्देश्य—अतीतका सच्चा चित्रण, आकलन तथा मूल्यांकन—को सामने रखकर तथ्योंका संकलन, चयन और परीक्षण करते हुए कलात्मक ढंगसे अपने विषयका प्रतिपादन किया है। इतिहासका कलापक्ष ही उसे मानवके लिये अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाता है। कला-पक्षके निर्वाहके साथ इस ग्रंथमें वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन किया गया है। सभी उपलब्ध सामग्रियोंका संकलन, चयन और परीक्षण निष्पक्ष भावसे हुआ है। वास्तवमें इतिहासकी यही आधारशिला है, जिसके ऊपर उसकी विशाल कलात्मक अट्टालिकाका निर्माण संभव है। लेखकने अपने इस दायित्वको भी सफलताके साथ निभाया है।

चौलुक्य कुमारपाल भारतके मध्यकालीन शासकोंमें प्रमुख थे।

गजनीके तुर्कोंके आक्रमणके प्रथम वेगसे पश्चिमोत्तर और पश्चिम भारतको काफी आघात पहुँचा था। यह राजनैतिक विशृंखलता तथा सामाजिक संकीर्णताका युग था। ऐसे समयमें कुमारपाल्न अपनी प्रतिभा, सैनिक बल, शासकीय योग्यता तथा सांस्कृतिक उदारतासे देशके स्तम्भनका बहुत बड़ा कार्य किया। युगकी सीमासे बाहर निकलना उनके लिये संभव नहीं था, फिर भी उनका जीवन और उनके कार्य कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे पुरुषके जीवन और कार्यों और उसके युगकी प्रवृत्तियोंका चित्र प्रस्तुत कर लेखकने महत्त्वका कार्य किया है और वे हमारे साधुवादके पात्र हैं। यह ग्रंथ विद्वन्मण्डली तथा जनतामें समान रूपसे अभिनन्दनीय है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
आषाढ शुक्ल ७,
सं० २०११ वि०

राजबली पाण्डेय
एम०ए०, डी०लिट्
प्रिंसिपल, इण्डोलाजी कालेज तथा
अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति

भूमिका

भारतके मध्यकालीन इतिहासमें महाराजाधिराज परमभट्टारक चौलुक्य कुमारपालका विशिष्ट महत्त्व है। सम्राट् हर्षवर्द्धनके पश्चात् चौलुक्य कुमारपाल बारहवीं शतीमें भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् हुए, जिन्होंने पश्चिमोत्तर तथा पश्चिमी भारतकी व्यापक राज्यसीमामें एक शासनसूत्र और सार्वभौम राजतन्त्रकी स्थापना की। मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें इतनी बृहत् और विशाल राजनीतिक इकाई एक शासकके अधीन पुनः दृष्टिगत नहीं होती। चौलुक्य कुमारपालकी राज्यसीमा आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, दक्षिण राजपूताना, मालवा और सिन्ध तक विस्तृत थी। तुर्क-आक्रमणोंके परिणामस्वरूप कालान्तरमें जो पराधीनता आयी, उसके पूर्व भारतीय गौरव, शौर्य, वैभव और विपुलताकी अन्तिम झाँकी, इसी कालमें दृष्टिगोचर हुई। वस्तुतः इस समय चौलुक्य साम्राज्यका विस्तार चरमसीमापर पहुँच गया था।

कुमारपालका राजत्वकाल (सन् ११४२–११७३ ईस्वी) तथा उसका युग साम्राज्य-विस्तार अथवा सफल सैनिक अभियानोंकी शृंखलाके ही कारण महत्त्वपूर्ण हो, ऐसी बात नहीं। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक सभी दृष्टियोंसे उसकी विशेष महत्ता है। यथार्थतः कुमारपालका शासनकाल और युग, देशमें नवीन राष्ट्रीय चेतना, नव सामाजिक सुधार, कलापूर्ण निर्माण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरणके युगारम्भकी दृष्टिसे, भारतीय इतिहासमें विशिष्ट स्थान रखता है। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भारतमें तुर्क-आक्रमणोंके प्रथम प्रहारसे जो राजनैतिक विशृंखलता व्याप्त हो गयी थी, उसे दूर करनेमें कुमारपाल बहुत अंशों तक सफल हुआ। यही कारण था कि उसके

उत्तराधिकारियोंने गोरीके गुजरातपर आक्रमणका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर उसे पराजित किया। इस कालमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंका सुव्यवस्थित संघटन था तथा प्रशासनके विविध अंगोंकी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी।

धर्म और संस्कृतिके अभ्युत्थानकी दृष्टिसे भी इस युगका कुछ कम महत्त्व नहीं। जैन धर्मका अभिनव प्रवर्तन और प्रचार इस युगकी विशेष घटना है। जैनधर्मका यह उत्कर्ष किसी कटु भावनाके साथ नहीं, अपितु अद्भुत एवं असाधारण धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना-सहित हुआ। गुजरातमें इस समय जैनधर्मके साथ शैव तथा अन्य सम्प्रदायोंकी भी उन्नति होती रही। जैनधर्म भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अंग हो गया। इसने देशके कोटि-कोटि जनोंके संस्कारों विचारोंको शताब्दियों पर्यन्त प्रभावित किया। छ सौ वर्षोंके पश्चात् पश्चिमी भारतके इसी भूखण्डमें, महात्मा गान्धी जैसी युगावतार भारत विभूतिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसने देशमें अपने अहिंसा सिद्धान्तसे अभिनव क्रान्तियाँ और राष्ट्रका कायापलट कर दिया। देखा जाय तो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें, अहिंसा सिद्धान्तके इस नूतन प्रयोग एवं विकास-परम्पराका बहुत कुछ श्रेय, बारहवीं शताब्दीमें हुए इस धार्मिक-सांस्कृतिक अभ्युत्थानको ही है।

सामाजिक नवजागरणमें चौलुक्य कुमारपालका शासनकाल एक नवीन सन्देशका वाहक रहा है। इस समय समाजमें प्रचलित हिंसा, मद्यपान, मांसाहार, द्यूत आदि व्यसनोंपर कठोर नियम बनाकर नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लगाये गये जो आधुनिक जनसत्तात्मक सरकारों जैसे प्रगतिशील विधानोंसे अद्भुत साम्य रखते हैं। कुमारपालने मृतधनापहरण नियमका निषेध किया जिसके द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो जाता था। आर्थिक दृष्टिसे यह काल, वैभव सम्पन्नता और समृद्धताका युग था। गुजरात, काठियावाड और कच्छके बन्दरगाहोंमें आयात निर्यात व्यापारके निमित्त, देश विदेशके व्यापारिक पोत आते

थे। चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी, इस समय संसारके व्यापारका केन्द्र बनी हुई थी। देशमें शान्ति और सम्पन्नताके फलस्वरूप इस समय भव्य मन्दिरों तथा विशाल जैन विहारोके प्रचुर संख्यामें निर्माण हुए, जिनके अवशेष आज भी स्थापत्य और शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन हैं। आबूके ससार-प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसी युगकी निर्माणकलाके नमूने हैं। विमलशाह (सन् १०३१ ई०) और तेजपाल (सन् १२३० ई०) द्वारा निर्मित आबू पहाड़पर श्वेत सगमरमरके मन्दिर चौलुक्यकालीन शिला-सौन्दर्य और स्थापत्य-कलाके चरम विकासके सजीव उदाहरण हैं। आबू पर्वतपर इन मन्दिरोंके निर्माणके लिए शिलाखण्डो तथा अन्यान्य साधनोंका एकत्रीकरण और निर्माण, इस युगकी असाधारण निर्माण-दक्षता तथा शिल्प-कौशलके परिचायक हैं।

कुमारपालने सैकड़ों मन्दिरो तथा विशाल विहारोका निर्माण कराया, जिनमेंसे अनेक आज भी विद्यमान हैं। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर-का पुनर्निर्माण कुमारपालके शासनकालकी चिरस्मरणीय घटना है। इनके अवशेष आज भी उस कालकी कलाका स्मरण दिलाते हैं, जो राष्ट्रके गर्व और गौरवकी वस्तु है। चौलुक्यकालीन गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतकी विभिन्न कलानिधियां बहुत दिनों तक उपेक्षा और उदासीनताके फलस्वरूप अनादृत पड़ी हुई थी। हर्षका विषय है कि अब इनकी सुरक्षा और संरक्षणका महत्त्व समझा जाने लगा है। जैन भण्डारोमें पडी अमूल्य तथा दुर्लभ सामग्री अब प्रकाशमें आने लगी है। इस युगकी कला-कृतियां केवल गुजरातमें ही नही, अपितु राजस्थान मण्डलमे भी विस्तृत एव विकीर्ण हैं। गुजरात, मालवा, मेवाड़, पूर्व खानदेश आदिके व्यापक क्षेत्रमें इस युगकी कला-रचनाएं पायी जाती हैं। सिद्धपुर स्थित रुद्र-महालयके ध्वसावशेषमे विद्यमान, नृत्य करती हुई मूर्तियोके समान ही आकृतियां, आबूके निकट देलवाड़ाके स्तम्भोपर भी निर्मित हैं। तारंगा पहाड़ीपर कुमारपाल द्वारा बनवाये विशाल अजितनाथ मन्दिरके पृष्ठ-

भागमें बनी संगमरमरकी जालिया शिल्पकला और कौशलकी उत्कृष्टतम निदर्शन है। इसी प्रकारकी संगमरमरकी जालिया अनेक शताब्दियोंके पश्चात् सुलतानोंके कालमें बनी मसजिदोंमें भी पायी जाती है। इससे चौलुक्यकालीन शिल्पकलाकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्यके क्षेत्रमें महान् आचार्य हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल, जयसिंह सूरि आदिकी सतत साधनाने एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके अध्यायका समारम्भ किया। आचार्य हेमचन्द्रके नेतृत्व एवं निर्देशमें इस समय साहित्य निर्माणके महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इस समय लिखे प्रभूत ग्रंथोंकी ताडपत्रीय प्रति तथा पाण्डुलिपिया पाटन तथा अन्य जैन भण्डारोंमें भरी पडी है। अब इनकी सहेज-सभाल हो रही है और अनेक ग्रंथोंका प्रकाशन भी हो रहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषामें प्रभूत साहित्य निर्माणके साथ, इसी समय नागरीका जन्म एवं विकास भी हुआ। इस समय व्याकरण, नाटक, काव्य दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदि के ग्रन्थोंके प्रणयन हुए। इनमें आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणका अत्यधिक महत्त्व है।

जैन भण्डारोंसे प्राप्त ताडपत्रीय प्रतियां तथा पाण्डुलिपियोंसे इस कालमें हुई महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना तथा चित्रकलाके विकासका भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है। इन्हीं ताडपत्रीय प्रतियोंमें चौलुक्य कुमारपाल तथा आचार्य हेमचन्द्रके चित्र प्राप्त हुए है। पाटनके संघवीणा भण्डारसे प्राप्त महावीरचरित्रकी ताडपत्रीय प्रति (वि० सं० १२९४)में चौलुक्य कुमारपाल तथा जैन महापण्डित आचार्य हेमचन्द्रके लघु प्रतिकृति चित्र मिले हैं। इसी प्रकार शांतिनाथ भण्डारसे प्राप्त दशवैकालिका लघुवृत्तिकी सन ११४३ ई०की ताडपत्रीय प्रतिमें चौलुक्य कुमारपाल तथा हेमचन्द्राचार्यके लघुचित्र अंकित है। महावीरचरित्रकी प्रतिमें हेमचन्द्राचार्य अपने शिष्योंके मध्य सिंहासनारूढ है। उनके पीछे एक

शिष्य हाथमें वस्त्र लिये हुए आचार्यकी अभ्यर्थनामें खडा है। आचार्यके सम्मुख एक शिष्य पुस्तक लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहा है। चौलुक्य कुमारपालका चित्र भी इसी ताडपत्रीय प्रतिमें अंकित है। इसमें कुमारपाल हेमचन्द्राचार्यके सम्मुख अभ्यर्थनाकी मुद्रामें बैठे हैं। वह आचार्य हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। वस्त्रयुक्त उनके दोनो हाथ उठे हुए हैं। दाहिना पैर भूमिपर स्थित है, बाया भूमिसे कुछ उठा हुआ है। वह नीले वर्णका जरीदार वस्त्र धारण किये हुए है। इसी युगकी चित्रकलाकी परम्परामें कल्पसूत्र भी आते हैं। इनकी कलात्मकता और श्रेष्ठता सर्वविदित है। वस्तुत साहित्य और विभिन्न कलाओका इस युगमें सर्वतोमुखी अभ्युदय एव उत्कर्ष हुआ।

इन विवरणो तथा तथ्योंसे स्पष्ट है कि बारहवी शताब्दीके भारतीय इतिहासमें गुजरातके चौलुक्य महान् शक्तिशाली और प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक थे। इनमें सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालके शासनकाल अत्यधिक महत्त्वके हैं। कुमारपालने तो अपनी राज्यसीमा पूर्वमें गगा तक विस्तृत विस्तीर्ण कर ली थी। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यके निर्माता और ऐतिहासिक महापुरुषका, शिलालेखो तथा नवीन ऐतिहासिक अनुसन्धानोंके आधारपर, वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार विस्तृत एव व्यवस्थित इतिहास-लेखन, युगकी माग है। भारतीय इतिहासके उज्ज्वल नक्षत्रो और महान् राष्ट्र निर्माताओका स्वरूप अब भी अज्ञात तथा रहस्यमय बना रहे, यह उचित नही। राष्ट्रीय पुनर्जागरणके इस युगमें आवश्यक है कि भारतके गौरवशाली अतीतके राष्ट्रनिर्माताओंके इतिहास, अनुशीलन और शोधके अनन्तर वैज्ञानिक पद्धतिपर लिखे जाय। प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन इसी दिशामें एक प्रयत्न है। इसके लेखनमें मेरुतुग, हेमचन्द्र, सोमप्रभाचार्य, यशपाल तथा जयसिंहके सस्कृत-प्राकृत भाषामें रचित ग्रथोंके अतिरिक्त, कुमारपालसे सम्बन्धित उन बाईस शिलालेखोकी भी सहायता ली गयी है जिनसे इस इतिहासपर सर्वथा नवीन प्रकाश पडता

है। इसके साथ ही तत्कालीन स्मारकों, मन्दिरों और विहारोंके अवशेष भी मिले हैं, जिनसे कुमारपाल और उसके युगके इतिहास-लेखनमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अनेक मुसलिम लेखकोंके विवरणोंमें भी कुमारपाल और उसके समकालीन इतिहासका उल्लेख मिलता है। चौलुक्य शासकोंके सिक्के दुर्लभ और अप्राप्य हैं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है, जो जयसिंह सिद्धराजकी बतायी जाती है। कुमारपालीय मुद्राका भी उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्धमें पाटन, सहस्रलिंग तालाब आदिके निकट उत्खननसे नवीन प्रकाशकी आशा की जाती है।

यह तो हुई पुस्तकके अन्तरंगकी बात। अब इसके बहिरंगपर भी संक्षेपमें चर्चा हो जानी चाहिए। चौलुक्य कुमारपालके इतिहासको सहज और रसमय बनानेके लिए तत्कालीन कलाके अवशेषोंके अनुकृति चित्र प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें दिये गये हैं। ये चित्र उस अध्यायमें वर्णित विषयके द्योतक तो हैं ही, तत्कालीन कलाकी झाकी भी प्रस्तुत करते हैं। प्रथम अध्यायमें सोमनाथ मन्दिर तथा तत्कालीन पाण्डुलिपिका अंकन है तो द्वितीयमें समुद्र, चन्द्रमा और कुमुदिनी प्रतीकात्मक रूपसे चौलुक्योंके चन्द्रवंशी होनेका परिचय देते हुए उनकी उत्पत्तिका संकेत करते हैं। तृतीय अध्यायके प्रारम्भका चित्र तत्कालीन समाजमें शिक्षाके स्वरूप और पद्धतिका परिचायक है। जैनमुनि किस प्रकार उस समय अध्यापन करते थे, इसका अंकन इसमें हुआ है। चतुर्थ अध्यायका चित्र कुमारपालके समयके राजदरबार तथा वेश-भूषाके वर्णनके आधार-पर प्रस्तुत किया गया है। इसकी पृष्ठभूमिमें देलवाड़ा मन्दिरके कलापूर्ण स्तम्भोंकी अनुकृति प्रदर्शित है। पाचवें अध्यायमें चौलुक्यकालीन चित्रोंके आधारपर सैनिक अभियानका स्वरूप अंकित है और तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र चित्रित किये गये हैं। छठें अध्यायके चित्राकनमें छत्र, सिंहासनके साथ, राजमुकुट और राजशक्तिकी प्रतीक तलवार अंकित है। इस चित्रमें अलंकरण और वेशभूषा तत्कालीन वर्णनके आधारपर है। सातवें

अध्यायमें व्यापारिक पोत, ध्वजा-पताका युक्त भवनोंका चित्रण कर जहां उस कालकी आर्थिक सम्पन्नताका संकेत किया गया है, वहीं एक ओर तत्कालीन साहित्यमें वर्णित स्त्रियोंकी वेशभूषा, वस्त्र-सज्जा तथा अलंकारोंकी रूपरेखा अंकित है। आठवें अध्यायका चित्र विश्वप्रसिद्ध देलवाड़ा मन्दिरके श्वेत संगमरमरकी कलापूर्ण भीतरी छतकी अनुकृति है। साहित्य और कलाके नौवें अध्यायका प्रारम्भ, वीणा पुस्तकधारिणी सरस्वतीके चित्रसे हुआ है। अन्तिम और दसवें अध्यायके आरम्भमें आबू पहाड़ स्थित जैन मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी अलंकृत मेहराब है, जो चौलुक्यकालीन शिल्पकौशलका उत्कृष्ट निदर्शन है।

अन्तमें जिन विद्वानों और महानुभावोंकी प्रेरणा, निर्देश तथा परामर्शसे इस ग्रंथको प्रस्तुत करनेमें मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। उत्तरप्रदेश राज्य सरकार तथा उसकी हिन्दी समितिने सन् १९५२ ई०में इस ग्रंथकी पाण्डुलिपिपर ७००)का पुरस्कार प्रदान कर जो प्रोत्साहन दिया है, उससे मुझे बड़ा बल मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके इण्डोलाजी कालेजके प्रिन्सिपल तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिके प्रधान श्रद्धेय डाक्टर राजबली पाण्डेय, एम० ए०, डी० लिट्०ने आमुख लिखने तथा ग्रंथ-लेखनके समय सतत निर्देश देनेकी जो महती कृपा की है, उसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूं। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्रने, हेमचन्द्रके तथा कुमारपाल सम्बन्धी अन्य संस्कृत-प्राकृत ग्रंथोंका बोध न कराया होता तो यह ग्रंथ इस रूपमें प्रस्तुत हो पाता, कहना कठिन है। लोकोदय ग्रंथमालाके विद्वान् और यशस्वी सम्पादक बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, एम० ए०ने इसे सुन्दर, सुपाठ्य और अद्यतन बनानेके लिए जिस संलग्नता और श्रमसे इसकी पाण्डुलिपिका अध्ययन कर परामर्श दिया तथा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री साहित्य-मर्मज्ञ आदरणीय श्री गोयलीयजीने, इस ग्रंथमें तत्कालीन कलाके चित्रोंको सम्मिलित करनेकी सुझाव-सुविधा प्रदान कर, पुस्तकके सुन्दर

मुद्रणकी व्यवस्था की—इसके लिए मैं इन दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। चित्रकार श्री अम्बिका प्रसाद दुबे तथा कलाकार मुहम्मद इस्माइल साहबने क्रमशः इस ग्रंथके दस अध्यायोंके चित्र तथा आवरण पृष्ठकी कलात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की है एतदर्थ वे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। पुस्तक जैसी बन पड़ी है, सामने है। इसकी त्रुटियोंसे परिचित होना, मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।

रथयात्रा, २०११ वि०
व्यास निवास, काशी

लक्ष्मीशङ्कर व्यास

इतिहास की सामग्री

साधारणत लोगोकी ऐसी धारणा रही है कि प्राचीन भारतीय इतिहासको क्रमवद्ध रूपसे प्रस्तुत करनके निमित्त उपयुक्त ऐतिहासिक सामग्रियां तथा तथ्योका अभाव है। प्रोफेसर मैक्समूलर,[1] डाक्टर फ्लीट[2] तथा श्री एलफिनिस्टनका[3] यह अभिमत रहा है कि प्राचीन भारतीय सदा परलोकके ध्यानमे ही निमग्न रहा करते थ और उन्हे इहलोककी कोई चिन्ता न रहती थी। यही कारण है कि उन्होने इतिहासकी ओर ध्यान ही न दिया। अवश्य ही यह धारणा उस समय तक अल्पाधिक अशमे मान्य थी जब तक सस्कृत साहित्यकी छानवीन और प्राचीन एतिहासिक स्थानोका अनुसन्धान तथा उत्खनन नही हुआ था। किन्तु ऐतिहासिक साधनो और सामग्रियोके अनुसन्धान एव आविष्कारके पश्चात् प्राचीन भारतीय इतिहासके अधकारमय अतीतपर सर्वथा नवीन प्रकाश पडा है। सौभाग्यसे गुजरातके सोलकी महाराजाधिराज कुमारपालके इतिहास निर्माणके लिए पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्रिया उपलब्ध है। इन एतिहासिक सामग्रियोमें सस्कृत तथा प्राकृत साहित्यिक, ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त अनक शिलालेख, ताम्र-

---

[1]मैक्समूलर : प्राचीन सस्कृत साहित्यका इतिहास : पृष्ठ ९।

[2]डाक्टर फ्लीट : इम्पीरियल गजेटियर आव इडिया : द्वितीय खड, पृष्ठ ३।

[3]एलफिनिस्टन : भारतवर्षका इतिहास : नवीन सस्करण : पृष्ठ १२।

पत्र, मुद्राएं तथा विदेशी यात्रियोंके ऐसे विवरण भी हैं, जो कुमारपाल तथा उसके समकालीन इतिहासका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। तत्कालीन स्मारक तथा भवन जिनके अवशेष अब तक प्राप्य हैं, कुमारपालके इतिहास निर्माणमें पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य

(१) प्राकृत द्वयाश्रय काव्य (कुमारपाल चरित) : यह कुमारपालके धर्मगुरु हेमचन्द्र द्वारा लिखित है। इसका नाम द्वयाश्रय इसलिए पड़ा कि ग्रन्थकर्त्ताका उक्त काव्य प्रणयनमें दो लक्ष्य था। प्रथम तो संस्कृत व्याकरण के स्वरूपका प्रतिपादन और दूसरा सिद्धराजके वंशका यथायवर्णन। कुमारपालचरित वास्तविक अर्थमें पूर्ण काव्य नहीं अपितु सम्पूर्ण काव्यका एक भाग है। इसके अतिरिक्त बहुतसी कविताएं हैं, जिनमें द्वयाश्रय महाकाव्य सम्पूर्ण हुआ है। इस काव्यके प्रथम सात सर्गोंमें कुमारपाल तथा अणहिल्पुरके राजकुमारोंका वर्णन है। इस महाकाव्यके अट्ठाइस सर्गोंमें प्रथम बीस संस्कृतमें हैं तथा अन्तिम आठ प्राकृतमें। काव्यके प्रारम्भमें राजधानी पाटनका वर्णन है और कुमारपालके सिंहासनारूढ़ होनेके साथही उसके राज दरबारमें विभिन्न प्रान्तोंके प्रशासकोंके प्रतिनिधियोंके उपस्थित होनेका भी विवरण है। प्रथम पांच तथा षष्ठ सर्गके कुछ भागमें अणहिल्पुर, महाराजकी विशाल सम्पत्ति तथा राजकीय जिन मन्दिरोंके वैभवका विशद वर्णन है। चौलुक्य शासक इन मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्तियोंकी किस श्रद्धा तथा उदार भावनासे युक्त हो अर्चना करते थे, इन सर्गोंमें उसका भी उल्लेख है। चौलुक्य नरेशोंके उपवनों तथा वन पर्यन्त राजा और प्रजाके आमोद प्रमोदोंका भी उक्त सर्गोंमें हृदयग्राही वर्णन मिलता है। षष्ठ सर्गके उत्तरार्धमें कुमारपालकी सेना तथा कोंकण नरेश मल्लिकार्जुनके मध्य हुए युद्धका वर्णन है, जिसमें मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा अन्त हुआ। इसी सर्गमें कुमारपाल तथा उसके समकालीन नरेशोंके

साथ उसके सम्बन्धका भी सक्षिप्त वर्णन है। दो सर्गोंमें नैतिक तथा धार्मिक चिन्तनकी विवेचना है। सप्तम सर्गमें स्वय कुमारपालके मुखसे आध्यात्मिक चर्चा करायी गयी है और अष्टममें श्रुतदेवी कुमारपालकी प्रार्थनापर उपदेश करती है। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५ (सन् १०८८-११७२ ईस्वी)म हुआ और निधन विक्रम सवत् १२२९में। हेमचन्द्रका यह ग्रन्थ चौलुक्य नरेश कुमारपालके जीवन सम्बन्धी इतिवृत्त-की प्रामाणिक कृति है। इसम एतिहासिक घटनाओका उल्लेख नही तथापि उसके राजजीवनका रेखाकन करनेके लिए इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।[1]

(२) महावीर चरित्र : यह ग्रन्थ भी हेमचन्द्रका लिखा हुआ है। इसम कुमारपालके जीवनकी बहुतसी बातोका विवरण मिलता है। महावीर चरित्रम हेमचन्द्रन कुमारपालकी महत्ताका उल्लेख करते हुए राजा तथा जैन धर्मके भक्त रूपम उसके अनकानेक गुणोका वर्णन किया है। कुमारपालके इतिहासको क्रमबद्ध करनेम इस पुस्तकका महत्त्व इसलिए विशेष है कि इसमें वर्णित बातोका पता अन्य किसी साधनसे नही लगता। हेमचन्द्र कुमारपालका समसामयिक था और अपने कालका महापडित, इसलिए उसके कथनापर अविश्वास या सन्देह नही किया जा सकता। यह हेमचन्द्रके जीवनकी अन्तिम कृति है। जैनधर्म स्वीकार कर लेनेके बाद कुमारपालका सक्षिप्त किन्तु सारभूत वर्णन इस ग्रन्थम है।

(३) कुमारपाल प्रतिबोध : प्रसिद्ध जैन साहित्यकार सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोधका प्रणेता है। इस ग्रन्थका प्रणयन उसने विक्रम सवत् १२४१ (सन् ११८५)में कुमारपालके निधनके ग्यारह वर्ष उपरान्त किया। इससे स्पष्ट है कि सोमप्रभाचार्य, कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समकालीन था। कुमारपाल प्रतिबोधकी रचना उसने कवि-

---

[1]मुनि श्री जिनविजयजी · राजर्षि कुमारपाल . पृष्ठ २।

सम्राट श्रीपालके पुत्र सर्वसिद्धपालके निवासमें रहकर की। इस ग्रन्थमें समय समयपर गुजरातके प्रख्यात चौलुक्यवंशी राजा कुमारपालको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी जैन शिक्षाओंका भी वर्णन है। इनमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि किसप्रकार क्रमशः कुमारपाल उक्त उपदेशोंको ग्रहणकर जैन धर्ममें पूर्णरूपेण दीक्षित हो गया। इस ग्रन्थका नामकरण प्रणेताने 'जिनधर्म प्रतिबोध' किया है किन्तु पुस्तकका दूसरा शीर्षक उसने 'कुमारपाल प्रतिबोध' रखा है। यह ग्रन्थ मुख्यतः प्राकृत भाषामें लिखा गया है किन्तु अन्तिम अध्यायमें कतिपय कथाएं संस्कृत भाषामें हैं। इसका कुछ अंश अपभ्रंशमें भी है। इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य कुमारपाल आदिका इतिहास लिखना नहीं रहा है अपितु जैनधर्मके उपदेशोंका वर्णन करना रहा है किन्तु उसके साथ ही ऐतिहासिक व्यक्तियों-की कथाएं भी सम्मिलित कर ली गयी हैं। इस सम्बन्धमें सोमप्रभाचार्यका कथन द्रष्टव्य है—यद्यपि कुमारपाल तथा हेमाचार्यका जीवनवृत्त अन्य दृष्टिकोणसे अत्यन्त रुचिकर है पर मेरी अभिरुचि केवल जैनधर्मसे सम्बद्ध शिक्षाओंके वर्णन तक ही सीमित रहना चाहती है। क्या वह व्यक्ति, जो विभिन्न सुस्वादुपूर्ण पदार्थोंसे भरे पात्रमेंसे केवल अपनी विशेष रुचिकी ही वस्तुएं ग्रहण करता है दोषी ठहराया जा सकता है? [1] यद्यपि इस ग्रन्थसे बहुत सीमित अंशमें ही ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसके द्वारा जो कुछ भी ज्ञातव्यता प्राप्त होती है, वह अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। सोमप्रभाचार्य,

---

[1]जइ वि चरियं इमाण मणोहर अत्थि बहुयमन्नं पि
तह वि जिणधम्म पडिवोह बधुर किं पि जयेमि
बहु भक्ख जुयाइ वि रसवईऐ मज्झाओ किंचि भुंजतो
निय इच्छा—अणुरुव पुरिसोकिं होइवयणिज्जो
—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३, श्लोक ३०-३१।

कुमारपालका केवल समकालीन ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवन-का भी विशेष ज्ञाता था। इस विचारसे 'कुमारपाल प्रतिबोध'का कुछ कम महत्व नहीं। इसमें लगभग बारह हजार श्लोक हैं किन्तु ऐतिहासिक सामग्री मुख्यत २००-२५० श्लोकोमें ही मिलती है।

(४) प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रबन्ध चिन्तामणिका रचयिता प्रख्यात जैन पडित मेरुतुग है। इस ग्रन्थमे विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियोपर प्रबन्ध है। सम्पूर्ण पुस्तक पाच प्रकाशोमें विभक्त है। सर्वप्रथम विक्रम प्रबन्धमें सातवाहन शिलावर्त भोजराज, वनराज, मूलराज तथा मुजराज सम्बन्धी प्रबन्ध है। द्वितीय प्रकाशमें भोज भीम प्रबन्धका वर्णन है, तृतीयमे सिद्धराज प्रबन्ध है और चतुर्थमें कुमारपाल प्रबन्ध है, जिसमे वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध भी सम्मिलित है। अन्तिम पचम प्रकाशमें प्रकीर्ण प्रबन्ध है। मेरुतुगसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, राज्यारोहण, चौहानो और अन्य राजाओसे युद्ध, उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने आदि विषयकी बहुतसी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुत प्रबन्ध चिन्तामणि उन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साधनोमें एक है जिनकी सहायतासे चौलुक्योका इतिहास प्रामाणिक आधारपर प्रस्तुत किया जा सकता है। विक्रम सवत् १३६१ (१३०५ ईस्वी)की वैशाखी पूर्णिमाको यह ग्रन्थ वर्द्धमानपुर (आधुनिक वडवान)में सम्पूर्ण हुआ।[1] इसी नामका एक ग्रन्थ अथवा सम्भवत उक्त ग्रन्थका ही प्रारम्भ श्री गुणचन्द्र आचार्य "पडितोके मस्तिष्क" द्वारा हुआ था। मेरुतुगने इस सम्बन्धमें स्वय लिखा है कि प्राचीन गाथाओके श्रवणसे ही सन्तोष नहीं होता इसीलिए मैंने अपनी पुस्तक प्रबन्ध-चिन्तामणिमें हालके प्रख्यात राजाओका विस्तृत वृत लिखा है। मेरुतुगने यह भी लिखा है 'उक्त लेखनमे यद्यपि पाडित्यमे तो नहीं तथापि परिश्रमसे कार्य किया गया है।'

---

[1]रासमाला, १३ अध्याय पृष्ठ ३२९।

(५) पेरावली पेरावली वह महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें चौलुक्य नरेशोंकी नामावलीके अतिरिक्त उनकी तिथि तथा शासन अवधिके विवरण भी हैं। इस ग्रन्थके प्रणेता भी जैन पंडित मेरुतुंग ही हैं। इस कृतिमें मुख्यतः संस्कृत भाषामें वंशावली है तथा उत्तराधिकारियोंकी नामावली है। यद्यपि प्रबन्ध चिन्तामणि ऐतिहासिक ग्रन्थ है और पेरावली नरेशों और उनके समयकी सूची मात्र है तथापि यह अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।[1]

(६) प्रभावकचरित्र इसका प्रणयन श्री प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा हुआ। ये जैन पंडित थे और इसकी गणना भी जैन ग्रन्थोंमें है। यह कृति द्वादश अध्यायोंमें है। इसके अन्तिम अध्याय 'हेमचन्द्रसूरी चरितम्' में चौलुक्य नरेश कुमारपालका इतिहास है। इस अध्यायमें कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसका विभिन्न देशोंमें पर्यटन, राज्यारोहण, सैनिक अभियान तथा विजयके प्रसंगोंका सुस्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

(७) पुरातन प्रबन्ध संग्रह यह रचना प्रबन्ध चिन्तामणिका अवशिष्ट अंश है। इसके अनेक प्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणिके समान ही हैं। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि इस कृतिमें प्रबन्धचिन्तामणिसे सम्बन्ध अथवा उसीके समान मिलते जुलते बहुत प्राचीन प्रबन्धोंका संग्रह है। इस संग्रहमें विभिन्न व्यक्तित्वोंपर कुल मिलाकर ६० प्रबन्ध हैं, इनमेंसे अनेक प्रबन्ध कुमारपालके इतिहासपर भी बहुत प्रकाश डालते हैं।

(८) मोहराजपराजय यह पांच अंकोंका नाटक है और इसके रचयिता हैं श्रीयशपाल। इसमें गुजरात नरेश कुमारपालके हेमचन्द्र द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित होने पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगाने तथा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेकी राज्य प्रथाको उठा देनेका वर्णन है। यह रूपक है। विषय तथा वर्णनके विचारसे यह मध्यकालीन

---

[1] रासमाला परिशिष्ट, पृष्ठ ४४२।

हैं। प्रथम सर्गमें चालुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है और कविने बताया है कि वे किस प्रकार अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर गये।

कुमारपाल प्रबन्धके रचयिता जिन मदनाग्निने कुमारपाल प्रतिबोधके अनेक ऐतिहासिक उद्धरण लिये हैं। जयसिंह सूरिने कुमारपाल प्रतिबोध-की रचना शैलीका रचना सादृश्य अपने कुमारपाल चरित्रम किया है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंसे भी कुमारपालके इतिहासकी रूपरेखाके निर्माणमें सहायता मिलती हैं।

उत्कीर्ण लेख

आधुनिक इतिहासज्ञ उत्कीर्ण लेखोको किसी ऐतिहासिक कालके प्रामाणिक विवरणके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। सौभाग्यसे कुमारपालके समयके एक दो नहीं, बाइस उत्कीर्ण लेख मिलते हैं। इनसे कुमारपालके इतिहासकी बहुतसी बातोका पता चलता है। इन उत्कीर्ण लेखोमेंसे कुछ उसके अधीनस्थोके आदेश हैं, कतिपयमें राजकीय आज्ञाकी घोषणाएं हैं तथा अन्य दान लेख हैं।

(१) मगरोल शिलालेख (विक्रम सवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह शिलालेख दक्षिणी काठियावाड, जूनागढके अन्तर्गत मगरोलके गदिस द्वारके निकट एक वापी (कूप)के श्याम प्रस्तरमें उत्कीर्ण है। यह शिलालेख पचीस पक्तियोंका है और इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालकी प्रशस्ति है। इसमें गुहिलवशके सौराष्ट्र नायक मूलक द्वारा सहजीजेश्वरके मन्दिरका निर्माण तथा दानका विवरण अकित है।[1]

(२) दोहाद शिलालेख (विक्रम सवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह गोद्राहकके महामडलेश्वर नयनदेवके समयका है। इसमें महा-मडलेश्वरकी असीम कृपा द्वारा राजा धकर्सिहके उत्कर्षका उल्लेख

---

[1]भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पृष्ठ १५२-६०।

है और जिसने ईश्वराधनके निमित्त तीन हल चलाने योग्य भूमि का दान किया।[1]

(३) किरादू शिलालेख (वि० सं० १२०५)–किरादू जोधपुर राज्य, आधुनिक राजस्थानमें स्थित है। यह शिलालेख किरादू परमार सोमेश्वर-के समयका है जो कुमारपालके अधीनस्थ था।[2]

(४) चित्तौरगढ़ शिलालेख (वि० स० १२०७)—यह लेख चित्तौर स्थित नोकलजी मन्दिरमें उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके चित्रकीर्ति (चित्तौर) आगमन तथा समीद्धेश्वर मन्दिरमें भेंट चढानेका उल्लेख भी है।[3]

(५) आबू पर्वत शिलालेख—यह महामडलेश्वर यशोधवलके समयका है।[4]

(६) चित्तौरका प्रस्तर लेख—इस प्रकीर्ण लेखमें मूलराजसे कुमारपाल तककी वशावलीका विवरण है। इसमें कहा गया है वह चौलुक्य वशमें उत्पन्न हुआ, जिस वशका उदय ब्रह्माके हस्तसे हुआ बताया गया है। इसके पश्चात् इसमें मूलराजसे जयसिंह तककी यशावली दी गयी है। उसके अनन्तर त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल हुआ।[5]

(७) वडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८)—गुजरातके वडनगरमे सामेत तालावके निकट अर्जुनवाडीमें एक प्रस्तर खडपर यह लेख उत्कीर्ण है। इसमें चौलुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है तथा कुमारपाल तककी

---

[1] इडि० एंटी०, खड १०, पृष्ठ १५९।
[2] इडि० एटी०, खंड १०, पृष्ठ १५९।
[3] सूची, क्रम संख्या २७४।
[4] इंडि० एंटी०, खंड २, पृ० ४२१-२४।
[5] सूची, क्रम संख्या २८०।

वंशावली अंकित है। १६ २० श्लोक नागर अथवा आनन्दपुरमें प्राचीन ब्राह्मण बस्तीकी प्रशंसामें है। उसी प्रसंगमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने अपने राज्यमें उक्त प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्रके चतुर्दिक घेरा बनवाया था। ३०वें श्लोकमें प्रशस्तिकार श्रीपालका नामोल्लेख है जिससे सिद्धराजने अपना भ्रातृत्व सम्बन्ध स्वीकार किया था और जिसकी उपाधि कवि चक्रवर्तीकी थी।[2]

(८) पाली शिलालेख (वि० सं० १२०९)—यह जोधपुर राज्यके पाली नामक स्थानमें सोमनाथ मन्दिर सभामंडपमें अंकित है। यह लेख कुमारपालके समयका है।[3] इस शिलालेखमें कुमारपालका, शाकम्बरी धीशके विजेता रूपमें उल्लेख है। प्रधान मन्त्री महादेवका नाम भी इसमें अंकित है तथा लेखकी छठी पंक्तिमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि चामुंडराज पल्लिका विषयमें शासन कर रहे थे।

(९) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२०९)—यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें शिवरात्रि आदि पर्वोपर पशुओंकी हिंसा करनेका निषेधाज्ञा है।[4] इसमें कहा गया है कि राज परिवारके सदस्य द्रव्य दंड देकर ही पशु हिंसा कर सकते थे और अन्य लोगोंके लिए तो इस अपराधके लिए प्राणदंडकी व्यवस्था थी।

---

[1]आधुनिक वडनगर (विदधनगर) बड़ौदा राज्यके काडी जिलेके केरल सब डिविजनमें है। इस स्थानकी प्राचीनताके लिए देखिये इंडि० एंटी० खंड १, पृ० २९५।

[2]इंडि० एंटी० खंड १ पृ० २९३ ३०५ तथा आई० ए० खंड १०, पृ० १६०।

[3]ए० एस० आई० डब्लू० सी०, पृ० ४४ ४५ १९०७ ८, इंडि० एंटी० खंड ११, पृ० ७०।

[4]इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४४।

(१०) रतनपुर प्रस्तर लेख—जोधपुरके रत्नपुरके बाहरी क्षेत्रमें एक प्राचीन शिव मन्दिरके मडपमे उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह कुमार-पालके शासनकालका है। इसमे गिरिजादेवीकी, वह आज्ञा घोषित की गयी है जिसमें कहा गया है कि निश्चित विशेष तिथियोको पशुओका वध करना निषिद्ध है।

(११) भटुंड प्रस्तर लेख (वि० स० १२१०)—यह जोधपुर राज्यके भटुड नामक स्थानके ध्वसावशेष मन्दिरमें है। शिलालेख उक्त मन्दिरके सभामडपके एक स्तम्भमें प्रकीर्ण है। लेख कुमारपालके शासन कालमें खुदवाया गया है। इसमें दडनायक वैजाबका भी उल्लेख आया है, जो नाडुल जिलेका कार्याधिकारी था।[1]

(१२) नाडोलका दानपत्र (वि० स० १२१३)—यह कुमारपालके समयका है। इसका प्राप्ति स्थान जोधपुरके अन्तर्गत देसूर जिलाका नाडोल है। इसमें जैन मन्दिरोको दान देनेका उल्लेख है। इसमें बहडदेव प्रधान मन्त्री, महामडलिक प्रतापसिंह तथा बदारीके चुगी गृह (मडपिका)-का विवरण है।[2]

(१३) बाली शिलालेख (वि० स० १२१६)—जोधपुर, बालीके बहुगुण मन्दिरके द्वारके सिरेपर यह शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमें कुमार-पालके शासनकालमे प्रदत्त भूमिके दानका उल्लेख है। इस लेखमें नाडुलके दडनायक तथा वल्लभी (आधुनिक बाली)के जागीरदार अनुपमेश्वरका नाम अकित है।[3]

(१४) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२१८)—जोधपुर राज्यके

---

[1]इडि० एंटी०, खंड २०, परिशिष्ट, पृ० २०९।

[2]ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, पृ० ५१-५२।

[3]इंडि० एटी, खंड, ४१, पृ० २०२-२०३।

[4]ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०७-१९०८, पृ० ५४-५५।

किरादू स्थित एक शिवमन्दिरमें यह लेख अंकित है। इसका समय कुमारपालका शासनकाल ही है। इसमें कुमारपालके अधीनस्थ किरादू परमार सोमेश्वरका उल्लेख है।[1]

(१५) उदयपुर प्रस्तर लेख—यह ग्वालियर राज्यमें है। ग्वालियरके अन्तर्गत उदयपुरके विशाल उदयेश्वर मन्दिरके प्रवेश स्थलपर ही यह लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके समयका है और इसे उसके एक अधीनस्थ अधिकारीने उत्कीर्ण कराया था। इसकी तिथि, लेखमें सुस्पष्ट नहीं है।[2]

(१६) उदयपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख (वि० स० १२२२)—यह उक्त मन्दिरके एक प्रस्तर स्तम्भमें उत्कीर्ण है। इसमें ठाकुर चाहड द्वारा इसी मन्दिरको प्रदत्त ब्रह्मगिरिके अन्तर्गत सामगावताके आधे गाव दान-स्वरूप देनेका उल्लेख है।[3]

(१७) जालोर प्रस्तर शिलालेख (वि० स० १२२१)—जोधपुर राज्यके अन्तर्गत जालोर नामक स्थानमें एक मस्जिदके दूसरे खडके द्वारके ऊपर यह लेख उत्कीर्ण है। इस मस्जिदका उपयोग बादमें तोपखानेके रूपमें होता रहा है। इसमें कुमारपाल द्वारा निर्मित प्रसिद्ध जैन मन्दिर कुमार विहारके निर्माणका विवरण है। पार्श्वनाथका यह प्रसिद्ध जैन विहार जवालीपुर (जालोर)के कंचनगिरि किलेपर बना हुआ है। इस विवरणके अतिरिक्त इसमें यह भी लिखा है कि कुमारपाल, प्रभु हेमसूरि द्वारा दीक्षित हुआ।[4]

(१८) गिरिनार शिलालेख (वि० स० १२२२-२३)—यह शिलालेख कुमारपालके समयका है।[5]

---

[1] ई० इडि०, खंड २०, परिशिष्ट, पृ० ४७।
[2] इडि० एंटी०, खंड १७, पृ० ३४१।
[3] इडि० एंटी०, खंड १७, पृ० ३४१।
[4] इडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ५४ ५५।
[5] आर० एस० ए० आर० वी० पी०, ३५९।

(१९) जूनागढ़ शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५० (?) सिंह ६०)—यह जूनागढ़के भूतनाथ मन्दिरमें उत्कीर्ण है। यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें अनहिलपालवपुरके[1] धवलकी पत्नी द्वारा दो मन्दिरोंके निर्माणके विवरण हैं। दंडनायक गुमदेवका नामोल्लेख भी इसमें आया है।

(२०) नदलाई प्रस्तर लेख (वि० सं० १२२८)—यह शिलालेख जोधपुर राज्यके नदलाई नामक स्थानके दक्षिण-पश्चिम एक महादेवके मन्दिरमें मिला है। यह भी कुमारपालके समयका है।[2]

(२१) प्रभासपाटन शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५०)—यह शिलालेख प्रभासपाटन अथवा सोमनाथपाटनमें भद्रकाली मन्दिरके निकट एक प्रस्तर-पर उत्कीर्ण है। इसके अक्षरोंका समय कुमारपालका शासनकाल है। इसमें कुमारपाल द्वारा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माणका विवरण है।[3]

(२२) गाला शिलालेख—काठियावाड़के धारगधारा राज्यके गाला नामक ग्राममें एक देवीके ध्वस्त मन्दिरके प्रवेशद्वारपर यह शिलालेख खुदा हुआ है। यह गुर्जरनरेश कुमारपालके कालका है। इसमें प्रधान मन्त्री महादेवके अतिरिक्त राज्यके अनेक अधिकारियोंका भी नामोल्लेख है।[4]

स्मारक

कुमारपाल जैनधर्ममें दीक्षित हो गया था और जैनधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैन मन्दिरोंका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने पाटनमें अपने मन्त्री बाहडके

---

[1]पी० ओ० खंड १, १९३६-३७, द्वितीय खंड, पृ० ३९।

[2]इंडि० एंटी०, खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3]बी० बी० एस० आई०, १८६, सूची क्रम संख्या १३८०।

[4]पी० ओ० खंड १, पार्ट २, पृ० ४०।

निरीक्षणमें कुमारविहार नामक मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इसके पार्श्वके चौबिस मन्दिरोंमें उसने चौबिस तीर्थंकरोंकी सुवर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियां स्थापित करायीं।

इसके पश्चात् कुमारपालने त्रिभुवनविहार[1] नामक और भी विशाल तथा उच्चशिखरोंसे युक्त जैन मन्दिरका निर्माण कराया। इसके चतुर्दिक विभिन्न तीर्थंकरोंके लिए बहत्तर मन्दिर बने थे। इन मन्दिरोंके विभिन्न विशेष भाग सुवर्णके बने हुए थे। मुख्य मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी विराट तथा भव्यमूर्ति बनी थी तथा अन्य उपमन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित थीं।

इनके अतिरिक्त कुमारपालने केवल पाटनमें ही चौबिस तीर्थंकरोंके लिए चौबिस जैनमन्दिर बनवाये, जिनमें त्रिविहारका मन्दिर प्रसिद्ध था। पाटनके बाहर राज्यके विभिन्न स्थानोंमें उसने इतने अधिक जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया कि उनकी निश्चित संख्याका अनुमान करना भी कठिन है। इनमेंसे जसदेव पुत्र सुबेदार अभयके निरीक्षणमें तरंग पहाड़ीपर बना अजितनाथका विशाल मन्दिर उल्लेख्य है। यद्यपि आज ये स्मारक अपने पूर्व रूपमें अवस्थित नहीं, तथापि ध्वसावशेष भी अपने समयके जीते जागते अवशेष हैं तथा कुमारपालके इतिहास निर्माणमें बहुत सहायक हैं।

मुद्राएं

सिक्कोंका जहां तक सम्बन्ध है, पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तरार्ध मध्य-काल दोनोंमें ही कुछ विचित्र स्थिति है। यह आश्चर्यकी बात है कि वल्लभीके मैत्रिकोंके अतिरिक्त किसी वंशकी मुद्राएं गुजरातमें नहीं प्राप्त होतीं।

---

[1]पी० ओ०, खंड १, भाग २, पृ० ४०।

जो प्राप्त हुई हैं वे भी गिनतीकी हैं। ये मुद्राएं ब्रिटिश म्युजियममें रही हैं। इनमें कोई स्वरूप साम्य नहीं है। इसके एक ओर वृषभका आकार बना हुआ है। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि अनहिलवाडके चौलुक्यों-की कोई मुद्राएं नहीं प्राप्त होती हैं। गुजरात तथा पाटनके लोग इस बातका गम्भीरतासे अनुभव ही नहीं करते।[1] पुरातत्ववेत्ता श्री एच० डी० सांकालिया जब अपने अनुसन्धानके दौरेपर गये थे और जब उन्होंने पाटनके लोगोंसे चौलुक्योंके सिक्कोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो लोग आश्चर्य करते थे।[2] कई वर्ष पहले सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाओंके बाहर जब एक सडकका निर्माण हो रहा था तो सागर अप्सराके श्री मुनि पुण्य विजयजीको कुछ मुद्राओंका पता लगा था। दुर्भाग्यवश किसी मुद्रा विशेषज्ञको ये सिक्के नहीं दिखाये गये और बादमें उनका कोई पता न चला।[3] चौलुक्योंने अवश्य ही मुद्राएं अंकित करायी होंगी तथा उनका पर्याप्त प्रचलन होगा, इस तथ्यके समर्थनमें उत्तरप्रदेशसे प्राप्त एक सुवर्ण मुद्रासे यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। उत्तरप्रदेशमें मिली उक्त सुवर्ण मुद्रा सिद्धराज जयसिंहकी बतायी जाती है।[4] इतने सुसम्पन्न कालमें चौलुक्योंने अपनी मुद्राएं न प्रचलित की होंगी, ऐसा स्वीकार करना समुचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए इस धारणाको बल मिलता है कि यदि उचित रूपसे उत्खनन तथा अनुसन्धानका कार्य किया जाय—विशेषकर सहस्रलिंग तालाबके निकट तो मुद्राओंके अतिरिक्त चौलुक्य-कालीन अन्य बहुतसी सामग्री भी प्रकाशमें आवेगी।

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[3] वही।

[4] जे० आर० ए० एस० बी, लेटर्स, ३, १९३७, नं० २, आर्टिकिल।

विदेशी इतिहासकारोंके विवरण

चौलुक्य उस कालमें शासन कर रहे थे, जब मुसलिम भारतके पश्चिमोत्तर भागपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर रहे थे। कुमारपालके पहले चौलुक्यों और मुसलिमोंमें संघर्ष[1] हुआ था तथा कुमारपालके बाद भीम द्वितीयके शासनकालमें मुसलिमोंसे प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ। कालान्तरमें अन्ततोगत्वा मुसलिमोंने चौलुक्योंको पराजित कर दिया। अनहिलवाड़ेमें स्थापित कुतुबुद्दीनका मुसलिम सेनागार या तो हटा लिया गया था अथवा उसका पददलन हो गया था। प्रसिद्ध मुसलिम इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि भीमदेवकी मृत्युके पचास वर्ष बाद तत्कालीन दिल्लीके शासकको उसकी परामर्शदात्री परिषद्ने यह सलाह दी कि कुतुबुद्दीन द्वारा विजित गुजरातके प्रदेश, जो अब स्वतन्त्र हो गये थे उन्हें पुनः अधीन किया जाय। परिषद्ने गुजरात तथा मालवा सेना भेजनेका परामर्श दिया था।

अलाउद्दीनके सैनिक अभियानके पहले तेरहवीं शताब्दीके अन्तके पूर्व तक अनहिलवाड़ा मुसलिमोंके अधीन न हुआ। मुसलिम विवरणोंमें भी चौलुक्योंका उल्लेख बहुत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मुसलिम लेखकने कुमारपालको गुरुपाल[2] सम्बोधित किया है। अबुलफजलने भी लिखा है कि जयसिंहकी मृत्यु[3] तक कुमारपाल सोलंकी निर्वासनमें रहता था। इसीप्रकार जियाउद्दीन बरानीकी तारीख-ए-फिरोजशाही[4] निजामुद्दीनकी तबकाते-ए-अकबरी,[5] तारीख-ए-

---

[1]युद्धके १४ वर्ष पूर्व चामुंडराजकी सन् १०१०में मृत्यु हुई जब मुसलिम आक्रमण हुआ तो भीम शासनारूढ़ था।

[2]फोर्बस : रासमाला।

[3]आइने-अकबरी, खंड २, पृ० २६३।

[4]इलिएट, खंड ३, पृ० ९३।

[5]बिबलिओथिका इनडिका : बी०के० कृत अनुवाद, १९१३।

फरिश्ता,[1] आइने-अकबरी,[2] तबकाते-नसीरी तथा मीराती-अहमदीसे चौलुक्य कुमारपालके समय तथा इतिहासका बहुत कुछ विवरण प्राप्त होता है।

विभिन्न सामग्रियो पर एक दृष्टि

इन प्रभूत साहित्यिक रचनाओ, शिलालेखो, स्मारको तथा अन्य प्राप्त साधनोकी सहायतासे चौलुक्यनरेश कुमारपालके इतिहासको प्रामाणिक और विधिवत ऐतिहासिक पद्धतिपर लिखा जा सकता है। साहित्यिक एव अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थोंसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन, उसके सिंहासनारूढ होने, चौहानो, परमारो तथा अन्य शक्तियोंसे युद्ध, उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने तथा अन्तमें उसके निधनका विवरण मिलता है। इन साहित्यिक साधनोंसे देशकी तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिपर भी पूर्ण प्रकाश पडता है। वस्तुत तत्कालीन साहित्यमें उल्लिखित एव चित्रित ऐतिहासिक तथ्य कुमारपालके इतिहासके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनोमें प्रमुख है।

इनके बाद कुमारपालके समयके विभिन्न शिलालेखो, प्रकीर्ण लेखो, तथा ताम्रपत्रोंसे उसकालके शासन प्रबन्ध तथा देशकी विभिन्न परिस्थितियोका परिचय मिलता है। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओमें भले ही अर्ध ऐतिहासिक तथ्य अकित हो, क्योकि उनमें कही-कही वास्तविक सत्यके साथ साथ कवित्वपूर्ण प्रशस्तिया भी रहती है किन्तु प्रकीर्ण लेखोके सम्बन्धमें ऐसी बात नही कही जा सकती। अधिकाश शिलालेख राजाज्ञाके रूपमें है अथवा उनमे राजकीय घोषणाए है। इनमेंसे कुछमें जैन मन्दिरोको दान देनेका भी उल्लेख है। शिलालेखोंसे बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातोका पता लगता है। इन प्रकीर्ण लेखोंसे अनेक प्रशासकीय इकाइयोंके साथ ही विभिन्न राज्याधिकारियोंके नाम भी विदित होते है। कुमारपालने जिन अनेक युद्धोमें भाग लिया था उनके विवरण भी, इन्हींसे प्राप्त होते

---

[1] ब्रिग्स द्वारा अनूदित, खड १।

[2] ब्लोयमन जेरट, खड २।

है। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एव जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वंसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वंस हैं, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो काल कवलित हो गये हैं। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानमें विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यों-की मुद्राएं नहीं मिलतीं। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एव व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएं प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एव अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएं उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूटपाटकी घटनाएं हुईं। चौलुक्यों-के सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों विशेषतः मुसलिम इतिहासकारोंके विवरणोंका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों-के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमार-पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपांकनके

वंश की उत्पत्ति
और विकास

हैं। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम-स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन मंदिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वंस हैं, कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो बिल्कुल विलुप्त हो गये हैं। इनका क्षेत्र मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानोंमें विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यों की मुद्राएं नहीं मिलती। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एवं व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएं प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एवं अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएं उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनवरत आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूटपाटकी घटनाएं हुईं। चौलुक्यों के सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों विशेषतः मुसलिम इतिहासकारोंके विवरणोंका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमार-पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपअंकनके निमित्त प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

वंश की उत्पत्ति
और विकास

गुप्त साम्राज्य और पुष्यभूतियोंके पराभव तथा पतनके पश्चात् कोई ऐसा शक्तिसम्पन्न राजवंश न हुआ, जितना व्यापक विस्तार एवं विराट राजनीतिक प्रभुत्व अनहिलवाड़ेके चौलुक्योंका भारतमें हुआ। चौलुक्य शब्द चालुक्यका संस्कृत रूप है। गुजरातमें चौलुक्योंका लोकप्रसिद्ध सम्बोधन "सोलंकी" अथवा "सोलंकी" है। गुजरातके लोकगीतोंमें अब तक गायक इसका प्रयोग करते रहे हैं। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा समकालीन साहित्यमें इस वंशका नाम "चौलुक्य", "चालुक्य" अथवा "चुलुक" मिलता है। इसके अतिरिक्त चालुक्का चलुक्य, चालक्य, चलक्य, चौलुकिक, चौलुक्क तथा चुलुग शब्दोंका प्रयोग भी इस वंशके सम्बोधनके रूपमें हुआ है।

लाट प्रदेशके राजा कीर्तिराज सोलंकीके ताम्रपत्रमें इस वंशका नाम चालुक्य[1] कहा गया है। उसके पौत्र त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रमें वंशका नाम चौलुक्य[2] आया है। गुजरातके सोलंकी राजाओंके पुरोहित सोमेश्वरने अपनी कीर्तिकौमुदी[3]में "चौलुक्य" तथा "चुलुक्य"का प्रयोग किया है।

---

[1]वियना ओरियन्टल जर्नल, खंड ७, पृ० ८८।

[2]इत्ययत्र भवेत्क्षत्र सन्ततिर्व्विनता किल। चौलुक्यात्प्रथिता न ध्या....इंडि० ऐंटी० खंड १२, पृ० २०१।

[3]अय चौलुक्य भूपालपाल यामास तत्पुरम्। कीर्तिकौमुदी २ : १।
अणहिलपुरमस्ति स्वतिपालं प्रजानाम।

हेमचन्द्रने गुजरातके सोलंकी शासकोंके लिए चौलुक्य, चुलुक्य, चालुक्य, चुलुक्क तथा चुलुग का व्यवहार किया है। कृष्ण कविने अपनी कृति रत्नमालामें चालुक्य, चुलुक्य, चुलुक, चौलुक्य शब्दोंका प्रयोग सोलंकी शासकोंके लिए किया है।[1] पृथ्वीराज रासामें सोलंकी वंशके लिए चालुक्यका व्यवहार किया गया है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ही वंशके लिये विभिन्न लेखों तथा विभिन्न तत्कालीन साहित्यमें भिन्न-भिन्न वंश परिचायक शब्दोंका प्रयोग हुआ है। इन शब्दोंमें कौन शब्द सोलंकी (चौलुक्य) वंशके लिए सर्वथा उपयुक्त है इसके निर्णय एवं निर्धारणके लिए समकालीन लेखकों, ताम्रपत्रों तथा शिलालेखोंकी प्रभूत सामग्री है। सभीके सम्यक् समालोचनके अनन्तर यह स्पष्ट है कि इस राजवंशके लिए सबसे अधिक तथा सर्वमान्य प्रयोग

अरजिरघुतुल्यैः पाल्यमानं चुलुक्यैः : ३ :

विरजयति वस्तुपालश्चुलुक्य सचिवेषु कविषु च प्रवरः .. :१४:
—आबू स्थित वस्तुपाल तेजपाल मन्दिरमें सोमेश्वर रचित प्रशस्ति।

'कृत्स्नेन सर्वसारेणावधीत्लस चुलुक्य राट् .द्वयाश्रय महाकाव्य, सर्ग ५:१२८।

उद्दालिआ दसणाणसिरी चालुक्क सुइडोहिं, सर्ग ६:८४।

जत्य चुलुक्कनि वाण परिमल जम्मो जसो कुसुनदाम १:२२, धवलगहेय अइनिच्चलाकि दी थक्कओ चुलुगजश वीयओ। सर्ग २:९१। कुमारपाल चरित।

[1]ऐसो वंश चालुक्यको शुभ रीति, पुनोवंश चापोत्कटाको सप्रीति, रत्नमाला, पृ० २०। चौलुक्य वंश नृप भुवनाम —रत्नमाला, पृ० ४३।

[2]मुनि प्रगट्यो चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय—पृथ्वीराज रासोः आदिपर्व, पृ० ४९।

"चौलुक्य" शब्दका ही हुआ है। हेमचन्द्र, सोमेश्वर, यशपाल तथा अन्य तत्कालीन साहित्यकारोंके अतिरिक्त शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें जो आधुनिक कालमें किसी तथ्य अथवा घटनाकी मान्यताके लिए सर्वोपयुक्त प्रमाण माने जाते हैं, उक्त शब्दका ही बहुतायतसे प्रयोग हुआ है। यही नहीं, आठ चौलुक्य ताम्रपत्रोंमें जो चौलुक्योंकी वंशावली दी हुई है उन सभीमें एक ही शब्द "चौलुक्य"का व्यवहार किया गया है।[1]

उत्पत्तिका अग्निकुल सिद्धान्त

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतीय राजवंशोंकी अपेक्षा चौलुक्योंका अंकित तिथिक्रम अत्यधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक है। चौलुक्योंकी उत्पत्ति विषयक विभिन्न सिद्धान्त हैं। इनमेंसे एक अग्निकुल सिद्धान्त है। इसके अनुसार कहा जाता है कि आबू पर्वतपर वशिष्ठ ऋषिने यज्ञ किया और उसकी वेदीसे प्रथम चौलुक्य अथवा चालुक्यकी उत्पत्ति हुई। किन्तु इस सिद्धान्तके समर्थनमें न कोई शिलालेख है और न ताम्रपत्र अथवा कोई ऐतिहासिक इतिवृत्त ही। पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्यके शिलालेखमें (विक्रम संवत् ११३३ और ११८३) यह लिखा है कि चालुक्य (सोलंकी) वंशकी उत्पत्ति चन्द्रवंशसे हुई जो ब्रह्माके पुत्र अत्रि द्वारा आविर्भूत हुआ था।[2] यह शिलालेख बम्बई प्रान्तके धारवाड़ जिलेके गोहाद गांव स्थित वीरनारायण मन्दिरमें मिला है। उक्त सोलंकी राजाके दूसरे उत्कीर्ण लेखसे भी उक्त कथनोंकी ही पुष्टि होती है।[3] पूर्वीय सोलंकी

---

[1]इंडि० ऐंटी०, खंड ६, पृ० १८१।

[2]ओं स्वस्ति समस्त जगत्प्रसूतेर्भगवतो ब्रह्मणः पुत्रस्यात्रेर्नेत्रसमुत्पन्नस्य यामिनी कामिनी ललाम भूतस्य सोमस्यान्वये सत्यत्याग शौर्यादि गुण निलयः केवल निज ध्वजिनीजव क्षपित प्रतिपक्ष क्षितीश वंश श्रीमानस्ति चालुक्यवंशः। इंडि० ऐंटी०, खंड २१, पृ० १६७।

[3]कर्नाटक इन्सक्रि० खंड १, पृ० ४१५।

राजा राजराजा प्रथम (वि० स० १०७९-११२०=सन् १०२२ १०६३)के एक ताम्रपत्रमें यह लिखा है कि भगवान पुरुषोत्तमके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्होंने अनेकानेक राजाओं तथा राजवंशोंकी उत्पत्ति की। इन राजवंशों और राजाओंने चक्रवर्ती सम्राटोंकी भाँति अयोध्यामें शासन किया। इसी राजवंशमें राजा विजयादित्य हुआ। वह दक्षिण विजयके लिए गया और उसीके वंशमें राजराजा[1] हुआ। इस कथनकी पुष्टि राजराजाके पिता राजा विमलादित्य (वि० स० १०७५=सन् १०१८)के एक ताम्रपत्र[2] द्वारा भी होती है।

चुलुक सिद्धान्त

चौलुक्योंकी उत्पत्ति विषयमें एक चुलुक सिद्धान्त भी है। कश्मीरी कवि बिल्हणने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित (वि० स० ११४३=सन् १०८५)में लिखा है कि ब्रह्माके चुलुक से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वंशमें हारित तथा मानव्य हुए। इन क्षत्रियोंने पहले अयोध्यामें शासन किया और तदनन्तर दक्षिण दिशामें एकके बाद दूसरी विजय करते आगे बढ़े।[3] यही सिद्धान्त अल्प परिवर्तनके साथ कुमारपालके

[1] इंडि० ऐंटी०, खंड १४, पृ० ५० ५५।

[2] इंडि० ऐंटी०, खंड ६, पृ० ३५१ ५८।

[3] सुधाकर चायकल क्षपाया सप्रक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम्
तद्विप्लवायव सरोजिनीना स्मितो मुख पकज वक्लगासीत ३६
शस्त्वा विधातुश्चुलुकात्प्रसूति तेजस्विनोन्यस्य समस्त जतु
प्राणश्वर पकजिनीवधूना पूर्वाचल दुर्गमिवारुरोह ३७
जगाम यावेपु रयाणनाम्ना परस्परादर्शन लेपनत्वम
सा चन्द्रिका चन्दनपककान्ति शीतांशुशाणाफलके ममज्ज ३८

समयकी वडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८ : सन् ११५१)में भी व्यक्त किया गया है। इसमें कहा गया है कि देवताओंने नम्रतापूर्वक जब राक्षसोंके अपमानोंसे रक्षा करनेकी प्रार्थना ब्रह्मासे की तो उस समय वे सन्ध्यावन्दन करने जा रहे थे। उन्होंने अपने "चुलुक"में गंगाका पवित्र जल लेकर एक वीरकी उत्पत्ति की। उस वीरका नाम चौलुक्य था जिसने तीनों संसारको अपने यश एवं कीर्तिसे पवित्र किया। उससे एक जाति उत्पन्न हुई। इसमें एकसे एक शौर्यवान और वीर्यवान शासक हुए। पतनावस्थामें भी इनका वैभव इनसे विलग नहीं हुआ। यह जाति अपनी वीरताके कारण प्रख्यात हुई और इसने समस्त संसारके सर्वसाधारणोंको आशीर्वाद दिया।[1]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंगके ताम्रपत्र तथा चोड़देव द्वितीय (वि० सं० १२००=सन् ११४३)के प्रकीर्ण लेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि सोलंकी शासक चन्द्रवंशी मानव्य गोत्री, तथा हरितके वंशज थे। मानव्य

संध्या समाधौ भगवान्स्यितोथ शक्रेण बद्धाज्जलिना प्रणम्य
विज्ञापितः शेखर पारिजातद्विरेफनादद्विगुर्णव चोभिः :३९:
विक्रमांकदेवचरितः सर्ग १ : ३६-३९।

[1]....नमस्यन्नपि निज चुलुके पुण्यगंगाम्बुपूर्णे।
सद्यो वीरं चुलुक्याह्वयमसृजमिदंयेन कीर्त्तिप्रवाहैः
पूतं त्रैलोक्यमेतत्रियतमनुहंरत्ये हेतो फलं श्री :२:
वंशकोपिततो बभूव विविधाश्चर्यैकलीलास्पद।
यस्यमाद् भुमि भृतोपि वीतगणिताः प्रादुर्भवंत्यन्वहं।
छायां यः प्रथित प्रताप महतीं ये विपन्नोपिसन्।
यो जन्मावधि सर्वदापि जगतो विश्वस्यदत्तेफलं :३:
वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २-३, इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६।
[2]गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ६।

तथा हरित कौन थ यह उक्त ताम्रपत्रम उल्लिखित नही किन्तु पश्चिमी सोलकी राजा जयसिंह द्वितीय (वि० स० १०८२=सन् १०२५)के एक प्रकीर्ण लखम उनका इतिहास दिया हुआ ह। इसम कहा गया ह कि ब्रह्मासे मनु और मनुसे मानव्यका आविर्भाव हुआ। मानव्यके वशज ही मानव्य गोत्रिय कहलाय। मानव्यका पुत्र हरित था और उसका पुत्र पक्षशिखी हरित हुआ। इसका पुत्र चालुक्य हुआ जिसका वश चालुक्य (सोलकी) वशके नामसे प्रसिद्ध हुआ।[1]

राजा पुरुषोत्तम[2] (वि० स० १३३० १३७५=सन् १२७३ १३१८) के दो उत्कीर्ण लेखोम लिखा है कि सोलकी राजा चन्द्रवशी थ। सालकी राजराजाके दानपत्रम जहा उसके राज्यारोहणका वर्णन है (वि० स० १०७९=सन् १०२२) वहा लिखा है कि वह सोमवश तिलक है। कलिंगतुम्भारानी एक तामिल काव्यम सोलकी राजा कुलोतुग चोडदेव प्रथमका ऐतिहासिक वर्णन है, उसमें लिखा है कि उसका जन्म चन्द्रवशमें हुआ था।[3] वीर चोडदेवके ताम्रपत्रमें (वि० स० ११४७=सन् १०९०) उसके पितामह राजराजाको सोमकुलभूषण[4] कहा गया है। अभिप्राय यह कि वह चन्द्रवशी राजा था। सोलकी राजा कुलोतुग चोडदेवके सामन्त बुद्धराजके दानपत्र (वि० स० १२२८=सन् ११७१)म चोडदेवके प्रख्यात प्रपितामह कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णु वर्धन)को चन्द्रवशी कहा गया ह।[5]

---

[1] (i) कर्नाटक इन्सक्रिप्शन खड १, पृ० ४८।
(ii) बाम्ब गजटियर खड १, भाग २, पृ० ३३९।
[2] गौरीशकर हीराचन्द ओझा सोलकी राजाओका इतिहास, पृ० ७।
[3] इडि० ऐंटी० खड १९, पृ० ३३८।
[4] इडि० ऐंटी० खड १, पृ० ५४।
[5] इडि० ऐंटी० खड ७, पृ० २६१।

हेमचन्द्रका अभिमत

शिलालेखो, ताम्रपत्रो तथा दानपत्रोके इन प्रमाणोंके अतिरिक्त समकालीन ऐसे प्रमाण है जिनसे विना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि सोलकी राजा चन्द्रवशी थ। यह पुष्ट प्रमाण हेमचन्द्रका है। अपने द्वयाश्रय काव्यमें उसने सोलकी राजा भीमदेव तथा चेदि नरेश कर्णदेवके दूताका मिलन कराया है। वार्ताके प्रसगम राजा भीमदेवके दूतन पूछा कि महाराज भीमदेव जानना चाहत है कि आप (चेदि नरेश कर्णदेव) मेरे मित्र है अथवा शत्रु। इस प्रश्नके उत्तरम चेदिराज कर्णदेवन कहा कि राजा भीमदेव अविजेय सोम (चन्द्र) वशके है।[1] जिन हर्षगनीके वस्तुपाल चरित (वि० स० १४९७=सन् १४४०)म सोलकीराज भीमदेव चन्द्र-वशका भूषण कहा गया है।[2]

इस प्रकार पृथ्वीराजरासोमें वर्णित चौलुक्योकी उत्पत्तिकी अग्निकुल कथा, आधुनिक एतिहासिक विश्लेषणके द्वारा अतिरजित वर्णन तथा प्रशस्तिमात्र स्वीकार की जाती है। गुजरातके इतिहासके कुछ विशषज्ञ तो अग्निकुल उत्पत्तिकी कथाको किसी प्रकार स्वीकार ही नही करते। उनका तो रासोकी एतिहासिकतापर भी सन्देह है।[3] उत्पत्तिकी "चुलुक कथा के सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि सस्कृत व्याकरणके अनुसार "चौलुक्य" शब्द 'चुलुक्य' से बना है और इस कारण प्राचीन लेखकोन ब्रह्माके 'चुलुक'से 'चौलुक्य'की उत्पत्तिकी करपना सहज ही कर ली होगी। इस विवादास्पद प्रश्नका निणय करनमें जहातक उत्कीर्ण लेखो तथा ताम्रपत्रोके प्रमाण मिलते है, यह स्वीकार करना समीचीन होगा कि चौलुक्य प्राचीन कालके चन्द्रवशी क्षत्रिय थ।

---

[1] द्वयाश्रय काव्य सर्ग ९, श्लोक ४०-५९।

[2] हर्षगनी कृत वस्तुपाल चरित्र ९ ७९।

[3] गौरीशकर हीराचन्द ओझा सोलकी राजाओका इतिहास, पृ० १२।

चौलुक्य वंशका मूलस्थान

चौलुक्य वंशके मूलस्थानके विषयमें लोगोंमें बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका मूलस्थान उत्तरभारत बताते हैं, तो कुछ इस मतके हैं कि ये दक्षिणसे आये। श्री टाड[1]का कथन है कि भाटों तथा परम्परासे राजदरबारमें विरुदावली गानेवाले कवियोंकी रचनाओंमें सोलंकियोंको गंगा तटके शूरके प्रसिद्ध राजकुमारके रूपमें चित्रित किया गया है। यह उस समयकी बात है जब राठौरोंने कन्नौजपर अधिकार नहीं किया था। वंशावली सूची[2]में लाकोट जो आधुनिक लाहौर है, उनका स्थान कहा गया है। इसमें ये उसी शाखा (माध्वनी)के कहे गये हैं, जो चौहानोंकी शाखा थी। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आठवीं सदीमें लगहस तथा डोगरा मुलतान और उसके निकटवर्ती प्रदेशमें रहते थे। ये भट्टिसोंके शत्रु थे। ये मालाबार तटपर कैलियन (कल्याण)के राजकुमार[3] थे, जिस नगरमें आज भी प्राचीन गौरवके चिह्न विद्यमान हैं। यहीं कैलियन (कल्याण)से सोलंकी वंशका एक वृक्ष अनहिलवाडा पुतलन (पाटन)के चौवुरस राजवंशमें पनपा। विक्रम संवत् ९८७ (९३१ ई०)में चौवुरस वंशके अन्तिम राजा विजराज तथा स्त्रियोंको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके अधिनियम, इन दोनोंकी अवमानना हुई। इसी समय युवक सोलंकी मूलराज

---

[1]टाड : राजस्थान, खंड १, भाग ७, पृ० १०४।

[2]सोलंकी गोत्राचार इस प्रकार है—"माध्वनि शाखा-भारद्वाज गोत्र गुरुत्स लोकोदा नेकस-सरस्वती (नदी) सामवेद कपिलेश्वरदेव कर्दुमन रिकेश्वर तीन प्रवर जेनार-कुलदेवी-'भंयाल पुत्र'"—टाड : राजस्थान: पृष्ठ १०४।

[3]बम्बईके निकट, कल्याण शुद्ध रूप।

के सम्मुख सुदृढ चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करनेके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[1]

इस सम्बन्धमे श्री सी० वी० वैद्य[2]का कथन है कि "इस प्रश्नके विषयमें सबसे पहले यह ध्यानमे रखना होगा कि यह "चौलुक्य" तथा दक्षिणका "चालुक्य" परिवार एक ही नही हैं अपितु पृथक्-पृथक् है। यद्यपि इन दोनोमें साम्य है तथा प्राचीन कवियो तथा कथाकारोने इन्हे एकही माना है। गोत्रकी भिन्नतासे ही परिवारकी पृथकताका परिचय मिलता है। छठी शताब्दीमें दक्षिणके चालुक्योने अपना गोत्र मानव्य अंकित कराया है। जैलापा तथा अन्य स्थानोके चौलुक्य इसी वश तथा विवरणके है। दुर्भाग्यसे गुजरातके चौलुक्योने अपने विवरणोमे अपने गोत्र नही दिये हैं। फिर भी हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं, जैसा कि १०वी शतीके एक वेदि विवरणमें दिया गया है कि उनका गोत्र भारद्वाज था।[3] पृथ्वीराजरासोमें चँदने भी चौलुक्योका यही गोत्र कहा है। रीवा तथा गुजरातके सोलकी अब तक अपनेको इसी गोत्रका बताते है और इस प्रकार बिना सन्देह हमे भी यह निश्चय मानना चाहिए कि उनका गोत्र सदा भारद्वाज ही रहा है।[4]

वंशका संस्थापक : मूलराज

श्री एच० सी० रेका कथन है कि ७२०-९५६ ईस्वीमे कपोतक जो चावड़ाके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे, पाचसारामे शासन कर रहे थे। यहाके

---

[1]यह जयसिंह सोलंकीका पुत्र था तथा कैलियनका प्रसिद्ध राजकुमार था। इसने भोजराजकी पुत्रीसे विवाह किया था। यह विवरण एक बिना शीर्षककी अपूर्ण भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकसे लिया गया है, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। टाड : राजस्थान, खण्ड १, पृ० १०३।

[2]सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत खण्ड ३, अध्याय ७, पृ० १९५।

[3]इंडि० एंटी० : खंड १, पृ० २५३।

[4]एच० एम० एच० आई०, खंड ३, अध्याय ७, पृ० १९५-६।

अन्तिम सामन्तसिंह उर्फ भुवतके राज्यकालमें कन्नौजके कल्याणकटकके शासक भुवनादित्यके तीन पुत्र, राजी, बीजा तथा दंडक भिक्षुकका वेष धारणकर सोमनाथकी तीर्थ यात्रा करने निकले। लौटते समय वे सामन्तसिंह द्वारा आयोजित रथ प्रदर्शनके समारोहमें उपस्थित हुए। राजीने रथ संचालन सम्बन्धी कलाकी कुछ ऐसी आलोचना की जिससे सामन्तसिंह प्रसन्न हो गया। इतना ही नहीं उसने राजीको किसी राजवंशका समझकर उससे अपनी बहन लीलादेवीका विवाह कर दिया। संयोगसे लीलावती गर्भवती ही मर गयी। उसका गर्भस्थ शिशु शस्त्रोपचारके उपरान्त निकाला गया। यह शस्त्रोपचार उस समय हुआ जब मूलग्रह था। यही शिशु मूलराज था। यह योग्य तथा शक्तिशाली राजकुमार निकला। इसने अपने चाचाकी हत्या कर राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया।[1]

इस कथासे सत्य तथा कल्पनाको पृथक करना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। ६३७ ईस्वीके चालुक्य पुलकेशी अवनीजनाश्रयके नौसेरी दानपत्रसे यह बात भलीप्रकार प्रमाणित हो जाती है कि आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें चावडा वंश गुजरातमें राज्य कर रहा था।[2] इससे यह भी पता चलता है कि ७६३ ईस्वीके कुछ पहले अरबों (ताजिकों)की सेनाने सैन्धव, कच्छेला, सौराष्ट्र, चौतक लोगोंको पराजित एवं पददलित किया था। मौर्य तथा गुर्जरनरेश नवासारिका (लाटप्रदेशमें)के सुदूर दक्षिण क्षेत्र तक पहुंचे थे। महिपालके हड्डाला-दानपत्रसे स्पष्ट है कि कैपस लोग पूर्वी काठियावाड तथा मध्य गुजरातमें ९१४ ईस्वी तक शासनाधिकारी रहे। यूना दानपत्रसे विदित होता है

---

[1](i) बी० जी० खंड १, भाग १, पृ० १५६-५७, (ii) कुमारपाल चरित : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२६ (१-१५), (iii) ए० ए०के० खंड २, पृ० २६२।

[2]बाम्बे गजेटियर : खंड १, भाग २, पृ० १८७-८८ तथा ३७५।

कि ८९३ ई० तथा बादमे भी कन्नौजके शासकोंके चौलुक्य राज्याधिकारी गुजरातमे शासन कर रहे थे। इसमे कोई आश्चर्य नही कि इन्ही अधीनस्थ शासकोंमे जिसका सम्बन्ध कल्याणीके चौलुक्योंसे रहा होगा, कन्नौजके प्रतिहारोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पाचसेराके छोटे चावडा राज्यवशको उखाड फेंकनमें समर्थ एव सफल हुआ हो। इसप्रकार कल्याणके एक राजकुमारकी राज्यपरम्पराका कन्नौजमे प्रारम्भ हुआ। यह निश्चित मान लेना भी उचित न होगा कि दसवी सदीके पूर्वार्धमें कन्नौज प्रान्तमे कल्याण नामक नगरका अस्तित्व था और वहाका शासन भी चौलुक्य राजवशके अधीन था। इन अनुमानोका ठीक ठीक महत्त्व चाहे जो हो, इस निर्णयपर आना उचित ही होगा कि गुजरातके चौलुक्योका सस्थापक मूलराज, चावड राजकुमारीका पुत्र था और उसने अपने मामाको अपदस्थ कर अनहिलपाटक[1]का राज्य हस्तगत कर लिया। अधिकाश जैन ऐतिहासिक तिथिक्रमोमें यह स्वीकार किया गया है कि गुजरातका प्रथम चौलुक्य शासक राजीका वशज था। यह राजी कन्नौजकी राजधानी कल्याणके राजा भुवनादित्य तथा अनहिलवाडपाटनके अन्तिम चौड राजा अथवा चावडा राजाकी बहिन लीलादेवीका पुत्र था।[2]

मेरतुगका अभिमत है कि विक्रम सवत् ९९८मे राजी अपने दो भाइयोंके साथ वेशपरिवर्तन कर सोमनाथपाटनकी यात्रा करने गया था। यात्रामें लौटते समय अणहिलवाडाके रथ प्रदर्शन समारोहमे वे शामिल हुए। राजीसे रथ सचालन कलाकी आलोचना सुनकर वहाका राजा सामन्तसिंह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजीके वशका विवरण जानकर उसने अपनी

---

[1]डी० एच० एन० आई० : खड २। बादके विवरण पत्रोमें "अणहिलपाटक", अनहिलवाडा या उनहिलपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सरस्वती नदीके तटपर अवस्थित आधुनिक पाटन।

[2]फोर्बस्. रासमाला, खड १, पृ० ४९।

बहिन ललितादेवीसे उसका विवाह कर दिया। प्रसवके समय ललितादेवीकी मृत्यु हो गयी किन्तु शिशु शस्त्रोपचारके पश्चात् जीवित निकाल लिया गया। मूल नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ था, इसीलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराजकी शिक्षा-दीक्षा उसके मामाके यहा हुई तथा उसके मामाने उसे गोद ले लिया। मूलराज बड़ा हुआ, तो सामन्तसिंह जब आसवके आवेगमें रहते तो बार बार इस आशयका कथन व्यक्त करते कि "मैं तुम्हें राज्यसत्ता सौंपकर पृथक हो जाऊंगा।" किन्तु जब सामन्तसिंह गम्भीर मुद्रामें होते थे तो कहते कि राज्यसत्ता छोड़नेकी, अभी मेरी इच्छा नही। कहते हैं कि यह बात विभिन्न मुद्राओंमें इतनी बार कही गयी कि मूलराज इससे ऊब उठा। एकदिन उसने अपने मामा सामन्तसिंहकी हत्या कर डाली तथा राजसिंहासनपर अधिकार कर लिया।[1]

इतिहासकार फोर्बस्ने यह ऐतिहासिक विवरण कुछ अन्तरके साथ स्वीकार कर लिया है कि मूलराजका पिता कन्नौजका न था बल्कि दक्षिणके कल्याणका था जो स्थान दक्षिणमें महान चालुक्य राजवंशका केन्द्र था।[2] प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री एलफिन्सिटनका भी यही मत है।[3] मूलराजकी माता चौड राजवंशकी राजकुमारी थी और उसका पिता चौलुक्य था, यह सभी प्राप्त सामग्रियोंसे स्पष्ट है। किन्तु यदि मेरुतुंगके ऐतिहासिक तिथिक्रमसे उक्त कहानीकी तुलना की जाय तो उक्त कथाका व्यतिक्रम स्पष्ट हो जायगा। मेरुतुंगका कथन है कि सामन्तसिंह ९९१ विक्रम संवत्में राजसिंहासनपर आसीन हुआ और सात वर्षों तक ९९८ विक्रम संवत् तक राज्य करता रहा। उसी समय राजी अणहिल्लवाड़ेमें ९९८ वि० सं०में आया और उसने लीलादेवीसे विवाह किया। लीलादेवीसे उन्हें एक पुत्र

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १५-१६।

[2] रासमाला : खंड १, पृ० २४४।

[3] भारतका इतिहास : पृ० २४१, छठां संस्करण।

हुआ। उसका पालन पोषण उसके मामाके संरक्षणमें हुआ तथा उसने अपने मामाकी हत्या कर डाली।

अब प्रश्न उठता है कि इन समस्त घटनाओंके लिए बीस वर्षका समय तो चाहिये ही। लेकिन बताया जाता है कि राजी वि० सं० ९९८में पाटन आया तथा मूलराजने अपने मामाको उसी वर्ष अपदस्थ कर दिया। यदि कहा जाय कि राजीका पाटन आगमन पहले होना चाहिये तो भी स्थिति सुस्पष्ट नहीं होती। इसका कारण यह है कि सामन्तसिंहने केवल सात वर्षों तक शासन किया और उसके राज्यकालमें यह घटना सम्भवतः नहीं हुई। इस प्रकार पाटनमें राजी तथा राजसिंहासनारूढ सामन्तसिंहके मिलनकी घटना सत्यकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती। घटनाओंका यह विश्लेषण मेरुतुंगकी पूरी कथाको अपुष्ट जनश्रुति तथा कल्पनाके आधारपर खड़ा सिद्ध करता प्रतीत होता है। चावड़ा तथा चौलुक्य शासकोंके मिलनकी उक्त कहानी इसप्रकार कल्पितसी ही प्रतीत होती है। इस विषयमें द्वयाश्रय काव्यका मौन और भी सन्देहजनक है। यद्यपि यह कहा जाता है कि यह काव्य हेमचन्द्रकी ही अकेले रचना नहीं, फिर भी मेरुतुंगके ऐतिहासिक वृतसे यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है।[1] द्वयाश्रयमें मात्र यही कहा गया है कि मूलराज चौलुक्य था। उसकी शक्ति अत्यधिक थी और वह वीर था। मूलराजके दानपत्र क्रमसंख्या १में वंशकी उत्पत्तिके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं। यह अत्यन्त संक्षिप्त है फिर भी इससे मेरुतुंगके मतका खंडन हो जाता है। इसमें मूलराजने "अपनेको सोलंकियों (चालुक्यानव्य)का वंशज बताया है तथा महान राजा राजीके वंशका कहा है। इसमें यह भी कहा गया

---

[1]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८२।

[2]अणहिलवाड़ेके चौलुक्योंके एकादश दानपत्र : इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

है कि उसने सारस्वत मंडलपर (सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेश) अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त की थी।"

चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश

अब यह स्वीकार किया जा सकता है कि सामन्तसिंहकी हत्याको पंडितों तथा भाटोंने "बाहुबल तथा शक्तिसे प्राप्त विजय"का रूप दे दिया होगा, लेकिन मेरुतुंगकी कहानीमें इसका साम्य नहीं होता। उसने राजीको "महान् राजाओंमें महान्" नहीं स्वीकार किया है।

अनहिलवाड़ेके चौलुक्य राजवंशके संस्थापकके इतिहासपर कुमारपालके समयके शिलालेख वडनगर प्रशस्तिसे एक नवीन प्रकाश पड़ा है। इसमें चौलुक्य वंशकी उत्पत्तिका इतिहास है। इस शिलालेखमें कहा गया है कि "प्रसिद्ध वीर मूलराज राजाओंके मुकुटका ऐसा बहुमूल्य और बेजोड़ मोती था जिसने अपने वंशकी प्रसिद्धि चतुर्दिक फैलायी...." उसने चावडा वंशकी राजकुमारीके भाग्यको उत्कर्षके उच्चशिखरपर पहुंचाया। राज्यलक्ष्मी उसकी दासी थी। वह विद्वत् समूहके आह्लादका विषय था। उसके सम्बन्धी उससे प्रसन्न थे। ब्राह्मण, भाट तथा सेवक सभी उसके शौर्यपर मुग्ध थे। उसकी वीरताके कारण सभी क्षेत्रोंके राजाओंकी सौभाग्यलक्ष्मी उस समय उसकी असिकक्षमें ही रहनेमें प्रसन्नताका अनुभव करती थी।[1] वंश उत्पत्तिका यह विवरण मूलराजके उस दानपत्र[2]से बहुत कुछ मिलता जुलता है जिसमें कहा गया है कि उसने अपने बाहुबलसे सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इन प्रमाणोंसे अब यह स्वीकार करनेमें बल मिलता है कि प्रथम चौलुक्यने गुजरातपर

---

[1]वडनगर प्रशस्ति : श्लोक २से ६, इण्डि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३-३०५।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १९२।

विजय प्राप्त की थी, न कि जैसा प्रबन्धोंमें वर्णन है कि उसने अपने निकट सम्बन्धी अन्तिम चावडा राजासे विश्वासघात कर उसकी हत्या की थी।[1]

वडनगर प्रशस्ति तथा मूलराजके दानपत्रके इन ठोस प्रामाणिक आधारों-पर गुजरातके चौलुक्य राजवंशकी उत्पत्तिकी रूपरेखा अंकित करना युक्ति-युक्त होगा। उत्कीर्ण लेखोंमें उक्त वर्णन, दानपत्र तथा अन्यत्र सर्वत्र मूलराज-को अनहिल्वाडेका प्रथम चौलुक्य राजा कहा गया है। इनसे इस तथ्यका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूलराजका पिता चौलुक्य वंशके मूलस्थानका राजा था तथा मूलराजने "राज्यकी खोजमें" उत्तरी गुजरातपर आक्रमण किया।

अब इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि राजीका मूलस्थान तथा राज्य कहाँ था? गुजरातके इतिहासमें पता चलता है कि विक्रम संवत् ७५२में कन्नौजमें कल्याण कटकमें भूराजा तथा भूवड (भूपति)ने जय-शेखरको पराजित कर गुजरातको अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कर्णादित्य, चन्द्रादित्य, सोमादित्य तथा भुवनादित्य कल्याणके राज-सिंहासनपर आरूढ हुए। अन्तिम राजा भुवनादित्य राजीका पिता था। पाश्चात्य इतिहासकार श्री फोर्बस्, श्री एल्फिनिस्टन तथा अन्य लोगोंने उक्त कल्याणको दक्षिणी चौलुक्योंकी राजधानी माना है। उनका कथन है कि गुजराती उक्त स्थानकी जो अवस्थिति बताते हैं वह भ्रमात्मक है। इन यूरोपीय इतिहासकारोंके तर्कके पक्षमें यह तथ्य सबसे प्रबल है कि दक्षिण स्थित कल्याण आठ सदी पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी थी, और कन्नौजमें इस नामके कोई प्रसिद्ध नगरका पता नहीं चलता किन्तु सोलंकी चौलुक्योंके शासनके मूलप्रदेशोंके निवासियोंका अभिमत, जैसा कि डाक्टर बूलरका कथन है उससे भी अधिक प्रबल है।[2]

---

[1]प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १६।

[2]जी० बूलर - ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात, इंडि० एंटी० खंड ६, पृ० १८१।

मूलस्थान उत्तर भारत

अनहिलवाडेके चौलुक्योका मूलस्थान उत्तरभारत अथवा दक्षिण-भारतमें था; इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णयके निमित्त निम्नलिखित तथ्योकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

१. गुजरातके चालुक्य अपनेको चौलुक्य (सोलकी) कहते है और अब इनके वंशका नामकरण चौलुक्य या चालिक्य अथवा चालक्य हो गया है। इसीलिए इनके आधुनिक वशधरोंको "चालके" सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि चौलुक्य और चालुक्य एक ही नामके दो रूप है तथापि यह बात समझमें नही आती कि पाटन राजवशके संस्था-पकने, यदि वह सीधे कल्याणसे आता जहां कि चालुक्य शब्द चलता है तो अपनेको "चौलुक्कि" क्यों कहा? ठीक इसके विपरीत यदि यह दक्षिणके अपने बन्धुओंसे काफी वर्षों पूर्व विलग हो गया हो और उत्तर भारतमें रहनेवाले परिवारका हो तो यह अन्तर समझा जा सकता है।

२. दक्षिणी चालुक्योके कुलदेवता विष्णु है जबकि उत्तरी चालुक्योके कुलदेवता शिव रहे है।

३. दक्षिणी चालुक्योका प्रतीक चिह्न शिवका नन्दी है।[1]

४. भूपतिसे राजी तकके चालुक्य नरेशोंकी वंशावली और दक्षिणी चालुक्योके शिलालेखोंमें उत्कीर्ण वंशावलीमें साम्य नही है।

५. चौलुक्य वंशके प्रसिद्ध संस्थापक मूलराज तथा उसके दक्षिणी सम्बन्धियोमें मैत्री सम्बन्ध न था। मलराजको सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् तेलगानाके तेलपा द्वारा वरपके नेतृत्वमें भेजी हुई सेनासे सामना करना पड़ा था।

---

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

६ मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारियोंने गुजरातमें ब्राह्मणोंकी अनेक बस्तियाँ बसायी।[1] ये ब्राह्मण आज तक औदीच्य (उत्तरी)के नामसे प्रसिद्ध हैं। उसने इन ब्राह्मणोंको पूर्वी काठियावाडमें सिंहपुर, स्तम्भतीर्थ या कैम्बल तथा अन्य अनेक ग्राम प्रदान किये जो बनस तथा सावलमतीके मध्यमें अवस्थित थे।[1] साधारणत यह नियम है कि जब कोई राजा नये प्रदेशोंपर विजय प्राप्त करता है तो वह अपने मूलस्थानके निवासियोंको बुलाकर उन्हें वहा बसाता है। इसप्रकार यदि मूलराज दक्षिण भारतसे आया होता तो वह तैलंगाना तथा कर्नाटक ब्राह्मणोंकी बस्तिया बसाता। फलस्वरूप औदिच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंके स्थानपर दक्षिणी ब्राह्मणोंका बाहुल्य एव प्राधान्य रहता। पर ऐसा नही है। यदि जैसा कि गुजरातके ऐतिहासिक तिथि-क्रम अंकित करनेवाले कहते हैं वह स्वीकार कर लिया जाय कि चौलुक्य उत्तर भारतके थे, तो औदिच्य(उत्तरी) ब्राह्मणोंकी बस्तियोंके बसानेकी बात तत्काल समझमें आ जाती है। यह तथ्य इतना युक्तियुक्त और न्यायसंगत, है कि इससे गुजरातियोंके ऐतिहासिक विवरणका प्रबल समर्थन प्राप्त होता है कि चौलुक्य उत्तरी भारतके ही थे और वे दक्षिण भारतसे नही आये थे।

अब प्रश्न आता है—कन्नौजमें चौलुक्य राज्य तथा एक दूसरे कल्याणके अस्तित्वका। यह कोई असम्भव नही। आठवी शतीमें यशोवर्धनके कालसे दसवी शताब्दीके अन्त तक जबकि राठौर आये कनौजका इतिहास अन्धकारमें है। कनौजके इतिहासका यह अन्धकार युग लगभग उसी कालका है जिसमें भूपति तथा उसके उत्तराधिकारी हुए थे। भूपति सन् ९९५-६म शासन कर रहा था तथा सन् ९४१-४२म राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ। फिर यह भी बात है कि उनके पूर्वज उत्तरसे आये और उन्होंने अयोध्या तथा अन्य नगरोंपर शासन किया था।[2] यह बात भी

---

[1] फोर्बस् : रासमाला, खंड १, पृ० ६५।

[2] इंडि० ऐंटी० : खंड १४, पृ० ५०-५५।

ध्यान देने योग्य है कि अब तक कन्नौजके जिलामें चौलुक्य राजपूत हैं। दूसरे कल्याणकी स्थिति तथा अस्तित्वका जहा तक प्रश्न है यह ध्यानमें रखा जाना चाहिये कि यह नाम कई स्थानोंका रहा है। इस नामके दो नगर तो प्राचीन तथा बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे एक बम्बईके निकट कल्याण है जिसे यूनानियोंने कल्लिनी कहा है तथा दक्षिण कल्याण। यह पहले ही बताया जा चुका है कि चौलुक्य मलाबार तटके "कैल्लियन" (कल्याण) नामक नगरके राजकुमार थे, जिसके वैभवपूर्ण ध्वसावशेष अब तक विद्यमान हैं।[1] इन समस्त स्थितियोंका विश्लेषण तथा गुजरातियोंके कथनको ध्यानमें रखकर यह स्वीकार करना उचित होगा कि मूलराज उस राजाका पुत्र था जो कान्यकुब्जमें शासन करता था। उसने गुजरातपर विजय प्राप्त की जो सम्भवतः उसके पैतृक साम्राज्यका प्राचीन अधीनस्थ प्रदेश था। इस प्रकार अनहिलवाडमें चौलुक्य साम्राज्यका संस्थापक मूलराज दक्षिण भारतका नहीं, अपितु उत्तरी भारतवर्षका ही मूल निवासी था।

वंशावली

अनहिलवाडके चौलुक्योंकी वंशावली जाननेके लिए प्रभूत तथा प्रामाणिक सामग्री विद्यमान है। सोलंकी चौलुक्योंके संस्थापक मूलराजसे लेकर बारहवें तथा अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल तककी सम्पूर्ण वंशावलीके लिए प्रामाणिक इतिहास, शिलालेख तथा ताम्रपत्र हैं।[2] विश्वसनीय तथा लिखित इतिहासोंमें मेरुतुंगकी थेरावली है, जिसमें वंशावली तथा वंशवृक्ष दिया गया है। यह ऐतिहासिक तिथिक्रम सहित है। यह संस्कृत भाषामें है।[3] अनेक चौलुक्य नरेशोंके शासनकालका उल्लेख

---

[1] यह स्थान बम्बईके निकट है। टाड राजस्थान - खंड १, भाग १, पृ० १०४-५।

[2] इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १८१।

[3] जे० बी० आर० ए० एस० खंड ९, पृ० १४७।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें भी दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक जैन ग्रन्थकारोंने अपनी अर्ध-ऐतिहासिक रचनाओंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावलीका उल्लेख किया है।[1] किन्तु वंशावलीकी सबसे प्रामाणिक वृक्षावली शिलालेखों[2] तथा ताम्रपत्रों[3]से प्राप्त होती है। उक्त आठ भूमिदानपत्रोंमेंसे[4] सात (४से १० तक) में चौलुक्य राजाओंकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है।

थेरावलीमें चौलुक्योंकी वंशावली इसप्रकार दी गयी है—श्री मूलराज-का पुत्र वल्लभराज हुआ और वल्लभराजके पश्चात् उसका भाई दुर्लभराज उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद उसका भाई नागिलाका पुत्र भीमदेव राज्यगद्दीका उत्तराधिकारी हुआ। भीमदेवके पश्चात् उसके पुत्र श्री कर्णदेवको राजगद्दीका उत्तराधिकार मिला। श्री कर्णदेवके पुत्र जयसिंह सिद्धराज हुए। जयसिंह सिद्धराजके बाद श्री त्रिभुवनपालका पुत्र श्री-कुमारपाल शासनारूढ हुआ। त्रिभुवनपाल, भीमदेवके पुत्र क्षेमराजके पुत्र देवपालका पुत्र था। कुमारपालके अनन्तर उसके भाई महिपालके पुत्र अजयपालको राज्यका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उसके बाद लघु मूलराज हुआ और पश्चात् भीमदेव द्वितीयने शासन किया। चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा त्रिभुवनपालका नाम थेरावलीमें नहीं दिया गया है।[5]

सोमप्रभाचार्यके कुमारपाल प्रतिबोधमें भी चौलुक्य नरेशोंकी वंशावली दी हुई है। इसमें लिखा हुआ है कि अनहिलपुर पाटनमें पहले चौलुक्य

---

[1]सोमप्रभाचार्य : कुमारपालप्रतिबोध।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१। चौलुक्य राजाओंके एकादश दानपत्र।

[3]इपि० इंडि० : खंड १, वडनगर प्रशस्ति, प्राची शिलालेख।

[4]इंडि० ऐंटी० : खंड ६, पृ० १८१।

[5]जे० बी० आर० ए० एस० : खंड ९, पृ० १४७।

वशका राजा मूलराज शासन करता था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमश इस प्रकार हुए—चामुडराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव तथा जयसिंहदेव। जयसिंहदेवका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जो भीमराजका प्रपौत्र था। भीमराजको क्षेमराज नामक पुत्र था। क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद था। इसी देवप्रसादका पुत्र त्रिभुवनपाल था, जो कुमारपालका पिता था।[1]

इन ग्रन्थोंमें उल्लिखित विवरणोंके अतिरिक्त चौलुक्योंकी वशावलीका प्रामाणिक विवरण अन्य सूत्रोंसे भी मिलता है। ये हैं गुजरातके चौलुक्य नरेशोंके सात ताम्रपत्र[2] जिनमें चौलुक्य राजवशकी सम्पूर्ण वशावली दी हुई है—

१ मूलराज प्रथम
२ चामुडराज
३ वल्लभराज
४ दुर्लभराज
५ भीमदेव प्रथम
६ कर्णदेव, त्रैलोक्यमल्ल
७ जयसिंहदेव
८ कुमारपालदेव
९ अजयपाल, महामाहेश्वर
१० मूलराज द्वितीय
११ भीमदेव
१२ जयसिंह
१३ त्रिभुवनपालदेव

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४-५।

[2] इडि० ऐंटी० खड ६, पृ० १८१ तथा मूल ताम्रपत्र।

वंशावली सम्बन्धी इन ताम्रपत्रोंका विश्लेषण करनेपर यह स्पष्ट है कि थोड़े बहुत अन्तरके अतिरिक्त सभीमें साम्य है। इसप्रकार दानपत्र ४ तथा ३में जो अत्यल्प अन्तर है, वह नगण्य है। ५वें दानपत्रका प्रथम पद्य उन्हीं राजाओंका उल्लेख करता है जिनका विवरण दानपत्रकी ४ क्रमसंख्याके सातवें पद्यमें मिलता है। इन दोनोंमें ही जयसिंहका नामोल्लेख नहीं हुआ है। छठवें दानपत्रके प्रथम पद्यकी वंशावली तथा विक्रम संवत् १२८३के ५वें दानपत्रमें उल्लिखित वंशवृक्षमें जयसिंहके विवरणके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं। दानपत्र ७ १ तथा वि० सं० १२८३के ५वें दानपत्रमें वि० सं० १२६३के ३रे दानपत्रके अनुसार जयसिंह तथा मूलराज द्वितीयका विवरण है। दानपत्र ८ १की वंशावली तथा वि० सं० १२८८के ७वें दानपत्रमें भी साम्य है। कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एकमें मूलराज द्वितीयकी तुलना म्लेच्छोंके अन्धकारसे व्याप्त संसारमें प्रकाश फैलानेवाले प्रातः रविसे की गयी है। दानपत्र ९ १की वंशावलीका क्रम वि० सं० १२९५ के ८वें दानपत्रसे प्रायः मिलता जुलता है। अन्तर एकमें केवल यह है कि चौलुक्य वंशके नवम राजा अजयपालको महामाहेश्वरकी उपाधि दी गयी है। इसीप्रकार दानपत्र संख्या १०'१की वंशावली तथा वि० सं० १९६६के दानलेखमें वंशके ग्यारह राजाओंकी नामावलीमें साम्य है। प्रथममें त्रिभुवनपालदेवका नाम नहीं है।

कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति तथा प्राची शिलालेखोंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावली कुमारपाल तक दी हुई है। वडनगर प्रशस्तिमें गुजरातके चौलुक्य राजाओंका क्रम इस प्रकार है—१. मूलराज, २ उसका पुत्र चामुंडराज, ३ उसका पुत्र वल्लभराज, ४. उसका भाई दुर्लभराज, ५ भीमदेव, ६ उसका पुत्र कर्ण, ७ उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज और ८. कुमारपाल। प्राची शिलालेखमें चौलुक्य राजाओंकी यही वंशावली कुमारपाल तक अंकित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें वल्लभराजका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

वंशावली सम्बन्धी इन समस्त सामग्रियोंपर विचार तथा विश्लेषणके अनन्तर चौलुक्य राजाओंका वंशवृक्ष निम्नलिखित प्रकार स्थापित करना उचित होगा—

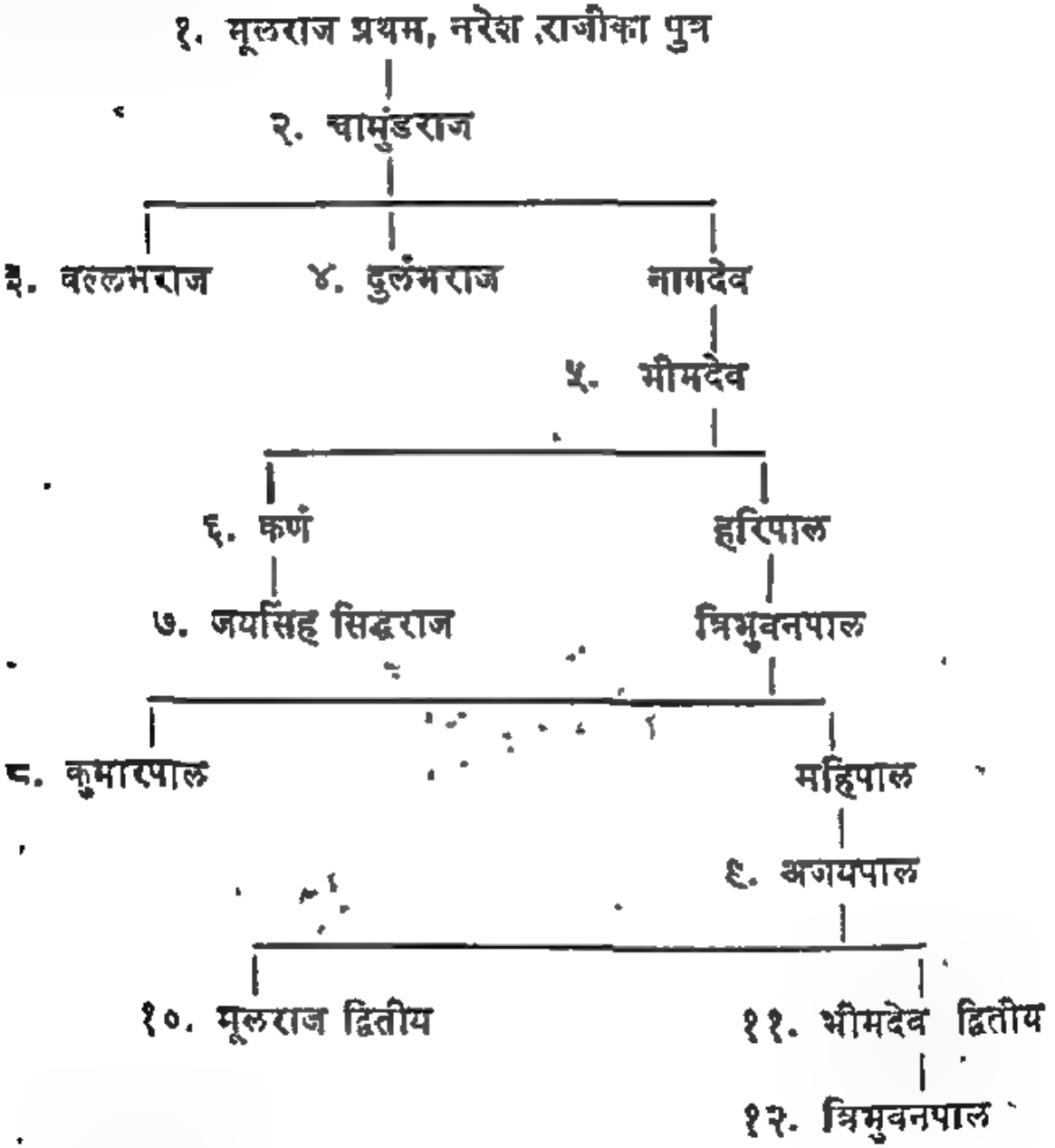

तिथिक्रम

मेरुतुंगकी थेरावलीसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०१७में चौलुक्य श्रीमूलराजने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ३५ वर्षों तक

शासन किया। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १०५२में उसका पुत्र वल्लभराज शासनारूढ हुआ और १४ वर्षों तक राज्य करता रहा। वि० स० १०६६में उसका भाई दुर्लभ उत्तराधिकारी हुआ और वह १२ वर्षों पर्यन्त शासन करता रहा। वि० स० १०७८में उसके भाई नागदेवके पुत्र भीमदेवने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ४२ वर्षों तक सुदीर्घ शासन किया। वि० स० ११२०में उसका पुत्र श्रीकर्णदेव राजगद्दीपर बैठा और ३० वर्षों तक शासनारूढ रहा। मेरुतुंगका कथन है कि वि० स० ११३० कार्तिक शुद्ध तृतीयासे तीन दिन तक पादुका राज्य था। उसी वर्ष मार्गशीर्ष शुद्ध ४को त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल राज्याधिकारी हुआ तथा वि० स० १२२९ पौष, शुद्ध द्वादशी तक शासन करता रहा। कुमारपालने ३० वर्ष, १ मास तथा ७ दिनोंकी अवधिपर्यन्त राज्य किया। कुमारपालके बाद उसी दिन उसके भाई महिराजका पुत्र अजयपाल राज्यगद्दीपर बैठा। ३ वर्ष, २ मासके पश्चात् विक्रम संवत् १२३२, फाल्गुन शुद्ध द्वादशीको लघु मूलराज (मूलराज द्वितीय) राजगद्दीपर बैठा। वि० स० १२३४की चैत्र सुदीसे २ वर्ष, १ मास तथा २ दिनों तक उसने शासन किया। इसी दिन भीमदेव द्वितीय शासनारूढ हुआ।

विभिन्न ऐतिहासिक सूत्रोंसे जो प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं, उनके आधारपर चौलुक्य राजाओंका तिथिक्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

राजाओंका क्रम	प्रबन्ध चिन्तामणि	कुमारपाल प्रबन्ध	पाटावलि	शासनावधि[1]
मूलराज	३५ वर्ष	३५ वर्ष	३५ वर्ष	सन् ९६१-९९६
चामुंडराज	१३ वर्ष	१३ वर्ष	१३ वर्ष	सन् ९९७-१००९

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ६, इंपि० इंडि० : खंड ८ इनमें डाक्टर बूलर तथा अन्य विद्वान इससे सहमत हैं।

वल्लभराज	६ मास	६ मास	६ मास	सन् १००९-
दुर्लभराज	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	११ वर्ष ६ मास	सन् १००९-१०२१
भीमदेव	४२[1] वर्ष	४२ वर्ष	४२ वर्ष	सन् १०२१-१०६३
कर्णदेव	अलिखित	२९ वर्ष	२९ वर्ष	सन् १०६३-१०९३
जयसिंहदेव	४९ वर्ष ७	अलिखित	४८ वर्ष ८ मास १० दिन	सन् १०९३-११४२
कुमारपाल	३१ वर्ष	३१ वर्ष	३० वर्ष ८ मास २७ दिन	सन् ११४२-११७३
अजयपाल	३ वर्ष	...	३ वर्ष ११ मास २८ दिन	सन् ११७३-११७६
मूलराज द्वितीय	२ वर्ष	..	२ वर्ष १ मास २४ दिन	सन् ११७६-११७८
भीमदेवराज	६३ वर्ष	...	६५ वर्ष २ मास ८ दिन	सन् ११७८-१२४१
पादुकाराज	३ दिन	...	६ दिन	...
त्रिभुवनपाल	...	...	२ मास १२ दिन	सन् १२४१-१२४२

[1] एक प्रतिमें ५२ वर्ष दिया है।

उपर्युक्त विवचनके आधारपर कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धियो का क्रम इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

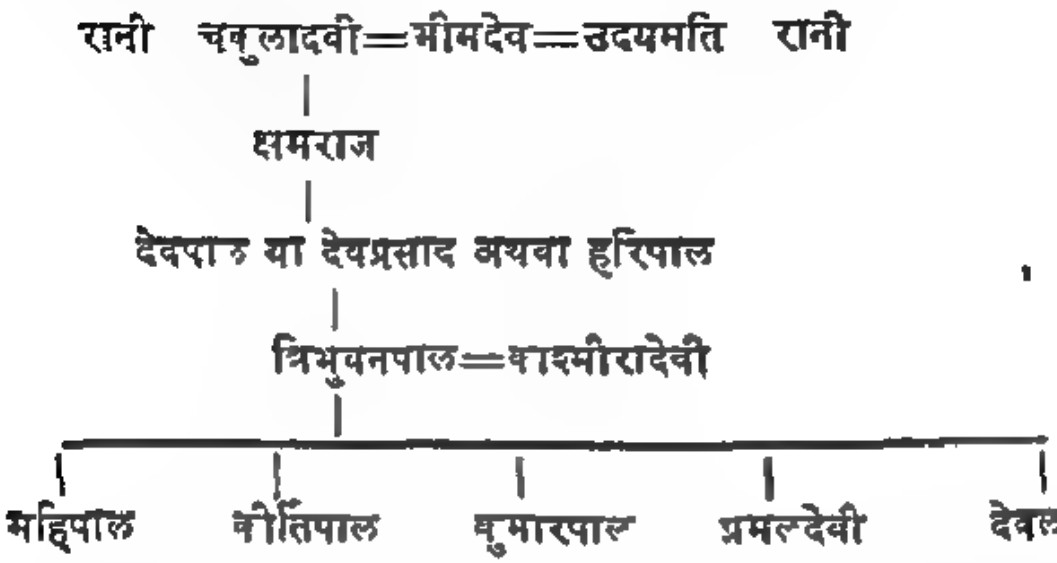

वंशावली तथा उक्त पारिवारिक सम्बन्ध सूत्रसे विदित होता है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था, उसकी माता थी काश्मीरादेवी। कुमारपालको महिपाल तथा कीर्तिपाल नामके दो भाई थ और दो बहिनें भी थी जिनके नाम क्रमश प्रमलदेवी तथा देवलदेवी थे।

प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा-दीक्षा

विगत अध्यायमें हमें विदित हो चुका है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था और उसकी माताका नाम काश्मीरादेवी था। कुमारपालका जन्म विक्रम सवत् ११४९ अथवा सन् १०९२ ईस्वीमें हुआ था। कहा जाता है कि विक्रम सवत् ११९९ अथवा सन् ११४२ ईस्वीम जब वह राजगद्दीपर आसीन हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1] इस गणनाके अनुसार भी कुमारपालके जन्मकी उक्त तिथि ही निश्चित प्रतीत होती है। कहा जाता है[2] कि कुमारपालक प्रपितामह क्षमराजने जो भीमदेव प्रथमका पुत्र था, स्वेच्छासे राज्यगद्दीका त्याग कर दिया था।[3] किन्तु दूसरे सूत्रके आधारपर यह भी पता चलता है कि उसे उत्तराधिकारसे इसलिए वचित कर दिया था कि भीमदेवने चकुलादेवी या वकुलादेवी नामकी नर्तकीको अपने रनिवासम रख लिया था। प्रवन्ध चिन्तामणिके रचयिताका कथन है कि अणहिलपुरके राजा भीमदेवने चकुलादेवीका जो यद्यपि क्षत्रिय नही थी अपितु वृत्तिसे नर्तकी थी, उसकी चारित्रिक दृढता तथा भक्तिके कारण अपन अन्त पुरमें स्थान दिया था। क्षेमराजके पुत्र देवप्रसाद तथा भीमदेवके पुत्र कर्णदेवमें अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री थी। कहा

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ६, पृ० ९५।

[2] वही, पुरातन प्रबन्ध सग्रह, परिशिष्ट १, पृ० १२३। "सपादलक्ष प्रहित क्षुरिकात पालिताब्द युगशीला वकुलादेवी वेश्या श्री भीमेनोढा"।

[3] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खड १, पृ० ४२।

जाता है कि कर्णदेवकी मृत्युके समय देवप्रसादने अपने पुत्र त्रिभुवनपालको जयसिंहको सौंपकर अपनेको चितापर समर्पित कर दिया।[1]

शिक्षा-दीक्षा

कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें दुर्भाग्यसे कोई ऐसी प्रामाणिक सामग्री नहीं, जिसके आधारपर उसके शिक्षा क्रमकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। किन्तु कुमारपालका पालन पोषण जिस स्थिति विशेष तथा विशिष्ट वातावरणमें हुआ था, उससे हम उसकी शिक्षा-दीक्षाके स्वरूपका संकेत प्राप्त कर सकते हैं। कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल अपने राजपरिवारके शीर्षस्थ व्यक्तिका सदा विश्वस्त बना था। युद्धभूमिमें राजाके सम्मुख वह इसी अभिप्रायसे उपस्थित रहा करता था कि राजाके शरीरकी रक्षा प्राण देकर की जा सके। द्वयाश्रय काव्यमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि सिद्धराजसे त्रिभुवनपालका सम्बन्ध बहुत अच्छा था और वह सिद्धराजके साथ रणभूमिमें जाया करता था। कुमारपालचरितमें भी इसका विवरण मिलता है कि वह सिद्धराज जयसिंहके राजदरबारमें जाया करता था। इन परिस्थितियोंमें इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कुमारपालकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा निस्सन्देह एक राजकुमारकी भाँति ही हुई होगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्रने अणहिलपाटकका जो वर्णन तथा विवरण लिखा है उसमें सम्राटके पार्श्वमें युवराज अथवा उत्तराधिकारी राजकुमारका उल्लेख आया है।[2] इसका भी विवरण मिलता है कि राजधानीमें बहुतसे मन्दिर तथा उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यापीठ थे।[3]

---

[1] रासमाला : अध्याय ६, पृ० १०७।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] वही, पृ० २३९।

इस प्रकारका वर्णन आया है कि कुमारपाल प्रातःकालमें पठन-पाठन तथा सूतोंसे गाथा सुना करता था। राजदरबारमें भाटजन प्राचीनकालका इतिहास सुनाया करते थे। इतिहासका अध्ययन युवराजके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता था। कुमारपालने बाल्यकालमें अश्वारोहण, शस्त्र-सचालन तथा लक्ष्यभेदकी शिक्षा अवश्य ग्रहण की थी। प्रौढ जीवनमें जब वह समरभूमिमें युद्ध करने गया और वहा उसने जैसा सफल नेतृत्व किया, विशेषकर जिस शौर्य तथा वीर्यप्रदर्शनके लिए उसे शाकम्भरी[2] भूपालविजेताकी उपाधि मिली थी, उसे देखते हुए यह स्वीकार करनेमे कोई सन्देह नही कि बाल्यावस्थाम कुमारपालने उक्त सैनिक शिक्षाए समुचित ढगसे प्राप्त की थी। प्राचीन कालमे पर्यटन शिक्षाका आवश्यक अग माना जाता था, जिसके बिना कोई शिक्षाक्रम पूर्ण हुआ नही मान्य किया जाता था। कुमारपालको भाग्यचक्रके कारण सात वर्षों तक सतत विभिन्न प्रदेशोमें पर्यटन करना पडा था। इसी भ्रमणके फलस्वरूप वह विभिन्न राजदरबारों, मन्त्रियो तथा विद्वानोसे सम्पर्क स्थापित कर सका और ये अनुभव उसे उस समय अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए, जब वह अणहिलवाडेकी राज्यगद्दीपर शासनारूढ हुआ।

कुमारपालके प्रति सिद्धराजकी घृणा

जयसिंह सिद्धराज अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त नि सन्तान रहे। इस अवस्थाम यह स्वाभाविक था कि कुमारपाल उस युवराजकी स्थितिम होता, जिसे राज्यका उत्तराधिकार मिलनेवाला था। जैन इतिहासोंके अनुसार सिद्धराजको भगवान सोमनाथ, साधु हेमचन्द्र, माता अम्बिका

---

[1] द्वयाश्रय काव्य, प्रथम सर्ग, श्लोक ४८-४९।

[2] *निज भुज विक्रम रणागण विनिर्जित, शाकम्भरी भूपाल* इण्डि० ऐंटी० : खड ६, पृ० १८१।

मोढीनर[1] तथा ज्योतिषियोंने कह दिया था कि उसे पुत्र न होगा और कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा, किन्तु यह बात जयसिंहको तनिक अच्छी न लगती। वह कुमारपालसे अत्यधिक घृणा करने लगा और इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हुआ कि कुमारपालकी हत्या कर डाले।[2] मेरुतुंगके कथनानुसार जयसिंहकी यह घृणा कुमारपालके नर्तकी चक्लादेवीका वंशज होनेके कारण थी। जिनमदनके विवरणके अनुसार जयसिंह सिद्धराज उक्त कार्यके लिए इस आशासे भी प्रयत्नशील था कि यदि उसकी हत्या हो जाती है तो भगवान शिव उसे एक पुत्ररत्न वर दे सकते हैं। कुमारपालचरितके अनुसार तो यहां तक पता लगता है कि सिद्धराजने कुमारपालके सहित त्रिभुवनपालके समस्त परिवारकी हत्या कर देनेकी भी योजना बनायी थी। त्रिभुवनपालकी हत्या हुई किन्तु कुमारपाल बच निकला। सिद्धराजकी घृणासे क्लेशित तथा अपने बह-नोई कृष्णदेवके परामर्शानुसार उसने परिवार छोड़ दिया और अज्ञातवास करने लगा।

कुमारपालका अज्ञातवास

प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताने लिखा है कि कुमारपाल अनेक वर्षों तक साधुके वेशमें विभिन्न स्थानोंमें घूमता रहा। संयोगवश एक बार वह पाटन (अणहिलपुर)के एक मठमें आकर रहा। जिस दिन वह पाटन आया सिद्धराजके पिता कर्णदेवका वार्षिक श्राद्ध था। उसीदिन सिद्ध-राजने नगरके सभी संन्यासियोंको निमन्त्रण दिया था।[3] कुमारपालको

[1] अणहिलवाडा राजधानीका प्रसिद्ध जैनमन्दिर : बाम्बे गजेटियर।

[2] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९५-१९६ तथा प्रबन्ध चिन्तामणि प्रकाश : "भवदनन्तरमयं नृपो भविष्यति सिद्धनृपो विज्ञप्तस्त-स्मिन्हीन जाता किस्य सहिष्णुतया विनाशावसरं सततमन्वेषयामास"

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७७।

भी सभी सन्यासियोंके साथ उपस्थित होना पडा। सिद्धराज जयसिंह सभी सन्यासियोंके समूहका एक एक कर श्रद्धाभक्तिके साथ चरण धो रहे थे। साधुवेशमें कुमारपालका जब वे चरण धोने लगे तो उनकी कोमलता तथा उसपर अंकित राजत्वके विशेष चिह्नोंको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सिद्धराजकी मुखमुद्रापर इस घटनाके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनको कुमारपालने सावधानीसे देख लिया तथा तत्काल ही वहांसे भाग निकला। सिद्धराजके सैनिकोंने जब उसका पीछा किया तो वह पहले कुम्हारके घरमें जा छिपा और फिर एक किसानके खेतकी कटीली झाडियोंमें छिप गया। इसप्रकार उसने सैनिकोंसे पीछा छुडाया।

पलायनके समय जब वह एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा एक छिद्रसे एक एक कर इक्कीस रजत मुद्राएं ला रहा है। बादमें चूहा जब उन रजत मुद्राओंको फिर ले जाने लगा तो कुमारपालने उसे एक मुद्रा तो ले जाने दी और शेषको अपने अधिकारमें कर लिया। चूहा बिलसे बाहर आया और अपनी रजत मुद्राओंको न पाकर इतना दुःखित हुआ कि तत्काल वहीं उसके प्राण निकल गये। इस घटनाके कारण कुमारपालको बहुत क्लेश हुआ। एक बार जब वह अज्ञात दिशाकी ओर चला जा रहा था तो उसे एक भद्र महिलासे भेंट हुई जो अपने पिताके घर जा रही थी। महिलाने कुमारपालको भाईके नाते निमन्त्रित कर सुस्वादु भोजन कराया। इसीप्रकार यात्राके पश्चात् यात्रा करता हुआ कुमारपाल खम्भातकी खाडीमें स्तम्भतीर्थ जा पहुंचा। यहीं प्रसिद्ध महान् जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य उस समय निवास कर रहे थे।[1]

हेमाचार्यसे मिलन

स्तम्भतीर्थमें कुमारपाल मन्त्री उदयनके यहां सहायता मांगने गया।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० ७७ तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

उदयन भी उससे भेंट करनेके लिए मठमें गया। उसके प्रश्नोंके उत्तरमें हेमाचार्यने कुमारपालके अंगोपर विशेष राजचिह्नोंको देखकर भविष्य-वाणी की कि कुमारपाल ही इस समस्त प्रदेशका भावी शासक होगा। यह देखकर कि कुमारपाल इस कथनपर विश्वास करनेमें संकोच कर रहा है उन्होंने अपनी भविष्यवाणीकी दो प्रतिलिपियां प्रस्तुत करायीं। एक कुमारपालको दी तथा दूसरी मन्त्री उदयनको। हेमाचार्यकी भविष्य-वाणी[1] यह थी कि यदि संवत् ११९९ कार्त्तिक मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया रविवारको जब चन्द्रमा हस्त नक्षत्रमें रहेगा, कुमारपाल सिंहा-सनारूढ न हुआ तो मैं इसके बादसे भविष्यवाणी करना ही छोड़ दूंगा। यह देख कुमारपाल तथा उदयनने स्वीकार किया कि यदि भविष्य-वाणी सत्यमें परिणत हुई तो वे उनकी आज्ञाका पालन करेंगे। हेमचन्द्रने उसी समय कुमारपालसे भी प्रतिज्ञा करा ली कि यदि वह राजा हुआ तो जैनधर्म स्वीकार कर लेगा। इसके बाद कुमारपाल उदयनके घर गया। उदयनने उसका आदर सत्कार किया तथा सभी साधनोंसे युक्त कर उसे मालवा भेजा।

मालवामें खडगेश्वरके मन्दिरके एक शिलापट्टमें जिसमें उसके शिलान्यासका विवरण उत्कीर्ण था, उसे एक श्लोक[2] दिखायी पड़ा जिसमें यह भाव व्यक्त थे कि जब ११ सौ ९९ वर्ष पूर्ण हो जायंगे तो ओ विक्रम, तुम्हारे समान ही कुमार नामका प्रतापी राजा होगा।[3] इस उत्कीर्ण लेखको

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४ : सं० ११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्त नक्षत्रे यदि भवतः पट्टाभिषेको न भवति तदातः परं निमित्तावलोक सन्यासः।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ० १९४, "पुण्ये वर्ष सहस्र शते वर्षाणां नव नवत्यधिके भवति कुमार नरेन्द्रस्तव विक्रम राज सदृश."।

[3] पुरातन-प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२३।

पढ़कर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। उसी समय कुमारपालको विदित हुआ कि सिद्धराज जयसिंहका देहान्त हो गया। यह सुनकर वह अणहिलपुरकी ओर चला।

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन

कुमारपालके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें प्रभावकचरित्रका विवरण अल्पान्तरके साथ उक्त आशयका ही है। हेमचन्द्रने कुमारपालके भाग्योदयमें कितना योगदान दिया, उसका वर्णन इसमें मिलता है। कहते हैं कि जयसिंहको गुप्तचरों द्वारा विदित हो गया था कि कुमारपाल साधुवेशमें तीन सौ साधुओंके साथ अणहिलवाडा आया है। कुमारपालको पकड़नेके लिए ही राजाने सभी साधुओंको निमन्त्रित किया और सिद्धराज जयसिंहने सभी साधुओंके चरण धोनेका निश्चय किया। ऐसा करनेमें बाह्य रूपसे तो असीम भक्तिका प्रदर्शन था किन्तु वास्तवमें कुमारपालको उसके विशिष्ट राजचिह्नोंके आधारपर पकड़ना ही उसका अभिप्रेत था। ज्योंही उसने कुमारपालके पैरका स्पर्श किया उसमें उसे कमल, छत्र तथा पताकाके विशिष्ट राजचिह्न अंकित मिले।[1] जयसिंहने अपने सेवकोंकी ओर संकेत किया। कुमारपालने यह देख लिया और तत्क्षण हेमचन्द्रके निवासमें जा छिपा। गुप्तचर उसका पीछा करते रहे। हेमचन्द्रने उसपर ताड़ वृक्ष फैला दिये। ताड़के पत्रोंको राज्याधिकारियोंने शीघ्रतामें नहीं देखा। जब तात्कालिक संकट दूर हो गया तो कुमारपाल अणहिलवाड़ेसे

[1] विज्ञप्रभन्यदाचारैर्जटाधरशत त्रयम्। अभ्यागादस्ति तन्मध्ये भ्रातृपुत्रो भवद्रिपुः॥ भोजनाय निमन्त्रयन्ते ते सर्वेऽपि तपोधनाः। पादयोर्यस्य पद्मानि ध्वजश्छत्रं सते क्षिपन॥ श्रुत्वेत्या ह्वाय्यतान् राज्य तेषा प्राक्षालयत् स्वयम्। चरणौ भक्तितो यावत् तस्या ध्यवसरोऽभवत्। पदेषु दृश्यमानेषु पदयोर्हृष्टि सज्ञया। ख्यातेऽत्र तैर्नृपोज्ञानात कुमारोऽपि बुबोध तत्।

भाग निकला। एक शैव ब्राह्मण बोसरीके साथ वह स्तम्भतीर्थ चला गया। यहा आकर उसने अपने मित्रोको मन्त्री उदयनके पास सहायताका सन्देश लेकर भेजा। उदयनने राजाके शत्रुको किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नही किया। रात्रिमें कुमारपाल बहुत क्षुधा पीडित हुआ। वह रातम ही एक जैनमठम आया। सयोगसे यही हेमचन्द्र चातुर्मास्य कर रहे थ। हेमचन्द्रन कुमारपालके विशिष्ट राजचिह्नोको पहचानकर और यह समझकर कि यही भावी राजा है उसका स्वागत किया।[1] हेमचन्द्रने भविष्यवाणी की कि सातवें वर्ष वह राज्य सिंहासनपर आसीन होगा। हेमचन्द्रकी प्रेरणासे ही उदयनने कुमारपालकी भोजन, वस्त्र तथा धनसे सहायता की।[2] इसके पश्चात् सात वर्षों तक कुमारपाल कापालिकके वेशमें अपनी पत्नी भोपालादेवीके साथ विभिन्न प्रदेशोम भ्रमण करता रहा।[3] ११९९ विक्रम सवत्म जयसिंहकी मृत्यु हुई।[4] कुमारपालको जब यह समाचार मिला तो वह सिंहासनपर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त अणहिलपुर वापस लौटा।[5]

कुमारपालका भ्रमण और जिनमदन

जिनमदनके "कुमारपालचरित्र"में कुमारपाल तथा हेमचन्द्रका मिलन बहुत पहले कराया गया है। कुमारपालके अज्ञातवास तथा भ्रमणकी

---

[1] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, श्लोक ३७६-३८४।

[2] वही,—'यरासन्युपवेश्योच्चे राजपुत्रास्स्वनिर्वृत.। अमुत सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यसि।'

[3] वही, पृ० १९७।

[4] वही : द्वादशस्वय वर्षाणा शतेषु विरतेषु च एकोनेषु महीनाये सिद्धाधीशे दिवगते।

[5] वही : श्लोक ३९५-३९७।

कहानी जिनमदनने भी थोडे बहुत अन्तरके साथ उसी प्रकार कही है। उसने लिखा है कि जयसिंहकी दृष्टि कुमारपालके प्रति उस समयसे बदली जब वह उसके दरबारमें अपनी अधीनता प्रकट करने गया था। जयसिंहके दरबारमें उसने हेमचन्द्रको देखा। हेमचन्द्रसे मिलनेके लिए वह तत्काल मठमें गया। वहा हेमचन्द्रने कुमारपालको उपदेश दिया तथा प्रतिज्ञा करायी कि वह परदाराको बहिन समझेगा।[1]

कुमारपालके पलायनकी जो कथा जिनमदनने लिखी है उसमें प्रभावक-चरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें वर्णित कथाका मिश्रण है। जिनमदन तथा मेरुतुग दोनो ही इसपर एकमत है कि पलायन और भ्रमण करते हुए कुमारपालने हेमचन्द्रसे पहले कच्छमें भेंट की। किन्तु कुमारपाल हेमचन्द्र-का यह मिलन कच्छके बाहरी द्वारपर स्थित एक मन्दिरमें होता है। यही उदयन भी हेमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आता है। उदयनकी उपस्थितिमें कुमारपालके प्रश्न करनेपर कि आगन्तुक कौन है, हेमचन्द्रने पूर्वके इतिहासकी चर्चा की है। इसके पश्चात् हेमचन्द्रकी भविष्यवाणी होती है और जिस प्रकार मेरुतुगने लिखा है उसी प्रकार उदयनके यहा कुमारपालका आदर सत्कार होता है। जिनमदनने तो यहा तक लिखा है कि कुमारपाल बहुत दिनो तक उदयनका अतिथि रहा। जब जयसिंहको कुमारपालके कच्छमें रहनेकी बात ज्ञात हुई तो उसने कुमारपालको पकडनेके लिए सैनिक भेजे। पीछा करते हुए सैनिकोसे बचनेके लिए कुमारपाल हेमचन्द्रके मठमें भागा तथा वहा पाडुलिपिके समूहकी कोठरीमें छिप गया। पलायनकी अन्तिम कथा सम्भवत. प्रभावक-चरित्रमें वर्णित हेमचन्द्रकी सहायता विषयक कहानीकी पुनरावृत्ति है। सम्भवत जिनमदनने यह उचित नही समझा कि अणहिलपुरमें हेमचन्द्र-

---

[1] जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ४४-५४। यह उपदेश ब्राह्मण साहित्यके अनेक उद्धरणोसे युक्त है।

कुमारपाल मिलन हो और तत्काल बाद ही कच्छमें। इसीलिए उसने ताडपत्रोंमें छिपनेके प्रसगको कच्छकी घटना बताया है। इस घटना प्रसगको वास्तविकताका रूप देनेके लिए उसने पाडुलिपियोंकी कोठरीका उल्लेख किया है। इसके पश्चात्के भ्रमणोंका विवरण जिनमदनने बहुत विस्तृत-रूपसे लिखा है। प्रभावकचरित्र तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें इनका उल्लेख नहीं मिलता। निश्चय ही जिनमदनके इस विस्तृत विवरणोंका स्रोत पृथक रहा है। इस विवरणके अनुसार कुमारपाल वातपद्र (बड़ौदा)की ओर जाता है और तत्पश्चात् क्रमशः भृगुकच्छ (भडौंच) कोल्हापुर, कल्याण, कनेई तथा दक्षिणके अन्य नगरोंमें परिभ्रमण करता हुआ पैथान-प्रतिष्ठान होता हुआ अन्तमें मालवा पहुचता है। जिनमदनका यह वर्णन श्लोकबद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक कुमारपालचरित्रोंके आधारपर यह प्रस्तुत किया गया है।[1]

मेरतुंगकी प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित्र तथा जिनमदनके कुमारपालमें, अज्ञातवास और पलायनकी मिलती जुलती ही कथाएं मिलती है। मेरतुगका उक्त वर्णन प्रभावकचरित्रसे प्राय एकदम साम्य रखता है। इनके वर्णनमें जो कुछ अन्तर है, उनमें एक ध्यान देने योग्य यह है कि मेरुतुगकी कथामें हेमचन्द्र एक ही बार सामने आते है। इसमें न तो अणहिलपुरमें ताडकी पाडुलिपियोंमें छिपनेका कथा प्रसग उसने वर्णित किया है और न कुमारपालके सिंहासनारूढ होनेके पूर्व दूसरी भविष्यवाणीका उल्लेख। कुछ अन्तर सहित उसने हेमचन्द्र तथा कुमारपालके स्तम्भतीर्थमें मिलनेकी कथाप्रसंगका ही विवरण दिया है।

मुसलिम इतिहासकी साक्षी

सम-सामयिक देशके इन विवरणोंके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारने

---

[1] जिनमदन : कुमारपाल चरित्र, पृ० ५८-८३। इसमें हेमचन्द्र तथा उदयनके मिलनका भी विवरण है।

भी कुमारपालके पलायनकी घटनाका उल्लेख किया है। इसमें कहा गया है कि कुमारपालको अपने प्रारम्भिक जीवनमें वेश बदलकर जयसिंहकी मृत्यु तक अनेकानेक देशोंका परिभ्रमण करना पडा था। अबुल फजलने अपनी आईन ए-अकबरीमें[1] लिखा है कि कुमारपाल, सोलंकीको अपने प्राणके भयसे जयसिंहके मृत्यु पर्यन्त निर्वासनमें रहना पडा था।[1]

उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण

संस्कृत, प्राकृत तथा जैनग्रन्थोंमें अल्पाधिक अन्तरके साथ कुमारपालके अज्ञातवास, पलायन और परिभ्रमणके जो वर्णन मिलते हैं, उनसे इस निश्चित निष्कर्षपर आना स्वाभाविक है कि कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन राजनीतिक था। इस कालमें उसे अनेकानेक संकटों और कठिनाइयोंका सामना करना पडा। जैनग्रन्थोंमें कुमारपालके भाग्योदय तथा उसको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी सहायताके जो विवरण मिलते हैं, उससे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जैनमुनि हेमचन्द्रने कुमारपालको महान् सहायता प्रदान की थी। जिस समय कुमारपाल आश्रयविहीन हो अज्ञातवास तथा असहायावस्थामें इधर-उधर भ्रमण कर रहा था, उस समय न केवल हेमचन्द्रने उसकी सहायता की, अपितु उसका पथ-प्रदर्शन भी किया। वस्तुत उस समय जैनमुनि श्रीहेमचन्द्रके आदेशसे ही उदयनने राजा सिद्धराज जयसिंह द्वारा शत्रु समझे जानेवाले कुमारपालकी सहायता की। उदयनके यहां कुमारपालके लिए न केवल शरण तथा भोजनकी व्यवस्था हुई अपितु उसने कुमारपालको धनादिकी सहायता देकर मालवा भेजा। हेमचन्द्राचार्यने ही भविष्यवाणी की थी कि कुमारपाल गुजरातका भावी राजा होगा तथा सिद्धराज जयसिंहके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिकारी होगा। जिन संकट तथा

---

[1] आइने-अकबरी : खंड २, पृ० २६३।

विषय परिस्थितियोंमें कुमारपाल वेश परिवर्तनकर विभ्रमित भ्रमण कर रहा था उनमें यदि जनमुनि हेमचन्द्रका प्रेरणा पथप्रदर्शन और सहायता न मिली होती तो सम्भवतः उसके राजनीतिक जीवनकी विकासधारा कुछ और ही होती।

अणहिलपुर (पाटन) आगमन

सतत सात वर्षों तक साधु वेशमें अनवरत आपत्तियों और विपत्तियों का सामना करता हुआ कुमारपाल अपनी पत्नी सहित जब विक्रम संवत ११९९में मालवामें था तो उसे सिद्धराज जयसिंहके देहान्तका समाचार विदित हुआ।[1] वह तत्काल ही राजगद्दीपर अधिकार करने अणहिलपुर लौटा। प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित्र दोनोंमें ही यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि जब जयसिंह सिद्धराजकी मृत्यु हुई तो यह समाचार पाकर कुमारपाल अणहिलपुर वापस आया। सात वर्षों तक निरन्तर देश-देशान्तर तथा राजदरबारोंके भ्रमणसे ज्ञानार्जन और अनुभवोंका संग्रहकर वह अणहिलपुर (पाटन) लौटा।[2]

---

[1] प्रभाकर चरित्र अध्याय २२, श्लोक ३९१-४००।

[2] वही —प्रस्थापितो मालवके देश गत गुर्जरनाथ सिद्धाधिप परलोक गतमवगम्य —प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश ४, पृ० ७८।

विभीषण
राज्याभिषेक

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुगने लिखा है कि मालवामे जिस समय कुमारपाल अणहिलपुर लौटा तो उस समय रात्रिका समय हो गया था। उस समय वह बहुत ही भूखा था और उसके पासका सारा धन भी शेष हो गया था। उसने एक मिष्ठान्नगृहसे कुछ मागकर खाया और तब अपने बहनोई कान्हदेव (कृष्णदेव) के घर गया। कान्हदेव जयसिंह सिद्धराजके मन्त्रियोमे सर्वप्रमुख था और उसीको जयसिंहने योग्य तथा उपयुक्त शासकको सिंहासनारूढ करनेका कार्यभार सौंपा था।[1] राज्य दरबारसे आकर कान्हदेवने कुमारपालको देखा तो विशिष्ट सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। फोर्बसने इस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे ही कान्हदेवने कुमारपालके आगमनका समाचार सुना वह राजमहलसे बाहर निकल आया और उसने कुमारपालका हार्दिक स्वागत किया और उसे आगेकर स्वय पीछे चलकर प्रासादके भीतर ले गया।[2]

राजसिंहासनके लिए निर्वाचन

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रस्तुत सेनाके साथ कान्हदेव (कृष्णदेव) कुमारपालको राजमहल ले गया। जयसिंहका उत्तराधिकारी कौन हो

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

इसी प्रश्नको हल करना था।[1] जब सभी राजदरबारी और प्रमुख सभामें एकत्र हुए तो पहले जयसिंहको एक युवक सम्बन्धी निर्वाचनके निमित्त गद्दीपर बैठाया गया। लेकिन यह युवक एकदम असावधान व्यक्तिसा प्रतीत होता था। उसने अपने पैरोको उचित प्रकार वस्त्रसे ढका तक न था, इसलिए साधारण लोकज्ञानके अभावमें उसे राजगद्दीके अयोग्य समझा गया। उक्त पदके लिये एक अन्य व्यक्तिको भी राजसिंहासनपर बैठाया गया, किन्तु यह भी मान्य सभासदो और प्रमुखो द्वारा अनुपयुक्त ठहराया गया। जब वह सिंहासनपर बैठा तो बडी विनम्रताकी मुद्रामें, अपने दोनो हाथोंसे प्रणाम करता दृष्टिगत हुआ, इन्ना ही नही, जब उससे पूछा गया कि जयसिंह द्वारा छोडे गये अठारह प्रदेशोका शासन तुम किसप्रकार करोगे तो उसने उत्तर दिया आप लोगोंके परामर्श और आदेशसे। यह उत्तर जयसिंह सिद्धराजके शौर्यपूर्ण स्वरको सुननेवाले अभ्यस्त प्रधानोके कानको प्रभावपूर्ण और उचित नही लगे। ऐसा विनम्र और प्रभावहीन व्यक्तित्व भला सर्वोच्च राजकीय पदके लिए कैसे मान्य हो सकता था ?

कान्हदेवने, जिसे ही मुख्यत योग्य शासकका चुनाव करना था, कुमारपालको सभाके सम्मुख उपस्थित किया। कुमारपाल राजकीय गौरवके अनुरूप ज्योही सिंहासनपर बैठा चारो ओर हर्षध्वनि छा गयी। उससे भी प्रश्न पूछा गया कि वह सिद्धराज द्वारा छोडे गये राज्योका शासन किस प्रकार करेगा ? इसका उत्तर उसने शब्दोमें नही, अपितु पैरोपर खडे हो, नेत्रोको आरक्त तथा अपनी असिको कक्षसे आधा बाहर निकालकर दिया।[2] राज्यपुरोहितने इसपर तत्काल ही राज्याभिषेक सम्बन्धी विविध सस्कार सम्पन्न किये। कान्हदेवने राजाके सम्मुख आदर तथा

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७६।

श्रद्धाका भाव प्रदर्शित किया। राजभवन हर्षध्वनिसे गूज उठा। गुजरातके बडे बडे जागीरदारो तथा भूमिधरोने कुमारपालके सिहासनके सम्मुख नतमस्तक होकर अपनी अधीनता व्यक्त की। शखध्वनि तथा मगलवाद्यके मध्यमें इसप्रकार कुमारपाल जयसिह सिद्धराजका उत्तराधिकारी निर्वाचित और मान्य हुआ। जब सन् ११४२ ईस्वीम कुमारपाल सिहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1]

प्रभावकचरित्रमें कुमारपालके राज्यारोहणकी एक भिन्न कथा वर्णित है। इसमें कहा गया है कि अणहिलपुर आनपर कुमारपाल एक श्रीमत सम्बा (?)से मिला। इस अज्ञात व्यक्तित्वके विषयमें कुछ प्रामाणिक पता नही चलता। श्रीमत सम्बा जैनमुनि हमचन्द्रके पास इस अभिप्राय और आशयसे गया कि कुमारपालम, जयसिहके उत्तराधिकारी होनके विशिष्ट चिह्न एव लक्षणादि है अथवा नही। जैसे ही उसन वहा प्रवेश किया उसन देखा कि कुमारपाल मठके गद्दीदार सिहासनपर बैठा था। हेमचन्द्रके अनुसार यह चिह्न ही वाछित राजचिह्न था। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बहनोई कान्हदेवके साथ, जो सामन्त था और जिसके पास दस सहस्र सैनिकोकी सेना थी, राजमहल गया और राज्याधिकारी निर्वाचित किया गया।[2]

कुमारपालप्रतिबोधके रचयिता सोमप्रभाचार्यका मत है कि कुमारपालके समस्त शरीरपर राज्यचिह्न थ। इसलिए दरबारके सरदारोने ज्योतिषियो तथा ज्योतिष विज्ञानके विशषज्ञो सामुद्रिक, मौहूर्तिक, शाकुनिक तथा नैमित्तिकोसे परामर्श कर और राज्यके प्रमुख मन्त्रियोसे विचार विमर्श कर कुमारपालको सिहासनारूढ किया। कुमारपालका

---

[1] वही।

[2] *आयात् पुरान्तरा श्रीमत्साम्बस्य मिलतस्तत चित्त सदिग्ध राज्याप्ति* निमित्तान्वेषणादृत —प्रभावक चरित्र, २२, श्लोक ३५६, ४१७।

यह निर्वाचन सभीको इतना सन्तोषजनक प्रतीत हुआ कि निष्पक्ष निर्गुणाने भी इसे न्यायोचित स्वीकार किया तथा प्रसन्नता प्रकट की।[1]

राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव

इसप्रकार सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युके पश्चात् यद्यपि कुमारपाल बिना किसी संघर्षके सिंहासनारूढ हुआ, किन्तु राजगद्दीके लिए एक प्रकारका निर्वाचन संघर्ष तो अवश्य हुआ। यह बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि सिद्धराजकी मृत्युके बाद जो स्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमें कुमारपालके बहनोई कान्हदवन उसके सत्वोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखा। राजगद्दीके तीन उम्मीदवार थ। कुमारपाल तथा अन्य दो। ये दोनो सम्भवत उसके भाई महिपाल तथा कीर्तिपाल ही थे।[2] राज्यमन्त्रि-परिषद्के सम्मुख ये दोनो भी कुमारपालके साथ ही, कौन शासक चुना जाय, इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए उपस्थित किये गये थे। राजसभा और प्रमुखोंके सम्मुख उत्तराधिकारीके चुनावमें ये दोनो ही राज्याधिकारके लिए अयोग्य समझे गये तथा कुमारपाल राजा निर्वाचित हुआ।

हेमचन्द्रके कुमारपालचरितमें भी इस बातका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कुमारपाल अपने मित्रो तथा राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंकी सहायतासे

---

[1] एसो जुग्गो रज्जस्स रज्जलक्खण सणाह सव्वगो
ता भक्ति ठविज्जउ निग्गुणेहि पज्जत्तमन्नेहि।
एव परुप्पर भणिऊण तह गिण्हिऊण सवाय।
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय-नराण।
रज्जमि परिट्ठवियो कुमारवालो महाण पुरिसेहि।
तत्तो भुवणमसेस परिओस-पर व सजाय।

कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५।

[2] रासमाला - अध्याय ११, पृ० १७६।

राजसिंहासनपर[1] अधिकार कर सका।[1] इसीप्रकार प्रभावकचरितके प्रणताका भी कथन है कि कुमारपालका राज्यपदके लिए निर्वाचन हुआ था।[2] इन स्पष्ट उल्लेखोंको ध्यानमें रखकर हम इस निर्णयपर आते हैं कि सिंहासनारूढ होनेके पूर्व कुमारपालका वैधानिक निर्वाचन हुआ था। राज्य उत्तराधिकारके लिए वहां जो प्रतियोगिता हुई उसमें कुमारपालने अपनेको सबसे योग्य सिद्ध किया और इसीलिए राज्यके प्रधानोंने उसे राजा निर्वाचित किया। यह भी कहा जाता है कि कुमारपालको राजसिंहासनारूढ करानेमें गुजरातके शक्तिशाली जैन दलका प्रमुख हाथ था। कुमारपालको दस सहस्र सेनापर प्रभुत्व रखनेवाले कान्हदेवका समर्थन प्राप्त था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है।

प्रबन्धचिन्तामणि,[3] प्रभावकचरित्र[4] तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रह[5] सभी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं कि कुमारपाल सामन्त कान्हदेवके साथ एक बडी सेना सहित राजदरबारमें गया था।[6] इससे स्पष्ट है कि राज्याधिकारके लिए कुमारपालके निर्वाचनके पीछे सशस्त्र सेनाका भी बल था। इसलिए वास्तविक अर्थमें उसे निर्वाचन नहीं कहा जा सकता। कुमारपाल-

---

[1] तत्थसिरि कुमर-वालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
सुपरिट्ठव-परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
कुमारपाल चरित प्रथम सर्ग, पृ० १५।

[2] प्रभावक चरित्र अध्याय २२, ३५६, ४१७।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि . चतुर्थ, प्रकाश पृ० ७८ " प्रातस्तेन भावुकेन स्वसैन्य सन्नह्य नृपसौधमानीयाऽभिषेक"।

[4] प्रभावक चरित्र · २२ अध्याय, पृ० १९७: "तत्रास्ति कृष्ण-देवाख्य सामन्तोऽश्वायुतस्थिति "

[5] पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० ३८।

[6] रासमाला, अध्याय ११, पृ०. १७६।

का प्रभावशाली व्यक्तित्व, सम्पन्न जैनदलोंका सहयोग और राज्याधिकारियों द्वारा प्रदत्त सैनिक सहायता, इन समस्त विशेष स्थितियोंने कुमारपालको सिद्धराज जयसिंहका उत्तराधिकारी बनाने तथा राजसिंहासन प्राप्त करानेमें सहायता की, इसमें सन्देह नहीं।

विचारश्रेणीके अनुसार कुमारपाल मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको सिंहासनारूढ हुआ और कुमारपालप्रबन्धके[1] मतानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थीको। प्रबन्धचिन्तामणि[2] और कुमारपालप्रबन्ध[3]का अभिमत है कि राज्याभिषेकके समय कुमारपालकी अवस्था लगभग पचास वर्षकी थी। मेरुतुंगकी थेरावलीमें लिखा है कि मार्गशीर्ष शुद्ध चतुर्थीको श्रीकुमारपाल सिंहासनारूढ हुए।[4] इसप्रकार प्राप्य सभी विवरणोंके अनुसार राज्याभिषेकके समय सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपालकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[5]

कुमारपालका राज्याभिषेक

सोमप्रभाचार्यने अपने कुमारपालप्रतिबोधमें कुमारपालके राज्याभिषेक सत्कार तथा समारोहका वर्णन किया है। यह विवरण अत्यन्त रोचक तथा तत्कालीन वातावरणकी अनुपम झाकी कराता है। इसमें कहा गया है जब कुमारपाल सिंहासनारूढ हुआ तो सुन्दर नर्तकियां नृत्य तथा गायनकलाका प्रदर्शन करने लगीं। समस्त संसारमें मंगलवाद्योंका घोष होने लगा। राजप्रासादका प्रांगण टूटी हुई मालाओंसे आच्छादित हो

---

[1] वही।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि · चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९५।

[3] रासमाला · ११ अध्याय, पृ० १७६।

[4] मेरुतुंग : थेरावली, पृ० १४७ तथा बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी जर्नल . खंड १०।

[5] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

गया था। उसका प्रभाव दिक् दिगान्तर तक फैल गया। इस प्रकार कुमारपालने अपना शासनकाल प्रारम्भ किया।[1] प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रहमें भी राज्याभिषेक संस्कार समारोहके विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[2]

समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुमारपालके राज्यारोहणके अवसरपर प्रजावर्गमें प्रसन्नताकी व्याप्त लहरका वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि सिद्धराजकी मृत्युसे शोकग्रस्त प्रजाके हृदयमें उसने आनन्दकी धारा प्रवाहित कर दी।[3] सिंहासनपर आसीन होनेके उपरान्त कुमारपाल उन लोगोंको नहीं भूला था जिन्होंने विपत्तिकालमें उसकी सहायता की थी। उन सभी सहायक लोगोंको सम्मानित

---

[1] तुट्टहार वरुरिय घरगण नच्चिय चारु विलास पयगण
निब्भर सद्द भरिय भुवणतर वज्जिय मगल तूर निरतर।
साहिय दिसा चउक्को चउ व्विहोवाय धरिय चउ वन्नो
चउ वग्ग सेवण परो कुमर-नरिंदो कुणइ रज्ज।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ५, श्लोक ६२, ६३।

[2] अभिषेकमिहैवास्य विदध्व ध्वस्तदुद्धिय
आसमुद्रावधि पृथ्वीपालयिष्यत्यसौ ध्रुवम्
अथ द्वादशधा तूर्यध्वनिडम्बररिताम्बरम्
चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमगलम्
प्रभावक चरित्र, २२ अध्याय, पृ० १९७।

[3] एको य. सकल कुतूहलितया बभ्राम भूमडल
प्रीत्या यत्र पतिवर समभवत्साम्राज्य लक्ष्मी स्वयम्।
श्री सिद्धाधिपवि प्रयोग विधुरामप्रीणयद्य· प्रजा
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य वशध्वज·
· मोहराज पराजय : १, २८ पृ० १६।

पद प्रदान किये गये। कहा जाता है कि उस कुम्हारको जहा कुमारपालने शरण ली थी, सात सौ ग्राम चित्रकूट अथवा राजपुतानके निकट चिटोडा किलेके पास दिय गय। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरतुगका कथन है कि उसके समयम उक्त कुम्हारके वशज विद्यमान थे और हीनवशमें उत्पन होनकी लज्जासे अपनेको सगरा पुकारते थ।[1] भीमसिंह जिसने कुमारपालकी जीवन रक्षा की थी उसका अगरक्षक नियुक्त किया गया। देवश्रीने राज्यारोहणके अवसरपर कुमारपालको तिलक किया और उसे देवपो[2] नामक ग्राम प्रदान किया गया था। बडौदाके कलूय वणिकको, जिसने कुमारपालको चना दिया था वातपद्र अथवा बडौदा ग्राम मिला। कुमारपालके चिरसाथी बोसारीको लतामडल अथवा दक्षिण गुजरातका राज्यपाल नियुक्त किया गया था।

राज्याभिषेकके पश्चात् कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पटरानी बनाया। अपने सबसे पुराने समर्थक तथा प्रारम्भिक सहायक उदयनके पुत्र भागवत अथवा बहडको उसन अपना महामात्य (प्रधान सचिव) नियुक्त किया तथा अलिगको महाप्रधान बनाया।[3] उदयनका दूसरा पुत्र अहड या अर्णभट्ट कुमारपालके आदेशानुसार न चला तथा उसके अधीन न रहा।[4] वह साभरप्रदेशके राजाके यहा नौकरी करनके निमित्त भाग गया।[5]

---

[1] आलिग कुलालाय सप्तशती ग्राममिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिका ददे। प्रबन्ध चिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] कुमारपाल प्रबन्धके अनुसार धवलक्का अथवा धोलका[1]।

[3] कुमारपालप्रतिबन्धमें लिखा है कि उदयन महामात्य तथा भागवत सेनापतिके पदपर नियुक्त किये गये थे। उदयनके सबसे छोटे पुत्र सोल्लाने राजनीतिमें भाग नहीं लिया।

[4] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १७७।

[5] साभरके अणक या अरुणोराजाने, कहते है कुमारपालकी बहनसे

कुमारपाल, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पचास वर्षकी अवस्थामें राजगद्दीपर बैठा।[1] अपने प्रारम्भिक जीवनमें विभिन्न देशों और राज्य-दरबारोंमें भ्रमणके फलस्वरूप अर्जित अनुभवोंके कारण, कुछ कालके अनन्तर ही कुमारपाल तथा उसकी राज्यसभाके अनेक पुराने उच्च अधिकारियोंमें प्रशासन सम्बन्धी नीति विषयक मतभेद उत्पन्न हो गया।[2] पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि इतने योग्य तथा प्रभावशाली शासकके अधीन होनेके परिणामस्वरूप उनका समस्त प्रभाव एवं प्रभुत्व समाप्त हो गया है। इसलिए उन्होंने राजाकी हत्या करने और अपने प्रभावमें रहनेवाले शासकको राजगद्दीपर बैठानेकी मन्त्रणा की। इसप्रकार सभी सरदारोंने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि कुमारपालकी हत्या कर दी जाय। इस षड्यन्त्रको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने, उस नगर द्वारपर हत्यारोंको एकत्र किया, जिससे उसी रात्रिको कुमारपाल प्रवेश करनेवाला था। किन्तु "पूर्वजन्मकृत सुकृतोंके फलस्वरूप" इस षड्यन्त्रका आभास कुमारपालको समय रहते लग गया और वह कार्यक्रममें पूर्व निश्चित मार्गसे न आकर दूसरे मार्गसे नगरमें आया। इसके पश्चात् कुमारपालने षड्यन्त्रकारियोंको मृत्युदंड दिया।[3]

थोड़े कालके पश्चात् ही कान्हदेवने, जिसने कुमारपालको राज-सिंहासनपर आसीन कराया था, अपनी सेवाओंको अत्यधिक बहुमूल्य समझकर, कुमारपालके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

विवाह किया था। बहनके साथ दुर्व्यवहार करनेपर कुमारपालने उससे युद्ध किया। इसी नामके कुमारपालको चाचोंके पुत्र, बघेल वंशके पूर्वज तथा भीमपल्लीके प्रधानसे उक्त अरणोराजाका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

[1] राजमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[3] वही।

यही नही, कान्हदेव कुमारपालकी पूर्वदशा तथा उसकी वशोत्पत्तिका उल्लेख कर राज्यसत्ताकी स्पष्ट अवज्ञा करने लगा। कुमारपालने जब इसका विरोध किया तो उसे और भी अशिष्ट उत्तर सुनना पडा। थोडे दिनोंके बाद कुमारपालने जब यह भलीप्रकार अनुभव कर लिया कि कान्हदेव सदा अवज्ञा करनेका ही निश्चय कर चुका है तो उसने उसे भी मृत्युदड दिया। इस सम्बन्धमे मेरुतुगने लिखा है कि कुमारपालने कान्हदेवसे अपनी आलोचनाए, व्यक्तिगत भेट-मुलाकात तक ही सीमित रखनेकी बात कही, किन्तु कान्हदेवके अपमानजनक व्यवहारका अन्त होते न देख अन्तमे उसकी आँख निकलवाकर उसे घर भिजवा दिया।[1] अवज्ञाके परिणामका यह उदाहरण उसकी राज्यसत्ताको सुदृढ करनेमे बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ और उस दिनसे फिर सभी सामन्त राजाओंकी अवहेलना करनेका साहस न कर सके। उन्हे भलीप्रकार यह तथ्य समझमे आ गया कि इस भावनासे दीपकको अगुलीसे स्पर्श करना भ्रमपूर्ण है कि हमने ही इसे ज्योतित किया है, इसलिए इसके प्रति अनुचित व्यवहारसे भी हमारा हाथ न जलेगा। और ठीक यही बात राजाके प्रति भी है।[2] अवज्ञा तथा अशिष्टताके प्रति कुमारपालके इन कठोर निश्चयो तथा दडोने, सभी प्रदेशो तथा अधीनस्थ राजाओपर उसका प्रभुत्व स्थापित कर दिया।[3]

कुमारपाल द्वारा उपाधिधारण

प्राचीनकालसे राजा-महाराजा अपनी राजशक्तिके प्रभाव और प्रतीक रूपमे विभिन्न उपाधिया धारण किया करते है। ब्राह्मणोम

---

[1] वही, पृ० ७९।

[2] वही। आद्यो मयैवायमदीपि नून न तद्देहेन्मामावहेलितोपि। इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीय.।

[3] वही। इति विमृशद्भि समन्तत. सामन्तैर्भयभ्रान्तचित्तैस्ततः प्रभृति स नृपति. प्रतिपदः सिषेवे।

कहा गया है कि पारमेष्ठ्यम्, राज्य, महाराज्य तथा स्वराज्यकी उपाधियां देवलोककी है, किन्तु शिलालेखो तथा उत्कीर्ण लेखोके अध्ययन और विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि मर्त्यलोकके राजा-महाराजा भी इनमेंसे अधिकांश उपाधियां धारण किया करते थे। इस प्रकार ये उपाधियां केवल देवलोकके सम्राटो तथा शासको तक ही सीमित न थी।[1] पहले ये उपाधियां गुणोकी प्रतीक थी। बादमे ये किसी राज्य अथवा राजाकी वार्षिक आयकी अर्थबोधक हो गयी। शुक्रनीतिमें इन उपाधियोंके क्रमिक अर्थका विशद विवरण है।[2]

कुमारपालके सभी उत्कीर्ण लेखोमें अनेकानेक विशद् उपाधियां मिलती है, जिनसे उसकी महानशक्ति, शौर्य और सत्ताका बोध होता है। विभिन्न शिलालेखो तथा ताम्रपत्रोंमें कुमारपालकी निम्नलिखित उपाधियोंका वर्णन मिलता है—कुमारपालको सभी राजाओंमें सर्वशक्तिमान कहते हुए "समस्त राजावली"[3] की उपाधि दी गयी है। वह शिवभक्त "उमापति-वरलब्ध"[4], "परम भट्टारक"[5], "महाराजाधिराज", "परमेश्वर"[6], चक्रवर्ती,[7] गुर्जरधराधीश्वर[8] परमार्हत चौलुक्य[9]की विभिन्न उपाधियोंसे भी विभूषित किया गया था।

निश्चय ही कुमारपालकी ये उपाधियां उसकी महान राजसत्ता और उसके प्रभाव द्योतक है। इनमेंसे एक उपाधि निज भुज विक्रम रणागण

---

[1] मैक्समूलर : वैदिक परिशिष्ट, चतुर्थ खंड।
[2] शुक्रनीति : १ : १८४-७।
[3] गाला शिलालेख : पूना ओरियन्टलिस्ट, खंड १, उपखंड २, पृ० ४०।
[4] वही।
[5] जालोर शिलालेख : इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[6] वही।
[7] ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८, ५१, ५२।
[8] इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[9] वही।

विनिर्जित शाकभरी भूपाल, (उसने समरभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित किया था)का तो कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें उल्लेख हुआ है।[1]

इसप्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालकी उपाधियां अत्यन्त विशद तथा महान सत्ताव्यक्त करनेवाली थी। और इनसे यह भी स्पष्ट है कि कुमारपाल अपने समयका एक महान राजा हो गया है। कुमारपालकी वीरता, उसकी महान राजकीय सत्ता, उसका साहित्य, संस्कृति तथा कलासे प्रेम उक्त उपाधियोंके अनुरूप भी रहा है, इसमें सन्देह नहीं। गुजरातके चौलुक्योंके पूर्व उत्तरीभारतमें गुप्तवंश तथा पुष्यभूति राज्यवंशकी महान राज्यशक्ति थी। गुप्तवंशके राजाओंने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज जैसी उपाधियां ग्रहण की थीं। इसप्रकार राजा-महाराजाओं द्वारा उपाधि ग्रहणकी प्रथा तथा परम्परा बहुत प्राचीन चली आ रही थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि महान विजेता कुमारपाल, जिसके समयमें गुजरातके चौलुक्योंकी राजशक्ति चरम उत्कर्षपर पहुंच गयी थी, प्राचीन राजकीय परम्परानुसार विशद उपाधियां ग्रहण करता।

गुर्जराधिप चौलुक्य कुमारपालकी विभिन्न उपाधियोंके विवेचन तथा विश्लेषण करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसने "समस्त राजावली"की उपाधि इसलिए ग्रहण की क्योंकि वह संघटित तथा पंक्तिबद्ध राजाओंका प्रतीक था और उनमें सर्वशक्तिशाली था। महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक तथा चक्रवर्ती उपाधियां उसकी व्यापक और विशद राजकीय सत्ताकी द्योतक थीं। 'निज भुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकभरी भूपाल' उपाधि कुमारपाल द्वारा रणभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित करनेकी घटनाका स्मारक है और अन्तिम "उमापति वरलब्ध" तथा 'परमार्हत चौलुक्य" क्रमशः उसकी शिवभक्ति तथा जैनधर्मके प्रति असीम प्रेम एवं श्रद्धाभक्तिकी परिचायक हैं।

---

[1] ए० एस० आई० डब्लू० सी०: १९०८-५१-५२।

सैनिक अभियान और साम्राज्य विस्तार

गुजरातके इतिहासकारोंका अभिमत है कि कुमारपाल अपने पूर्वजोंकी भाँति महान योद्धा था। जयसिंहसूरिके कुमारपालचरितमें उसके दिग्विजयका विशद वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थके सम्पूर्ण चौथे सर्गमें कुमारपालके विजयी सैनिक अभियानोंका विस्तृत उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि कुमारपाल पहले जावालपुर[1] (आधुनिक जालोर) पहुंचा। यहांके नायकने उसका स्वागत किया। जावालीपुरसे कुमारपाल सपादलक्ष प्रदेशपर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ा। सपादलक्षके (शाकम्भरी) राजा अरुणोराजाने जो कुमारपालका बहनोई भी था, उसका अत्यन्त आदर सत्कारपूर्वक अर्चन किया। यहांसे कुमारपालने कुरुमण्डलकी दिशामें प्रस्थान किया और मन्दाकिनी (गंगा)के तटपर जाकर रुका। इसके अनन्तर गुर्जरनरेश कुमारपाल मालवाकी ओर अग्रसर हुआ। मालवाकी दिशामें सैनिक अभियानके मध्यमें चित्रकूटके अधिपतिने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अवन्ती देश पहुंचकर कुमारपालने इस प्रदेशके शासकको बन्दी बनाया। इसके बाद उसके सैनिक अभियानकी दिशा नर्मदा तटके किनारे-किनारे हुई। रेवतूरमें थोड़ा विश्राम करनेके पश्चात् उसने नदी पार की तथा आभीर-विषयमें प्रवेशकर प्रकाशनगरीके अधिपतिको अधीनस्थ होनेके लिए बाध्य किया। कुमारपालका सुदूर दक्षिण

---

[1] कहीं कहीं "जावालीपुर" उच्चारण है। डी० एच० एन० आई० : खंड २, पृ० ९८२।

अभियान विन्ध्य पर्वतोंके कारण अवरुद्ध रहा। फिर भी उसने इस क्षेत्रके छोटे-छोटे ग्रामपतियोंसे कर वसूला तथा पश्चिम दिशाकी ओर मुड़कर लाटप्रदेशके अधिपतिको अपने अधीनस्थ किया।

लाटप्रदेशसे कुमारपाल पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़ा तथा उसने सौराष्ट्र विषयके प्रधानको पराजित किया। सौराष्ट्रसे उसने कच्छमें प्रवेश किया। यहाके प्रधान दामकको पराजित कर कुमारपाल पंचनदाधिप नौमायन समुद्रातासे युद्ध करने गया। उसपर विजय प्राप्त कर कुमारपाल मूलस्थान (आधुनिक मुल्तान)के राजा मूलराजपर आक्रमण करने गया। मूलराजसे भीषण युद्ध कर तथा विजयश्री हस्तगत कर चौलुक्य नरेश कुमारपाल काश प्रदेशसे जालधर और मरुस्थान होता हुआ लौटा। इसके आगे जयसिंहने शाकम्भरी नरेश अर्णोराजा और कुमारपालके बीच हुए युद्धका विस्तृत विवरण दिया है। जयसिंहका कथन है कि इस युद्धका कारण, अर्णोराजाका कुमारपालकी बहिन देवल्देवीके प्रति दुर्व्यवहार था। कहते हैं कि चौहान राज्यको छोड़कर वह चली आयी और अपने भाई कुमारपालसे असद्व्यवहारकी शिकायत की। इसीकारण कुमारपालने चौहान राज्यपर आक्रमण किया और अर्णोराजाको रणभूमिमें पराजित किया, किन्तु अन्तमें उसे ही सिंहासनारूढ किया।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि गुर्जराधिप कुमारपालने अपने शौर्य-वीर्यसे साभरप्रदेशके अधिपतिको पराजित किया था।[2] साभरके राजाके पक्षमें रहनेवाले एक प्रसिद्ध राजा त्यागभट्टने कुमारपालके विरुद्ध सैनिक आक्रमण किया।

---

[1] कुमारपाल चरित : जयसिंह, चतुर्थ सर्ग पृ० १७०।

[2] देवगुज्जर नरेसर परक्कमक्कत सायभरी भूपाल—मोहराजपराजयः चतुर्थ अंक पृ० १०६।

इस आक्रमणको कुमारपालने पूर्णतया विफल ही नही किया अपितु त्याग-भट्टको पराजित करनेमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।[1]

द्वयाश्रय काव्यमे हेमचन्द्रने कुमारपाल द्वारा श्रीनगर, काची तथा तिलगानापर विजय प्राप्त कर राज्य विस्तारको व्यापक करनेकी घटनाका सक्षेपमें विवरण दिया है।[2] कुमारपालके इन सैनिक अभियानोमें पश्चि-मोत्तरसे सिन्धुके राजाने भी अपनी सेवाए अर्पित की थी।[3] द्वयाश्रय महाकाव्यके प्राकृत भागमें कुमारपालके सम्मुख अन्य प्रदेशोंके राजाओ द्वारा अधीनता स्वीकार करनेकी घटनाका उल्लेख बहुत ही सक्षेपमें किया गया है। जवणके राजाने कुमारपालके भयसे सभी राग रगका परित्याग कर दिया था।[4] उव्वरवरने कुमारपालको प्रचुर धनराशिकी भेटके साथ उत्तम कोटिके अश्व प्रदान किये थे।[5] वाराणसीका राजा कुमारपालसे

---

[1] धन्यस्त्यागभट कुमारतिलक शाकम्भरीमाश्रितो
योऽसौतस्य कुमारपाल नृपतेश्चौलुक्य चडामणे ।
युद्धायाभिमुखोऽभवज्जय विधि स्वास्य विधि प्रेक्षते
प्रौढ्गर्जन विफल शरद्घन इव त्व केवल वल्गसि ॥
—मोहराजपराजय अक ५, श्लोक ३६।

[2] पहु सिरि नयर सिरीए जुज्जसि जुप्पसि तिलय लच्छीए
जुज्जसि कचि सिरीए भुजन्तो दाहिणि इण्हि ७२ ।

[3] सिंधु वई तुह पमाण वेलिल्लो तुमइ दिन्न चडुणओ
न जिमई दिवसे जमई निसाइ पश्छिम दिसाइ तह ७३

[4] तम्बोल न समाणई कम्मग-काले वि नण्हए जवणो
विसए अ नोव भुजइ भएण तुट्ट वसुट्ट कम्मवण ७५

[5] मणि गहिअ कणय घडिआहरणे उव्वेसरो वर-तुरगे
सगलिअ लक्ख सखे पेसइ तुह रिउ असघडियो ७५

मिलनेके लिए सदा उसके प्रासाद द्वारपर अवस्थित रहा करता था।[1] मगध देशसे बहुमूल्य रत्नोंकी तथा गौड देशसे श्रेष्ठतम हाथियोंकी भेंट कुमारपालके समक्ष आती थी। उसकी सेनाने कान्यकुब्ज प्रदेशको पादाक्रान्त कर वहाके राजाको आतंकित कर दिया था। दशर्न देशकी तो अत्यधिक शोचनीय स्थिति हो गयी थी। वहाका राजा भयग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इस प्रदेशका सारा धन कुमारपालके सैनिक ले गये तथा दशर्न देशके अनेकानेक सेनापति युद्धमें हत हुए। चेदिराज (त्रिपुरी, त्रिपुरा)की शक्ति तथा गर्वका मर्दन कर कुमारपालकी सेनाने रेवा नदीके तटपर अपना शिविर स्थापित किया। सैनिकों द्वारा रेवा नदीके घड़ियालोंको मारने तथा यहाके उपवनोंको क्षतिग्रस्त करनेका भी उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर कुमारपालकी सेनाने यमुना नदी पार की और मथुराके राजापर आक्रमण किया। मथुराका राजा अपनी निर्बल स्थितिको अच्छी तरह समझता था। उसने स्वर्णराशिकी भेंट द्वारा आक्रमकोंको सन्तुष्ट किया और अपने नगरकी रक्षा की। कुमारपालकी व्यापक प्रभुता तथा महत्ताका परिचय इस तथ्यसे भी मिल जाता है कि "जगलराज", "तुर्क मुसलमानोंका शासक" तथा "दिल्लीके सम्राट" भी उसकी प्रशंसा और प्रशस्ति कियाकरते थे। षष्ठ सर्गके अन्तमें कविने जगलराजको कुमारपालकी प्रशस्ति करते हुए अंकित किया है।[2]

---

[1] हरिस भुरिआणणो सो महिं भडण कासि-रौडयोराया
टिविडिक्कइ तुह बारं हय चिंचिअ हत्थि चिचइअं :७६:

[2] नीपाइअ जय कज अविअट्टिअ विक्कमं बलं तुज्झ
अविलोहिअ जय मदुराहिवस्स फंसायही विजयं :८८:
अविसंवाइ परिक्खा तणु पक्खोडण झडन्त पंसु कणा
णीहरिअ नक्क चक्कं तुट्ट तुरथा जंउणमुत्तिन्ना :८९:

चौहानोंके विरुद्ध युद्ध

द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल तथा अण अथवा अणकसे युद्धका जो वर्णन मिलता है, वह भिन्न है। इसमें कहा गया है कि उदयनके एक दूसरे पुत्र वहडने, जो सिद्धराज जयसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र था, कुमारपालके अधीनस्थ और आदेशोंपर कार्य करना अस्वीकार कर दिया। वहड कुमारपालकी सेवामें न रहकर, नागोरके राजा "अण" या जिसे मेरुतुगने "अणक" कहा है, के यहां चला गया। अणो या अणक वीसलदेव चौहानका पौत्र था। लक्षग्रामोंके राजा "अण"ने जब सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युका समाचार सुना तो उसने सोचा कि नये और निर्बल सिंहासनाधिकारी कुमारपालके नेतृत्वमें इस समय गुजरातकी सरकार है। अब अपनेको स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त समय आ गया है। इतना ही नहीं, अणने किसीसे कुछ प्रतिज्ञा करा और किसीको धमकी देकर, उज्जयनीके राजा बल्लाल तथा पश्चिमी गुजरातके राजाओंसे मैत्री कर ली। कुमारपालके गुप्तचरोंने उसे सूचना दी कि अणराजा सेना लेकर गुजरातके पश्चिमी सीमान्तकी दिशामें अग्रसर हो रहा है। उसकी सेनामें अनेक सेनापति विदेशी भाषाओंके भी ज्ञाता थे। अण राजाको कुयागम (कुठकोट)के राजाका सहयोग मिल गया तथा अणहिल्वाडेकी सेनाका एक सैनिक वहड भी उसके पक्षमें जा मिला था। उज्जयिनीराज देश-देशान्तरमें भ्रमणशील व्यवसा-

---

रिउ अक्कन्दावणयं अंखिजमाण हयमजुरिएभकुल
अविसूरन्त चमूवं पत्तं मदुदुराइ तुह सेन्न ९०:
सगलिल अन्त जस भर जगल वइणोवसप्पिउ दिण्णा
तुह रिउ भक्लावण घण पयाव सतप्पि एण गया :९४:
तइ पेल्लिओ तुरुक्को टिल्ली नाहो गलत्यिओ तह य
अट्ठक्खिओ अ कासी रिउ घत्तण छुह महाएस .९६:
द्वयाश्रय काव्य : सर्ग चतुर्थ, पृ० २१३, २१६।

थियोंसे गुजरातकी वास्तविक स्थितिसे परिचित हो चुका था। उसने मालवनरेश वल्लालसे एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी। उसने सैनिक आक्रमणकी योजना बनायी थी कि जैसे ही अणराजा आक्रमण कर प्रगति करेगा, वह पूर्व दिशाकी ओरसे गुजरातके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। कुमारपालको जब यह स्थिति विदित हुई तो उसके शोकका पारावार न रहा।

कुमारपालका सैनिक संघटन

इस अवसरपर कुमारपालकी सहायता तथा सहयोगके लिए भी अनेकानेक राजा आगे आये। कुमारपालको कूली जातिके लोगोंका भी सहयोग प्राप्त हुआ जो प्रसिद्ध अश्वारोही माने जाते थे। पहाड़ी जातिके लोग भी चारों ओरसे कुमारपालके साथ आ गये। कुमारपालके अधीनस्थ कच्छकी जनताने भी उसका साथ देना निश्चय किया। कच्छके साथ ही सिन्धुकी जनता भी सहयोगके लिए प्रस्तुत हो गयी। जैसे ही कुमारपाल आबूकी ओर अग्रसर हुआ उसके साथ मृगचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले पहाड़ी भी आ मिले। आबूका परमार राजा विक्रमसिंह, जो जालधर देशकी जनताका नेता था, कुमारपालके साथ हो गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अणराजाने कुमारपालके आगमनकी सूचना पाकर अपने मन्त्रियोंके परामर्शकी अवहेलना कर युद्ध करनेका निश्चय किया। किन्तु अभी उसकी सेना युद्धके लिए प्रस्तुत भी न थी कि रणभेरी सुनाई पड़ी और गुजरातकी सेना पर्वतोंकी ओरसे प्रवेश करने लगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्र दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि सपादलक्षके राजाने ही पहले आक्रमण किया था। मेरुतुंगका यह भी कथन है कि गुजरातपर आक्रमण करनेके लिए चौहान नरेशको बहडने ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया था। बहड कुमारपालके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था।

उसने उन प्रदेशोंके सरकारी अधिकारियोंको बहुमूल्य भेंट तथा रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। बहडने सपादलक्षके राजाको साथ लाकर गुजरातके सीमान्तपर एक शक्तिशाली सेना खड़ी कर दी थी।[1] किन्तु बहडके ये सभी प्रयत्न, जिनके द्वारा वह कुमारपालको पराजित तथा पदाक्रान्त करनेकी योजना बना चुका था, एक विचित्र घटनाके कारण विफल हो गये। कुमारपालके पास रणभूमिमें कौशल प्रदर्शित करनेवाला कलहपंचानन नामका एक अत्यन्त श्रेष्ठ हाथी था। इस हाथीके महावतका नाम कालिंग था। इसे बहडने धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। संयोगसे एक बार कुमारपालकी डाट फटकार उसे बहुत अप्रिय लगी और वह अपना कार्य छोड़कर चला गया। उसके रिक्त स्थानपर सामल नामका हस्तिचालक, जो अपने कौशल तथा ईमानदारीके लिए प्रसिद्ध था, नियुक्त किया गया। रणक्षेत्रमें जब कुमारपाल तथा अणककी सेनाका संघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि कुमारपालके गुप्तचरोंने सूचना दी कि उसकी सेनामें असन्तोष फैला दिया गया है। इस विषम घड़ीमें वीर कुमारपाल विचलित नहीं हुआ बल्कि ठीक इसके विपरीत साहस एवं दृढ़तासे अणकसे अकेले ही सामना करनेका निश्चय किया। उसने सामलको अपना हाथी आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी। यह देख कि सामल उसकी आज्ञाका पालन करनेमें ढिलाई से काम ले रहा है कुमारपालने उसपर विश्वासघातीका आरोप लगाया। सामलने इस आरोपको अस्वीकार करते हुए अपनी कठिनाईका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि विपक्षी दलकी सेनामें बहड भी हाथीपर सवार है। इसकी आवाज ऐसी है, जिससे हाथी भी आतंकित हो जाते हैं। उसने अपने वस्त्रोंसे हाथीके दोनों कानोंको बांधकर उक्त बाधा हटा दी और उसके अनन्तर कुमारपाल रणभूमिमें अणकके विरुद्ध अग्रसर हुआ।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृष्ठ १९०।

अरुणोराजाकी पराजय

बहडको हाथीके महावतके परिवर्तनकी स्थिति ज्ञात न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि हस्तिचालकसे अवश्य सहायता मिलेगी। यह सोचकर उसने अपना हाथी कुमारपालकी ओर बढ़ाया और हाथमें तलवार लेकर उसके मस्तकपर चढ़ जानेका प्रयत्न किया। सामन्त इस आक्रमणकी चालको तत्काल समझ लिया और अपने हाथीको तनिकसा पीछे हट जानेका आदेश दिया। इस प्रकार बहड दो हाथियोंके मध्य गिर पड़ा और कुमारपालके पैदल सैनिकों द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिया गया।[1] इसके अनन्तर तत्काल कुमारपाल अरुणोकी ओर बढ़ा। उसके निकट जाकर सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने कहा "जब तुम इतने वीर योद्धा थे तो सिद्धराजके सम्मुख क्यों नतमस्तक हुए थे। पूर्वकालमें तुम्हारा वह कार्य निश्चय ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि अब मैं तुम्हें पराजित नहीं करता तो सिद्धराजकी धवल कीर्तिका प्रकाश मन्द पड़ता जायगा।"[2]

इस प्रकार दोनों राजाओंमें युद्ध हुआ। दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भी भीषण रण संघर्ष हुआ। कुमारपालने अरुणोराजाको क्षत्रियोंकी भाँति युद्ध करनेकी चुनौती देकर ठीक उसके मुखपर ही बाण छोड़ा। बाणसे आहत होकर जब वह हाथीके सामने गिर पड़ा तो कुमारपालने अपने परिधानको कायम प्रसन्नतापूर्वक फहराकर विजयकी घोषणा की। जब अरुणोराजाके पक्षके दोनों नेता इस प्रकार पराजित हो गये तो सभीने कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालको इस युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

---

[1] प्रभावक चरित्र : अध्याय २२, पृ० २०१, २०२।

[2] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७७।

साहित्य और शिलालेखोंमें वर्णन

कुमारपालकी अरुणोराजापर इस विजय घटनाका उल्लेख वसन्त विलास[1] वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति[2] तथा सुकृत कीर्तिकल्लोलिनी[3]में हुआ है। साहित्यमें उल्लिखित कुमारपाल तथा अरुणोराजाके इस युद्धका शिलालेखों और उत्कीर्ण लेखोंमें भी वर्णन है। किरादू[4] (वि० स० १२०९) तथा रतनपुर प्रस्तर लेखों[5]में इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि नाडुल्य चौहानोंका प्रदेश कुमारपालके साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया गया था। भटुड शिलालेख[6]में यह अंकित है कि विक्रम संवत १२१०-१६में कुमारपालका एक दण्डनायक नाडुल्य प्रदेशमें नियुक्त किया गया था। अनहिलपाटक तथा शाकम्भरी राज्योंके मध्य चौहानोंका नाडुल्य राज्य

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज : संख्या ७, ३, २९।

[2] जैन धर्ममूरीचकार सहसाऽर्णोराजमत्रासयद्
बाणैः कुंकणमग्रहीदपि गुरुश्चक्रेस्मरध्वंसिनम्
इत्थं यस्य परिक्षतक्षितिभृतो हंसावलीनिर्मलै
रामस्येव निरन्तर नवयशः पूरैर्दिशः पूरिताः
गा० ओ० सिरीज : संख्या १० : परिशिष्ट १, पृ० ५८।

[3] कथ्यन्ते न महीभृतः कति महीयांसो महीशेखरा
माहात्म्य स्तुमहे तु हेतुनिगमा देतस्य चेतोहरम्
मर्यादा मतिलंघयन् रसल सद्यद्वाहिनी वाहितो
ऽर्णो राजः स जगाम जागल महीभागेषु भग्नोन्नतिः
गा० ओ० सिरीज : संख्या १० : परिशिष्ट २, पृ० ६७।

[4] इंपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[5] प्राकृत संस्कृत शिलालेख : भावनगर पुरातत्व विभाग, २०५-७।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडियन वेस्टर्न सर्किल, १९०८, ५१-५२।

था। चौलुक्योंकी राज्यसीमामें नाडुल्य निश्चित रूपसे सफल युद्ध द्वारा ही मिलाया गया होगा। इस तथ्यका समर्थन कुमारपालके चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेखसे भी होता है, और जिसका काल वि० सं० १२२० है।[1] इस उत्कीर्ण लेखमें यह लिखा हुआ है कि कुमारपालने सपादलक्ष प्रदेशको पदाक्रान्तकर शाकम्भरी नरेशको पराजित किया और उदयपुर चित्तौरके सालिपुरा स्थानमें अपना विशाल शिविर स्थापित किया।[2] बड़नगर प्रशस्तिके उत्कीर्ण लेखमें कुमारपालका उल्लेख करते हुए उसकी दो सैनिक विजयोंकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। इनमें एक तो राजपुतानाके शाकंभरी साभर प्रदेशके अधिपति अर्णोराजा (श्लोक १७)पर है और दूसरी विजय पूर्व दिशाके मालवराजपर है। इसी प्रशस्ति द्वारा हमें विदित होता है कि विक्रम संवत् १२०८के पूर्वमें ये युद्ध समाप्त हो गये थे।[3] अब तक नाडोल दानपत्रके आधारपर यही कहा जा सकता था कि अर्णोराजा वि० सं० १२१३के पूर्व विजित हो गया था।[4]

इस घटनाका उल्लेख कुमारपालके वि० स० १२०७के चित्तौरगढ़ शिलालेखमें भी हुआ है।[5] इसमें कहा गया है कि उक्त घटना अभी हालकी है। कुमारपालके पाली शिलालेखमें जो वि० सं० १२०९का है, यह अंकित है कि उसने शाकम्भरी नरेशको पराजित किया था।[6] अर्णोराजाको

---

[1] वही, १९०५-६, ६१।

[2] इस शिलालेखमें वर्णित "सालिपुरा" नामक स्थानका जहाँ कुमारपालने शिविर स्थापित किया था, अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। इपि० इंडि० खंड २, पृ० ४२१-२४।

[3] इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६, श्लोक १४, १८।

[4] इंडि० ऐंटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।

[5] इपि० इंडि० पृ० ४२१, सूची, संख्या २७९।

[6] आर्कलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, वेस्टर्न सरकिल, १९०७-८ :

पराजित करनेपर कुमारपालको जो उपाधि दी गयी थी, उसका अन्य उत्कीर्ण लेखोंमें भी उल्लेख है।[1]

मालव विजय

शाकंभरीके चौहानोंसे जो युद्ध हुआ, उसके कारण कुमारपालको पूर्वीय सीमान्तपर दो और युद्ध करने पड़े। द्वयाश्रय काव्यमें लिखा है कि अर्णोराजा पर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कुमारपालको यह परामर्श दिया गया कि वह मालवाधिपति बल्लालको पराजितकर यश अर्जन करे। कुमारपालके मन्त्रियोंने उसे मालवापर आक्रमण करनेका परामर्श क्यों दिया, इसका उल्लेख हेमचन्द्रने एक अन्य स्थलपर किया है। उसने लिखा है कि अर्णोराजा गुजरातके सीमान्तकी ओर बढ आया और उसने अवन्ति नरेश बल्लालसे अभिसन्धि कर ली थी। इसके अन्तर्गत यह योजना बनी कि उत्तर तथा पूर्व दोनो दिशाओंसे चौलुक्य राज्यपर एक साथ ही आक्रमण किया जाय।[2] जब चौलुक्य नरेश कुमारपाल पाटन लौटा तो उसे यह समाचार मिला कि विजय तथा कृष्ण जिन्हे उसने बल्लालका प्रतिरोध करनेके लिए भेजा था (और स्वयं अपने विरुद्ध सेना लेकर गया था) उज्जयिनी नरेशके पक्षमें जा मिले। उज्जयिनी नरेश अब उसकी राज्यकी सीमामें प्रवेशकर अणहिलपुरकी ओर अग्रसर हो रहा था।

कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर बल्लालका सामना करनेके लिए रवाना हुआ। हाथीपर सवार कुमारपालने बल्लालपर

"....प्रौढ़ प्रताप निजभुजविक्रमरणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीमत्कुमारपाल देव"।

[1] भीमदेव द्वितीयका दान लेख वि० सं० १२६६, इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ११३।

[2] इंडि० ऐंटी० खंड ४, पृ० २६८।

प्रहार कर उसे पराजित किया।[1] वसन्तविलासमें भी वल्लालपर कुमार पालकी विजयका उल्लेख हुआ है।[2] कीर्तिकौमुदीसे विदित होता है कि कुमारपालने वल्लालका शिरच्छेद कर दिया था।[3] साहित्यके इन ग्रन्थोंमें वर्णित इस घटनाकी पुष्टि शिलालेखोंसे भी होती है। दोहाद[4] प्रस्तर स्तम्भमें जयसिंहके समयका वि० सं० ११९६का एक उत्कीर्ण लेख है। इसीमें विक्रम संवत् १२०२का भी एक लेख उत्कीर्ण है। आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें महामंडलेश्वर यशपदेवका नामोल्लेख नहीं है। दोहद क्षेत्रकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थितिको देखते हुए यह सम्भव है कि सन् ११४०-११४६के मध्य इसपर चौलुक्योंका अधिकार न रह गया हो। जो हो, शिलालेखके लिखनेवालेने चाहे जिस कारणसे कुमारपालका इसमें नामोल्लेख न किया हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् ११६४ ईस्वीके कुछ पूर्व ही यह प्रदेश पुनः चौलुक्योंके अधीन आ गया था।

कुमारपालके दो उदयपुर प्रशस्ति लेखोंमें जिनका काल क्रमशः वि० सं० १२२० तथा १२२२ है, यह स्पष्ट अंकित है कि यह अपने पूर्वाधिकारियों की भाँति ही पुनः मालवाधिपति भी था।[5] ये शिलालेख अणहिलपाटकके कुमारपालके समयके हैं, जो 'शाकम्भरी तथा अवन्तिके अधिपतियोंको समरभूमिमें पराजित कर चुका' था। भाव बृहस्पतिकी प्रशस्तिमें भी कुमारपालको "वल्लाल गजके मस्तकपर उछलनेवाला सिंह" कहा गया है।[6] वडनगर प्रशस्तिमें भी इस बातका उल्लेख है कि चौलुक्यराजने

---

[1] वही।

[2] वसन्तविलास : ३, २९।

[3] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

[4] इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १५९।

[5] इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ३४१-४४।

[6] भावनगर शिलालेख, पृ० १८६।

देवी दुर्गाको मालवाधिपतिका कमल मस्तक, जो उसके द्वारपर लटका दिया गया था, अर्पण कर प्रसन्न किया था।[1] इस शिलालेखसे स्पष्ट है कि वल्लाल सन् ११५१के कुछ दिन पूर्व मारा गया था।[2] ऐतिहासिक परम्परासे मालवनरेश वल्लालकी पहचान करना कठिन है। परमारोंके प्रकाशित विवरणोंकी वंशावलीमें उक्त नाम नहीं आया है। जैसा ल्यूडर्सने कहा है सम्भव है वल्लालने अचानक ही सन् ११३५-११४४ ईस्वीमें मालवाकी राजगद्दीपर अधिकार कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली हो।[3] कुमारपालकी कठिनाइयोंसे लाभ उठानेके विचारसे अणहिलपाटककी गद्दीपर उसके बैठते ही वल्लालने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया हो। इतना ही नहीं, उसने गुजरातके विरुद्ध सैनिक आक्रमण करनेवाले शाकम्भरीके चौहानोंसे सन्धि कर ली हो और अपने राज्यके परम्परागत शत्रुसे लोहा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गया हो। वडनगर प्रशस्तिमें पूर्व दिशाके अधिपति मालव शासकपर कुमारपालकी प्रसिद्ध विजयका उल्लेख हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि मालव नरेश अपने देशकी सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपालके राजप्रासादके द्वारपर लटकाया गया था। उसी उत्कीर्ण लेखके आधारपर निश्चित रूपसे कहा

---

[1] इंपि० इंडि० खंड १, पृ० ३०२, श्लोक १५ तथा देखिये उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास : खंड २, पृ० ८८६।

[2] वेरावल शिलालेखके आधारपर ल्यूडर्सका मत है कि वल्लाल सन् ११६९के पूर्व मरा होगा। इंपि० इंडि० खंड ८, पृ० २०२। किन्तु वडनगर शिलालेखका मालवाधिपति ही निश्चित रूपसे बादके विवरणोंका वल्लाल रहा। इसलिए उसके निधन कालकी अवधि १८ वर्ष पूर्व निश्चित की जा सकती है।

[3] इंपि० इंडि० खंड ७, पृ० २०२-८। यशोवर्मनकी अन्तिम तथा लक्ष्मीवर्मनकी प्रारम्भिक तिथियाँ।

जा सकता है कि मालवासे युद्ध विक्रम संवत् १२०८के पूर्व समाप्त हो गया था। इस उत्कीर्ण लेख की सहायतासे हम दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि जयसिंहने मालवाको पहले ही अपने गुजरात राज्यमें मिला लिया था। दूसरी बात यह कि वहां हुए विद्रोहका दमन पांच वर्ष पहले ही किया जा चुका था। कीर्तिकौमुदीके अनुसार कुमारपालने गुजरातपर आक्रमण करनेवाले मालवराज बल्लालका शिरच्छेद कर दिया था। इस संघर्षका परिणाम यह हुआ कि मालवा पुनः पहलेकी भांति अनहिलवाड़के राजाओंके अधीन हो गया। भिलसाके निकट उदयपुरमें तथा उदयादित्यके मन्दिरमें अनेक प्रकीर्ण लेख मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने सम्पूर्ण मालवाको विजित किया था। ये शिलालेख जिस व्यक्तिने अंकित कराये हैं, उसने अपनेको कुमारपालका सेनापति कहा है।

परमारोंके विरुद्ध युद्ध

कुमारपालको अर्णोराजा चौहानके विरुद्ध आक्रमणके सिलसिलेमें जो दूसरा युद्ध करना पड़ा, वह आबूके चन्द्रावती प्रदेशके परमारोंके विरुद्ध था। कुमारपालचरितमें उल्लेख मिलता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजासे युद्धरत था, चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसलिए कुमारपालने उत्तरी शासक (अर्णोराजा)को पराजित कर चन्द्रावतीपर आक्रमण किया और इस नगरपर अपना पूर्ण अधिकार कर यहांके शासकको बन्दी बनाया।[1]

---

[1] द्वयाश्रय काव्य . ४, ४२१—५२ में इस आशयका कथन मिलता है कि आबूके परमार शासक विक्रमसिंहने उस समय कुमारपालका अपनी राजधानीमें स्वागत किया था, जब वह सपादलक्षके "अर्ण"के विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था। इंडि० ऐंटी० खंड ४, पृ० २६७।

हेमचन्द्रके विवरणके आधारपर कहा जा सकता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था तो आबू राज्यके शासक विक्रम-सिंहका स्वागत-सत्कार मैत्रीभावका दिखावा मात्र था। बादके घटना-क्रमसे हमें विदित होता है कि चन्द्रावतीके शासक विक्रमसिंहने युद्धमें अर्णोराजाका पक्ष ग्रहण किया था और कुमारपालने इसके लिए उसे दण्डित किया था। विक्रमसिंहको अनहिलवाड़में एकत्र बहत्तर अधीनस्थ शासकोंके सम्मुख अपमानितकर बन्दीगृह भेज दिया गया। विक्रमसिंहकी राजगद्दीपर उसके भ्रातृपुत्र यशोधवलको आसीन कराया गया।[1] इस घटनाकी पुष्टि तेजपालके विक्रम संवत् १२८७की आबू पहाड़ी प्रशस्तिसे भी होती है। इसमें कहा गया है कि अर्बुद परमार यशोधवलने यह विदित होते ही कि वल्लाल, चौलुक्यराज कुमारपालका विरोधी तथा शत्रु हो गया है, मालवाधिप वल्लालको तत्काल हत कर दिया।[2] प्रशस्तिके इस उल्लेखसे इस निर्णयपर पहुचा जा सकता है कि यशोधवल कुमारपालका अधीनस्थ शासक था।

कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष

इसके पश्चात् कुमारपालकी सेनाने, दक्षिण कोंकणके राजा मल्लिकार्जुनसे युद्ध किया। उत्तरी कोंकणके राजाओंकी प्रकाशित सूचीसे विदित होता है कि सन् ११६० ईस्वीमें शिलाहार वंश राज्यारूढ था। मल्लिकार्जुनके विरुद्ध कुमारपालको अपनी सेना क्यों भेजनी पड़ी, यह घटना इसप्रकार है—एक दिन कुमारपाल अपनी राजसभामें सेनापतियों तथा अधीनस्थोंके मध्य जब बैठा हुआ था तो एक भाटने मल्लिकार्जुनकी

---

[1] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८५।

[2] इंपि० इंडि०, खंड ७, पृ० २१६, श्लोक ३५ तथा उत्तरी भारतके राजवंशका इतिहास, खंड २, पृ० ८८६ तथा ९१४।

प्रशस्ति सुनायी। इसमें मल्लिकार्जुन द्वारा राजपितामहकी उपाधि ग्रहणकी घटनाका उल्लेख था।[1] कुमारपाल यह अपमान न सह सका और सभामें चतुर्दिक देखने लगा। आश्चर्य सहित कुमारपालने देखा कि उसका सचिव आम्बड हाथ जोड़ खड़ा है।[2] राजसभा जब समाप्त हो गयी तो कुमारपालने आम्बडको बुलवाया और सभामें उसकी उक्त मुद्रा विशेषका अभिप्राय पूछा। आम्बडने कहा कि महाराजाके चारो ओर देखनेका अर्थ मैंने यही लगाया कि आप जानना चाहते हैं कि इस सभामें कोई ऐसा योद्धा है, जो मल्लिकार्जुनके असत्य अभिमानका मर्दन कर सके। इस कार्यके लिए मैं ही अपनी सेवाएं अर्पित करना चाहता हूं और इसी आशयसे मैंने उक्त भाव व्यक्त किया था। तत्काल ही कुमारपालने अपनी विभिन्न सेनाके अधिकारियों तथा अधीनस्थोंको बुलाकर मल्लिकार्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आदेश दिया।

वालविनी[3] नदी पारकर तथा अनेकानेक अभियानोंके अनन्तर आम्बड अभी अपना सैनिकशिविर स्थापित ही कर रहा था कि मल्लिकार्जुनने उसपर आक्रमणकर पदाक्रान्त कर दिया। इस प्रकार पराजित होकर वह नदीके उस पार चला गया। यहां आ उसने काले वस्त्र धारण किये, सेनामें काले झंडोंसे कार्य संचालनका आदेश दिया तथा काले रंगके

---

[1] शिलाहार राजाओंमें यह उपाधि प्रचलित थी।—बम्बई गजटियर, १३, ४३७ टिप्पणी।

[2] इसका शुद्ध अम्बड है। इसका संस्कृत रूप अम्बरभट्ट तथा अम्बक है।

[3] यह चिकली तथा वालमारसे प्रवाहित होनेवाली कावेरी नदी है। नासिक केव इन्सक्रिप्शनमें इसी नदीका नाम "कारवेना" अंकित है। बम्बई गजेटियर . १६, ५७१। कावेरीका संस्कृत रूप हो "कालविनी" तथा "कारावेना" है। सम्भवत पेरिप्लसने इसी कावेरीको "अकावेरी" लिखा है।

समेकी व्यवस्था की। यह सुनकर कुमारपाल उस प्रदेशम आ गया था और उसन यह स्थिति देखी। उसे विदित हुआ कि यह आम्बडका ही सैनिक शिविर है। पराजयसे आम्बडका जैसा अपमान हुआ था, उससे लज्जित होकर उसने काले वस्त्रोको धारण किया था। कुमारपाल अपने पराजित सेनापतिकी इस भावनासे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसन शक्तिशाली राजाओ सहित दूसरी सेना आम्बडकी सहायताके लिए भेजी। इसप्रकार साधनसम्पन्न होकर आम्बडने पुन कावेरी नदी पारकर, एक मार्गका निर्माण किया और मल्लिकार्जुनकी सेनापर आक्रमण किया। आम्बडका ध्यान मल्लिकार्जुनपर ही विशेष रूपसे था। आम्बड अपन हाथीकी सूडसे[1] उसके मस्तकपर चढ गया और मल्लिकार्जुनको युद्धके लिए ललकारा। युद्धमें उसन मल्लिकार्जुनको नीचे गिराकर उसका शिरच्छेद कर दिया।[1] जिन अधीनस्थ राजाओको सहायताके लिए कुमारपालन भजा था, वे नगरका लूटनेम लगे थे। इसप्रकार कोकणम कुमारपालके आधिपत्यकी स्थापनाकर आम्बड, अणहिलपुर लौटा। उसने राजसभामें बहत्तर राजाओकी उपस्थितिम सुवर्णराशिम मल्लिकार्जुनका सिर अभिवादन सहित कुमारपालके सम्मुख उपस्थित किया। उसन मल्लिकार्जुनके कोषागारसे प्राप्त विशाल धनराशि भी सम्मुख रख दी।[2] इसपर प्रसन्न होकर कुमारपालने मल्लिकार्जुनसे छीनी गयी "राजपितामह",

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार मल्लिकार्जुनको चौहानराज सोमेश्वरने मारा था जो उस समय कुमारपालकी राजसभामें रहता था।—जर्नल आय रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१३, पृ० २७४-५।

[2] भृगार कोडी साडी १ माणिकउपछेडउ २ पापख उहारु। ३ सयोग सिद्धि सिप्रा ४ तया हेमकुम्भा ३२ तया मौक्तिकाना सेउड ६ चतुर्दन्त हस्ती १ पात्राणि १२० कोटी सार्द्ध १४ द्रव्यस्य दड। प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० २०३।

की उपाधि आम्बडको प्रदान करते हुए उसे सम्मानित किया।[1]

मल्लिकार्जुनके समयके दो शिलालेखोंका पता चलता है, जिनकी तिथि क्रमशः ईस्वी ११५८ (शक १०७८) तथा ईस्वी ११६० (शक १०८०) है। इनमेंसे प्रथम चिपलूनमें मिला है और दूसरा बेसिनमें। मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा उसके अन्तका समय ईस्वी सन् ११६० तथा ११६२ है क्योंकि सन् ११६२में ही उसके उत्तराधिकारी अपराजितका शासनकाल प्रारम्भ हो जाता है। कुमारपालकी सहायता बल्लालके विरुद्ध करनेवाले अर्बुद परमार यशोधवलने इस युद्धमें भी उसकी सहायता की थी। आबूकी तेजपाल प्रशस्ति (वि० सं० १२८७)में कहा गया है कि "जब यशोधवल क्रोधाविभूत होकर समरभूमिमें सन्नद्ध हो गया उस समय कोंकणनरेशकी रानियां अपने कमल समान नेत्रोंसे अश्रुपात करने लगी।"[2] इस मल्लिकार्जुनका परिचय तथा विवरण उक्त दो शिलालेखोंसे सटीक प्राप्त होता है कि वह शीलहार राजवंशका था।[3] श्रीभगवानलालका भी मत है कि मल्लिकार्जुनका अन्त सन् ११६० तथा ११६२ ईस्वीके बीच हुआ था।[4]

काठियावाड़पर सैनिक अभियान

मेरुतुंगने कुमारपालके अन्य जिस युद्धका उल्लेख किया है, वह सुभवरा या सौसरके विरुद्ध हुआ था। इस अभियानका नेतृत्व महामात्य उदयनने

---

[1] प्राकृत द्वयाश्रय काव्यमें इस सैनिक विजयका कवित्वमय वर्णन ६ठें सर्गके ५२से ७० तक श्लोकोंमें दिया गया है।

[2] इंपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २१६, श्लोक ३६।

[3] प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० १२२-२३।

[4] बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८६, सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, खंड १०, परिशिष्ट पृ० ६७।

किया था। इस युद्धमें चौलुक्य सेना पराजित हुई और उदयन घायल होकर शिविरमें पहुचाया गया। प्रबन्धचिन्तामणिमें कुमारपालके काठियावाडके एक आक्रमणका भी उल्लेख है जिसमें मन्त्री उदयन सौसर राजासे लडते लडते घायल होकर हत हुआ था।[1] श्रीभगवानलालका मत है कि यह युद्ध सन् ११४९ ईस्वी (वि० स० १२०५)के लगभग हुआ था। इसका कारण यह है कि मृत्युके पहले पालिताणामें आदिनाथका जीर्णोद्धार करानेकी उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह सन् ११५६ ५७ (वि० स० १२११) मे पूर्ण हुई।[2] श्रीभगवानलालका यह भी मत है कि सौराष्ट्रका यह शासक सम्भवत गोहिलवाड वशका रहा होगा। यह भी सम्भव है कि वह जूनागढके अधीन शासकके राजवशका हो, जो आभीर चूडासमा वशका था और मूलराज प्रथमके समयसे ही चौलुक्योंके विरुद्ध कार्यरत था। कुमारपालचरितमें इस घटनाका उल्लेख है कि अन्तमें समर या सौंसर युद्धमें पराजित हुआ और उसको पुन राजगद्दीपर बैठाया गया। सुधा पहाडी शिलालेखसे विदित होता है कि नाडुलके चौहान आल्हाह्नने[3] सौराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रोंमें होनेवाले विद्रोहोंके दमनमें कुमारपालकी सहायता की। समरको पराजित करनेमें सम्भवत इस शासककी भी सहायता कुमारपालको प्राप्त हुई थी।[4]

अन्य शक्तियोंसे सघर्ष

प्रबन्धचिन्तामणिमें मेरुतुगने कुमारपालके साभरपर एक ऐसे आक्र-

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८६ "सुराष्ट्रदेशीय सउसर-नामानम"।

[2] बम्बई गजेटियर खड १, उपखड १, पृ० १८६।

[3] भावनगर इन्सक्रिपशन, पृ० १७२ ७३ तथा किराडू शिलालेखका अल्हणदेव।

[4] एपि० इडि० खड ११, पृ० ७१।

मणका उल्लेख किया है जो वहडके छोटे भाई चहडने नेतृत्वमें किया गया था। चहडकी अतिमुक्तहस्तता सेनामें विदित थी किन्तु कुमारपालने परामर्श देकर उसीको सेनापतित्व करनेके लिए चुना। साभर पहुँचनेपर चहडने वावरानगरके किलेपर अपना अधिकार तथा नियन्त्रण कर लिया किन्तु उसदिन लूटपाट न की क्योंकि उस रात्रिको सात सौ कुमारियोंका विवाह होनेको था।[1] दूसरे दिन चहडने सेनाके साथ प्रवेश किया तथा नगरमें लूटपाट मचा दी। इसप्रकार इस प्रदेशमें कुमारपालका प्रभुत्व घोषित किया गया। उक्त वावरानगरका पता नहीं लग सका है। सम्भवतः उक्त स्थान साभरका नहीं अपितु काठियावाडका वावरियावाद है। इस सैनिक विजयके उपरान्त चहड पाटन लौटा। कुमारपाल चहडसे बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अमितव्ययके लिए दोषारोप करते हुए उसे राज घट्टा की उपाधि दी।

कुमारपालकी सीमापर आक्रमण करनेके बाद जिस नये आक्रमणके संकटकी सूचना मिली वह थी चेदि या डहलके राजा कर्ण द्वारा।[2] जब कुमारपाल सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने जा रहा था उसी समय गुप्तचरोंने उसे उक्त आक्रमणकी सूचना दी। इस आक्रमणकी सूचनासे थोडे कालके लिए कुमारपाल किंकर्तव्यविमूढ रह गया। इसी बीच एक घटना विशेष हुई। कर्णके नेतृत्वमें उसकी सेना रात्रिमें आगे बढ रही थी। कर्ण राजा गलेमें स्वर्णका हार पहने हाथीपर बैठकर यात्रा कर रहा था। रात होनेके कारण उसकी आँखोंमें निद्रा भरी थी। संयोगसे एक वृक्षकी डालमें उसका हार फँस गया और वृक्षमें लटककर वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

---

[1] एक ही दिनमें इतने अधिक विवाहकी प्रथा या तो कडवा कुनबी या भारवदोंमें थी और यह अब तक प्रचलित रही है।

[2] प्रबन्धचिंतामणि पृ० १४६ तथा उत्तरीभारतके राजवंशका इतिहास, पृ० ७९२।

यदि इस कथामें सत्यघटना मिश्रित है तो यह कर्ण, डहल कलचुरी गयाकर्ण होगा, जिसने सन् ११५१ ईस्वीके लगभग शासन किया था। कलचुरी राजा गयाकर्णके शिलालेखकी तिथि चेदि सवत् ९०२, ईस्वी सन् ११५२ है। गयाकर्णके पुत्र नरसिंहदेवके सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेखकी तिथि ११५७ ईस्वी (चेदि ९०७) है। इस आधारपर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गयाकर्णकी निधन तिथि कुमारपालके शासनकालम ईस्वी ११५२ तथा ११५७के बीच थी।

गौरवपूर्ण सैनिक विजयोका क्रम

इसप्रकार कुमारपाल भारतीय इतिहासम महान विजेताके रूपम अंकित है। उसके सभी सैनिक अभियान सफल रहे और सर्वदा अन्तम विजयश्री कुमारपालको ही प्राप्त होती रही। शासनके प्रथम दस वर्षोंम सन् ११४२से ११५२ तक कुमारपाल आन्तरिक शत्रुओ और उक्त आक्रमणो द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ करता रहा। वह महान योद्धा था और उसने गुजरातके राज्यकी सीमाका व्यापक विस्तार किया। जयसिंह-सूरि द्वारा कुमारपालचरित तथा हेमचन्द्र द्वारा द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपाल-के दिग्विजयका जो वर्णन है, वह प्राचीन भारतीय राजाओंकी दिग्विजयका परम्परागत कवित्वमय वर्णन है और उनको सम्पूर्णतया ज्योका त्यो ऐतिहासिक कोटिके अन्तर्गत नही रखा जा सकता तथापि उन युद्ध-विवरणोंमें अनेकानेक तथ्य भरे पडे है, जिनकी किसी प्रकार उपेक्षा नही की जा सकती। यह इसलिए कि इन तथ्योकी पुष्टि शिलालेखो तथा ऐतिहासिक प्रबन्धोंसे भी होती है, जिनकी प्रामाणिकतापर सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता है।

सामर प्रदेशके अर्णोराजा, कोकणके महारराजा मल्लिकार्जुन तथा मालवा-धिप बल्लालपर कुमारपालकी विजयकी ऐतिहासिक घटनाए ऐसी है, जो केवल जैन ग्रन्थाम ही वर्णित नही अपितु इनका विभिन्न शिलालेखोंमें

भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमारपाल उन राजाओंको भी पराजितकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जिन्होंने विद्रोह किया अथवा शत्रुके पक्षको ग्रहणकर उसकी सहायता की। इसप्रकार चन्द्रावतीके विक्रमसिंह काठियावाड़के मोसरराज तथा अन्य राजाओंको कुमारपालने न केवल पराजित किया अपितु उनपर अपना पूर्ण आधिपत्य भी स्थापित किया।

जयसिंहके कुमारपालचरित तथा हेमचन्द्रके द्वयाश्रय में कुमारपालकी विभिन्न सैनिक विजयोंकी गौरवगाथाके जो विशद वर्णन मिलते हैं उनसे विदित होता है कि उसने किसप्रकार पहले सौराष्ट्र विषय, और फिर कच्छ विजयके पश्चात् पचनदाधिपको रणभूमिमें पददलित और पराजित किया। इसके अनन्तर कुमारपालने पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़कर मूलस्थानके मूलराजको भी अपने अधीन किया। यह मूलस्थान आधुनिक मुलतान है। काठियावाड़में कुमारपालके सैनिक अभियान और अन्तमें उसकी महान विजयके सुस्पष्ट विवरण अनेक जैनग्रन्थोंमें मिलते हैं। यही नहीं इन जैनग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंगोंकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखों द्वारा भी होती है। इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए बहुतसे प्रमाण हैं कि अपने समयमें कुमारपालका समस्त गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतपर एकछत्र प्रभुत्व स्थापित था। द्वयाश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजय वर्णनका विश्लेषण करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसकी मान्यता तत्कालीन भारतके एक महान प्रभुसत्तासम्पन्न शक्तिके रूपमें विद्यमान थी। वस्तुतः बारहवीं शताब्दीमें भारतमें कोई ऐसी एक संघटित तथा गतिशील राज्यशक्ति न थी जो उसकी समानता करती।

कुमारपालकी राज्यसीमा

हेमचन्द्रके महावीरचरित्र में कहा गया है कि कुमारपालकी विजयोंका क्षेत्र उत्तरमें तुर्किस्तान पूर्वमें गंगा दक्षिणमें विन्ध्यपर्वत तथा पश्चिममें

समुद्र तक व्यापक था।[1] जयसिंहने कुमारपालकी अखंड विजयोंका विवरण देकर उसके दिग्विजय क्षेत्रका भी उल्लेख किया है। उसका कथन है "आगगाम एन्द्रिय, आविन्ध्याम याम्याम, आसिन्धुपश्चिमाम, आतुरुष्काम का कौवेरीम चौलुक्य साधयिष्यति।" अभिप्राय यह कि कुमारपालके दिग्विजयका क्षेत्र पूर्व दिशामें गंगा नदी, दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत, पश्चिममें सिन्धु तथा उत्तरमें तुरुष्कभूमि तक विस्तृत था।

कुमारपालकी इन सैनिक विजयोंपर विचार करनेसे स्पष्ट है कि उसका आधिपत्य हरिद्वारके निकट गंगा तक सुदृढतापूर्वक स्थापित था। उसने कान्यकुब्ज प्रदेशको पराजितकर इस क्षेत्रके सभी राजाओंको अपने अधीनस्थ कर लिया था। दक्षिणमें कुमारपालने मालवराजको पराजित कर एक बार पुनः उस प्रदेशको चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत मिला लिया था। देशमें कोई भी दूसरी ऐसी शक्ति नहीं थी जो इस समय चौलुक्य प्रभुत्वका विरोध करती अथवा उसको चुनौती देती। दक्षिणमें कुमारपालने विन्ध्यपर्वत तक विजय प्राप्त कर ली थी और उस क्षेत्रमें उसका एकछत्र प्रभुत्व था। यह बात तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें तो वर्णित है ही, कुमारपालके सैनिक अभियानोंसे भी पुष्ट होती है।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि कुमारपालने मुल्तानके राजाको हटाकर श्रीनगरपर भी विजय प्राप्त की। इसके बाद वह पंचनदधिप (पंजाबके राजा)के विरुद्ध सफल युद्ध कर जालन्धर तथा मरुस्थानके मार्गसे लौटा। कुमारपालचरित तथा द्वयाश्रय महाकाव्यका यह विवरण यदि अक्षरशः न भी माना जाय, तो भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इतना तो कमसे कम स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुमारपालके राज्यपालने

---

[1] आ कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्
याम्यामाविन्ध्यमावार्धि पश्चिमां साधयिष्यति—महावीरचरित: ४:५२।

पजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतके पहाटी राज्यो, जिनम श्रीनगर भी सम्मिलित था, दमनकर चौलुक्य प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार ये क्षत्र महान चौलुक्यराज कुमारपालके अधीन थ । राज्यका पश्चिमी सीमान्त समुद्र बताया गया है। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि कुमारपालन सौराष्ट्र प्रदेशम अनक सैनिक अभियानो द्वारा देशके उस भागको अपने राज्याधीन कर लिया था। इस दिशाम तो महान चौलुक्य शक्तिसे प्रतियोगिता करनवाली कोई राज्यशक्ति थी ही नही। सिन्धुराज-को उनकी प्रभुता मान्य थी। इसप्रकार चौलुक्यराज कुमारपालकी ऐसी महत्ता और सत्ता स्थापित हो गयी थी, जैसी किसी चौलुक्य राजाकी अब तक न हो पायी थी। कुमारपालके प्रचुर सख्यामें प्राप्य शिलालेख, ताम्रपत्र, दानलेख और उनके प्राप्तिस्थान सभी एकमतसे उसकी इसी व्यापक और विशाल राज्य-सीमाकी स्थितिका समर्थन करते हैं। इस प्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रमाणोसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व दिशामें गगा, पश्चिममें समुद्र, उत्तरमें मुलतान तथा श्रीनगर और दक्षिणम विन्ध्यपर्वतने विस्तृत एव व्यापक प्रदेशमे कुमारपालका आधिपत्य सुदृढ-तया स्थापित था। प्रबन्धकारोके अनुसार हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राज्य-सीमाके अन्तर्गत कोकण, कर्नाटक, लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च, भाभेरी, मारवाड, मालवा, मेवाड, वीट, जागल, सपादलक्ष, दिल्ली, जालन्धर, राष्ट्र अर्थात् महाराष्ट्र आदि अठारह देश थे। गुजरात-के साम्राज्यकी सीमा प्रदर्शित करनेवाली, इतनी व्याप विशाल रेखा, भारतके मानचित्रम केवल कुमारपालके पराक्रमने अकित की थी।

चौलुक्य साम्राज्य चरमसीमापर

मेरतुगने लिखा है कि कुमारपालकी आज्ञाकी मान्यता कर्ण, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, मालवा, कोकण, जागलक, मेवाड, सपादलक्ष और जालन्धरमें होती थी और इन राज्योमें उसने "सप्तव्यसन"पर प्रति-

पेधाज्ञा लगा दी थी।[1] इससे भी कुमारपालकी राज्यसीमाका ठीक ठीक पता लग जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है। चौलुक्य साम्राज्यपर उसके सस्थापक मूलराजके समयसे यदि विचार किया जाय तो विदित होगा कि मूलराजने सारस्वत मडल (सरस्वती नदीकी घाटीम) अणहिल-पाटकको अपनी राजधानी बनाकर राज्यकी स्थापना की। इस प्रदेशमे उसने सत्यपुर मडल, जो जोधपुर या मारवाड राज्यका आधुनिक साचोर प्रदेश है, सम्मिलित किया। उसके पुत्र भीम प्रथमने, कच्छमडल (कच्छ)को विजित किया। इसके बाद कर्णने लतामडल, दक्षिण गुजरातको तथा जयसिहने सौराष्ट्र मडल (काठियावाड) अवन्ति, भाल्लास्वमी महदवाड दाका प्राय सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मडल आधुनिक दोहादका चतुर्दिक प्रदेश, आधुनिक जोधपुर तथा उदयपुरके अनेक मडलाको चौलुक्य साम्राज्य-म मिलाया। जयसिंह सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने इस व्यापक एव विस्तृत राज्यमें न केवल अनक प्रदेशोपर विजय प्राप्त कर उन्हे अन्तर्भूत किया, बल्कि आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानेके सूदूर प्रदेशाम अपना आधिपत्य स्थापित रखनेम भी सफलता प्राप्त की। सक्षेपमें कहा जा सकता है कि कुमारपालके राज्यकालमें चौलुक्य साम्राज्य अपनी चरमसीमापर प्रतिष्ठित एव मान्य था।

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश : पृ० ९५ —'कर्णाटे गुर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छ सैन्धवे। उच्चाया चैवभभेर्या मारवेमालवे तथा कौंकणेतु तथा राष्ट्रे कीरे जागलके पुन। सपादलक्षे मेवाडे ढील्या जालन्धरेऽपिच जन्तूनामभयं सप्तव्यसनाना निषेधनम्। वादन न्याय घण्टाया रुदतीधनवर्जनम्।'[2]

राज्य और शासन व्यवस्था

चौलुक्यकालमें गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतके विशाल भूखण्डकी राज्यव्यवस्थाका इतिहास अध्ययन करने योग्य है। इस समयकी विभिन्न प्रशासनीय इकाइयों और अधिकारियोंके नाम ही नहीं मिलते अपितु एक-एक इकाइयों द्वारा प्रादेशिक विस्तार तथा उनके शासन प्रबन्धकर्त्ताओंके भी विवरण प्राप्त होते हैं। दसवीं शताब्दीके अन्तमें भारत, काबुलसे कामरूप तथा कश्मीरसे कुमारीअन्तरीप तक विभिन्न राज्यखंडोंमें विभाजित था। इनमें कुछ राज्य बड़े थे तो कुछ छोटे। इनका शासन निरंकुश हिन्दू राजा, जो अधिकतर राजपूत थे, कर रहे थे। इस समय कोई ऐसी महान शक्ति न थी, जो सम्पूर्ण देशको एकछत्र और एकसूत्रमें आबद्ध कर सकती। फिर भी प्राचीन परम्परा, धर्म तथा जातिकी एकताका एक ऐसा सूत्र विद्यमान था जिससे सभी राज्योंको साम्राज्यमें एकबद्ध किया जा सकता था। भारतीय साम्राज्यकी कल्पना देशके राजाओंके सम्मुख थी। इसके अनुसार अधीनस्थ राज्योंका पददलन अनिवार्य न था। अपेक्षित था—केवल उनका अधीनस्थ होना और सम्राट या चक्रवर्ती-की प्रभुसत्ताकी मान्यता स्वीकार करना। चौलुक्य शासन कालमें गुजरातमें राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। यह तथ्य चौलुक्य राजाओं-की सत्ता तथा महत्ता सूचक उपाधियों—महाराजा,[1] राजाधिराज,[2]

---

[1] पाली शिला० : पो० ओ० खंड १, उपखंड २, पृ० ४०।

[2] पाली शिला० . इपि० इंडि०, खंड ११, पृ० ७०।

परमेश्वर,[1] परमभट्टारक,[2] तथा महाराजाधिराजसे प्रमाणित और पुष्ट हैं। चौलुक्य राजे अपनको गुर्जरधराधीश्वर कहते थ, अर्थात् वे गुजरात प्रदेशसे सर्वोच्च अधिपति थ।[3]

राष्ट्रका स्वरूप

चौलुक्य राजवशके सस्थापक मूलराजने सारस्वत मडलमें अपना राज्य स्थापितकर अणहिलपाटकको (आधुनिक पाटन, बडौदा) राजधानी बनाया। इसम उसने सत्यपुर मडल, साचोरके चतुर्दिक प्रदेशको जो आधुनिक जोधपुर मारवाड क्षेत्रके अन्तर्गत है, मिलाया। उसके पुत्र भीमप्रथमने कच्छ मडल, कर्णने लता मडल दक्षिणी गुजरात तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मडल (काठियावाड) अवन्ति, सम्पूर्ण मालवा, दधिपद्र मडल (आधुनिक दोहदका चतुर्दिकप्रदेश) और आधुनिक जोधपुर, उदयपुर राज्यके अनेक मडलोको राज्यम मिलाकर चौलुक्य राज्यका विस्तार किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने इन सुदूर प्रदेशोपर जो आधुनिक गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और दक्षिणी राजपूतानाके प्रदेश थे, अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखनेम सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि य सभी शासक साम्राज्य निर्माता थे। अन्य प्रदेशोको अपने राज्यम इन्होन निरन्तर मिलाया और सुदूर प्रान्तो तक अपनी सत्ता स्थापित की। चौलुक्योकी राष्ट्र व्यवस्था नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक थी। आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिके सिद्धान्तानुसार प्रभुसत्ता सम्पन्न राजशक्तिको व्यवस्था तथा विधान निर्माण का अपरिमित अधिकार होता है। नियन्त्रित राजतन्त्रसे यह अभिप्राय है कि जहा विधान व्यवस्थाम राजा ही सर्वाधिकारी नही अपितु उसका यह अधिकार जहाकी ससद अथवा लोकसभाम भी सन्निहित रहता है।

---

[1] वही।

[2] वही।

[3] जालोर प्रस्तर लेख : इपि० इडि० खड ११, पृ० ५४-५५।

प्राचीन भारतमें राजाओं अथवा जनताको नवीन विधान बनाने अथवा विद्यमान विधानमें परिवर्तन करनेका अधिकार न था। आदिकालमें ब्रह्माने प्रथम राजा मनुको उन समस्त आवश्यक राजनियमोंको निर्मितकर प्रदान कर दिया था जो लोकशासन व्यवस्थामें पथप्रदर्शन किया करते थे। यह ईश्वरीय स्मृति निर्मित राजनियम ही भारतके विभिन्न राज्योंमें प्रचलित था। इससे निरंकुश राजाओंकी स्वेच्छाचारितापर कुछ सीमा तक अंकुश लग जाता था। इससे स्वेच्छाचारी राजाओंकी निरंकुश व्यवस्था भी नियन्त्रित हो जाती थी। इस प्रकार दसवीं और बारहवीं शतीमें भारतके बहुतसे निरंकुश राज्योंमें वस्तुतः नियन्त्रित राजतन्त्र व्यवस्था विद्यमान थी और इसके अन्तर्गत सुशासन था तथा जनता प्रसन्न थी।[1]

नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता

साधारणतः यह धारणा प्रचलित है कि भारतीय राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हुआ करते थे। डाक्टर विसेन्ट स्मिथ तथा श्री एस० एम० एडवर्ड्सका यह मत है कि भारतीय राजा-महाराजा अनियन्त्रित होते थे। डाक्टर बनर्जीका कथन है कि निरंकुश राजाका स्वरूप हिन्दू संस्कृतिकी दयालुताके अनुरूप न था[2]। अर्थशास्त्र तथा हिन्दू धर्म-शास्त्रोंमें देशके शासकपर लगे विभिन्न अंकुशों और प्रतिबन्धोंका उल्लेख है। इसपर भी यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिताका अतिरेक करता तो उसे अपदस्थ, उसके विरुद्ध खुला विद्रोह तथा दूसरे राजाको सिंहासनारूढ करनेका मार्ग खुला रहता था। इन परिस्थितियोंमें प्रायः कोई राजा पूर्णतः निरंकुश नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय राजव्यवस्थामें

---

[1] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत, खंड ३, पृ० ४४७।

[2] प्राचीन भारतमें जनशासन, पृ० ७४।

शासितके प्रति पितृप्रेमकी परम्परा भी प्राचीनकालसे चली आ रही थी। साधारणतः हिन्दू राजे अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह भाव रखते थे जैसी सहज स्नेहभावना एक पिता अपने पुत्रके लिए रखता है। यह भावना सिद्धान्त-मात्र ही न थी अपितु प्रयोगमें भी लायी जाती थी। भारतीय राजाओंने कठोर और क्रूरताकी नीति द्वारा अपनी प्रजाका निर्दलन किया हो, इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। उफीने अपने "जमैयत-उल-हिकायत"[1] में दीर्घजीवन बूटीकी एक मनोरंजक कथाका उल्लेख किया है, जिससे विदित होता है कि मुसलिम बादशाहोंकी तुलनामें भारतीय राजामहाराजा अपेक्षाकृत दयालु हुआ करते थे। उनकी धारणा थी कि प्रजाका दमन करनेसे जन-अभिशापसे आततायी राजाओंकी आयु कम हो जाती है। इस कथाका चाहे जो भी महत्त्व हो, इतना तो स्पष्ट है ही कि हिन्दूराजा प्राचीन परम्पराके अनुसार अपनी प्रजाके प्रति पुत्र जैसा स्नेह रखते थे। इसीलिए मध्यकालीन इतिहासमें कश्मीरके अतिरिक्त कहीं किसी आततायी राजाका उल्लेख नहीं मिलता।

इन परिस्थितियोंमें चौलुक्य राजे न तो निरंकुश राजे थे और न उनके अधिकार ही बहुत अधिक सीमित थे। राजकीय सत्तापर अंकुश तथा प्रतिबन्धोंके होते हुए भी चौलुक्य राजे प्रायः अपनी स्वेच्छाके अनुसार कार्य करते थे। महामात्यों और सचिवोंके परामर्शसे उनकी नीति निर्देशित होती अवश्य थी, किन्तु उसको स्वीकार करनेके लिए वे बाध्य न थे। इस प्रकार एक शब्दमें उन्हें हितैषी स्वेच्छाचारी शासक कहा जा सकता है।

राज्यमें कुलीनतन्त्र

द्वयाश्रय तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें अनहिलवाडेका ऐसा चित्रण एवं

---

[1] इलियट २, पृष्ठ १७४।

वर्णन हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहाका राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न था। उसके पार्श्वमें श्वेत परिधानवाले जैनधर्मके आचार्यों अथवा ब्राह्मणोंका समूह रहता था। उसके एक ओर राजपूत योद्धा उपस्थित रहते जो युद्ध-भूमिमें अपनी वीरता तो दिखाते थे, साथ ही मन्त्रि-परिषदमें महत्वपूर्ण परामर्श भी दिया करते थे। इसके बाद वणिक मन्त्रेश्वरोंका भी उसकी सभामें अस्तित्व था, जो यद्यपि शान्तिप्रिय धन्धोंमें लग गये थे, फिर भी उनकी नसोंमें अभी तक क्षत्रिय रक्त अवशेष था। किनारेकी ओर एक मंडलमें प्रमुख योद्धा, राजकीय उच्च अधिकारी, भाट-वन्दीजन जिनकी वाणीमें बल था तथा शान्तिप्रिय किसानोंका समूह फूल-फलोंकी भेंट अर्पित करता दृष्टिगोचर होता था। इनके पृष्ठभागमें पहाडी क्षेत्रके आदिवासी भील आदि थे जिनका रंग काजलसा काला था। इन्हें देखकर भय उत्पन्न होता था किन्तु यही धनुषधारी भील उनके रक्षक थे।[1] तत्कालीन अधिकारियों एवं मान्य ग्रन्थकारोंके उक्त विवरणसे राज्यके प्रमुख वर्गों तथा जातीय तत्वोंका परिचयबोध हो जाता है। राजसभामें सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा श्वेत वस्त्रोंकी पोशाकमें जैन पंडितोंका उल्लेख मिलता है तो द्वितीयतः हमारी दृष्टि राजपूत योद्धाओंकी ओर आकृष्ट हो जाती है, जो रणभूमिमें अपना शौर्य दिखलाते थे तथा सचिव-सभामें परामर्शका भी कार्य करते थे। तृतीयतः वणिक "मन्त्रेश्वरों"का भी उल्लेख मिलता है, जो यद्यपि 'शान्तिका व्यवसाय' करते थे फिर भी जिनकी धमनियोंमें क्षत्रिय रक्त अब भी विद्यमान था। अन्तमें हमें शब्दों द्वारा गर्जन करनेवाले भाटों तथा शान्तिप्रिय किसानोंका वर्णन मिलता है।

सामन्तवादका अस्तित्व

राज्यमें ब्राह्मणोंकी स्थिति शक्तिशाली, प्रतिष्ठित और सम्पन्न थी। चौलुक्य राजाओंने पुण्यप्राप्तिके लिए ब्राह्मणोंको भूमिदान किया

[1] फोर्बस। रासमाला, पृ० २३०-३१।

था। भूमिदानका दूसरा उद्देश्य पंच महायज्ञ, बलि, चरु, विश्वेदेवा अग्निहोत्र तथा अतिथि यज्ञ था। इसके अतिरिक्त इसीकालमें सर्वप्रथम मोढ ब्राह्मण शासनके विभिन्न विभागोंमें विशेषत महाक्षपटलिकके पदपर नियुक्त किये गये थे।[1]

राजपरिवारके सदस्योंको भी जमीन-जागीर देनेकी प्रथा थी। कुमारपालके सम्बन्धमें भी ऐसा ही कहा जाता है। सोलंकी सम्राटने कुम्हार अलिंगको सात सौ ग्रामोंका दानपत्र दिया था। उक्त कुम्हारने अपने निम्नकुलसे लज्जित होकर अपना उपनाम 'सगरा' रखा जो बादमें भी उसके वंशका बोधक एवं परिचायक रहा।[2] यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बघेलके सिवा सैनिक सेवाके निमित्त वंश-वंशजोंके लिए किसीको भी स्थायीरूपसे भूमि नहीं प्रदान की गयी। गुजरातकी मुख्य भूमिमें जितने किले थे, उनमें राजाकी ही सेना रहती थी। सामन्तों और सरदारोंका उनमें हस्तक्षेप न था। प्राय सभी राजपूत घरानेमें जिनके प्रधान बड़े बड़े जागीरदार तथा शासक होते थे, उन्हें अणहिलपुरके राजा द्वारा भूमि देनेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इसमें एक अपवाद भीलोंका है, जिनका

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ११, पृ० ७३। श्रीध्रुवके अनुसार कुम्हारेना लेखक "मोढपरिवार"का सदस्य था। मूलराजके काडो शिलालेखमें जिस प्रकार मोढेरा "श्री मोढ़ेरा" लिखा गया है उससे विशेष पवित्रताका भाव विदित होता है। इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९१। अब भी मोढ़ेरामें मोढ ब्राह्मणों तथा बनियोंकी कुलदेवीका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्रकार मोढ तथा मोढेराकी अपनी प्राचीन परम्परा है तथा इनका उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें भी मिलता है। कुमारपालके परामर्शदाता, पथप्रदर्शक तथा जैन महापंडित हेमचन्द्र मोढ ही थे। प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १२७।

[2] 'तेनु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते।'—प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश चतुर्थ, पृ० ८०।

कथन है कि उन्होंने चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा कर्ण द्वितीयसे भूमि प्राप्त की थी।

द्वयाश्रय महाकाव्य, प्रबन्धचिन्तामणि तथा चौलुक्योंके अनेक विवरण पत्रोंमें मूलराजकी राजसभामें युवराज और महामंडलेश्वरका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके बहनोई कृष्णदेवका (कान्हदेवका) वर्णन एक बड़े सामन्तके रूपमें हुआ है, जिसके अधीन भारी सेना भी थी।[1] जब सामन्त उदयन काठियावाड़में सोंसरके विरुद्ध सैनिक अभियान कर रहा था, उस समय जब वह नूरद्वानमें पहुंचा तो वहां उसने सभी महामंडलेश्वरोंको एकत्र किया। ये महामंडलेश्वर और कोई नहीं सभी प्रदेशोंके प्रधान थे। उन मंडलीक राजाओंका भी उल्लेख मिलता है जो अणहिलपुरकी राजसत्ता तो स्वीकार करते थे किन्तु उनके प्रदेश गुजरातके अन्तर्गत नहीं थे। सामन्त, सैनिक अधिकारी थे और उन्हें राजकोषसे वेतन मिलता था। इनकी सेनामें जितने सैनिक रहते थे, उसीके अनुसार उसका पद होता था।[2] यही पद्धति बादमें दिल्लीके मुगल सम्राटोंके कालमें प्रचलित हुई। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें अनेकानेक उच्च सैनिक अधिकारी जो अपनी स्वतन्त्र सेना भी रखते थे, वणिक (बनिया) वर्गके थे। इन लोगोंमें वनराज तथा सुज्जनके साथी जाम्ब, जयसिंहके सेवक मुंजाल और कुमारपालके समय उदयन और उसके पुत्रके नाम उल्लेखनीय हैं।

आभिजात तन्त्रकी प्रमुखता

इसप्रकार स्पष्ट है कि जागीरदार राजपूतोंके कुलीनतन्त्रके अतिरिक्त वणिक या वैश्योंका भी राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश प्रभाव था। केवल

---

[1] प्रभावकचरित : २२ अध्याय, पृ० १९७ "तत्रास्ति कृष्णदेवाख्य. सामन्तोऽश्वावुत स्थिति"।

[2] शिलालेखों तथा सिक्कोंमें "सामन्त" शब्दका बराबर प्रयोग हुआ है।

प्रवेश ही नही, इनके हाथ शासनसूत्र भी था। ऐसे लोगोमें प्रागवत, जो अब पोरवाड कहे जाते हैं तथा मोढ प्रसिद्ध है।[1] श्री एच० डी० सनकालियाका यह मत है कि "वोडावा' नामक राजपूत जातिका अब अस्तित्व नही किन्तु इनका अस्तित्व आधुनिक पोरवाड वनियोमें दृष्टिगत होता है। चौलुक्योंके अधीन शासकके रूपमे इनका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल[2] जिन्होने, देलवारा मन्दिरका निर्माण कराया था तथा अपने सम्बन्धियोंके अनेकानेक लेख उत्कीर्ण कराये थे। ये और इनके पूर्वज श्वेताम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ होनेके अतिरिक्त राजाके योग्य सचिव भी थे।

यशपालका तत्कालीन नाटक "मोहराजपराजय" राजधानी अनहिलपुरमे वणिकोकी प्रमुखताका उल्लेख करता है। इसमे जो चित्रांकन किये गये है उनके अनुसार यहा कोटिश्वरो तथा लक्षाधिपतियोंके भवनोपर ऊची पताकाए तथा घटे लगे रहते थे। उनका वैभव राजकीय वैभवके ही समान था। उनके पास हाथी घोडे भी रहते थे। कुबेरने ६ करोड स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तोला रजत, ८ तोला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र कुम्भ अन्न, दो सहस्र तेलकी खारी, ५० हजार अश्व, एक सहस्र हाथी, ८० हजार गाय, ५०० हल, गाडी गृह आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[3] ये जैन वणिक

---

[1] प्रागवत सम्भवत पोरित्याबदनावा सस्कृत रूप है जिसका उल्लेख कुमारपालकालीन नाडोलपट्टमें हुआ है।—इडि० ऐंटी० : खड १० पृ० २०३।

[2] आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१०।

[3] गुरुपादमूलकमले गृहमेधिजनोचितानिमान्नियमान्
प्रतिपद्यते कुबेरो वैराग्यतरंगितस्वान्त।
तद्यथा—जन्तून् हन्मि न वच्मि नानृतमहं स्तेय न कुर्वे परस्त्रीनों
यामि तया त्यजामि मदिरा मास मधुत्रक्षणम्

राज्यमें बहुत प्रभावशाली थे। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके राज्यारोहणमें सत्ताधारी वणिकोंके दलने योगदान दिया था। कुबेरने 'परिग्रहपरिमाणव्रत के अन्तर्गत अपने धनधान्यकी सीमा निश्चित की थी।

यह स्थिति स्पष्ट बताती है कि राज्यमें जैन व्यवसायियों और वणिकोंका बहुत ऊंचा स्थान था। इसके दो कारण थे। एक था उनके पासकी विशाल सम्पत्ति तथा धनराशि और दूसरा कारण था उनके अधीनस्थ सेनाका होना। इसप्रकार निश्चयपूर्वक इस निष्कर्षपर पहुंचा जा सकता है कि उस समय सामन्तों अथवा जागीरदारोंके कुलीनतन्त्रकी प्रमुखता न थी अपितु वहां सम्पन्न प्रभावशाली जैन वणिकोंका अल्पजनाधिपत्य था जिसे अभिजाततन्त्र कहा जा सकता है।

नागर शासन-व्यवस्था

हिन्दू राजतन्त्रका आधार, सैनिक शासनका न था अपितु उनके अन्तर्गत नागर अथवा सानुनय व्यवस्थाका प्राधान्य था।[1] इस कालम

नवत नाम्नि परिग्रहे मम पुन स्वर्णस्य पट कोटय—
स्तारस्याष्ट तुलाशतानि च महार्हाणा मणीनादश :३९:
कुम्भखारी सहस्रे द्वे प्रत्येक स्नेहधान्ययो
पचायुतानि वाहाना सहस्रमपि हस्तिनाम् ४०
अयुतानि गवामष्टौ पच पच शतानितु
हलाट्टसद्मना यान पात्राणामन सामपि :४१
पूर्वं जोपार्जिता लक्ष्मीरियत्यस्तु गृहे मम
इतो निज भुजोपात्ता करिष्यें पात्रसात्पुन ४२
—मोहराजपराजय

[1] नराधिपश्चाप्यनुशिष्यमेदिनीं
दमेन सत्येन च सौहृदेन।

अधिकांश युद्ध, भूमिलोभ अथवा राज्यविस्तारकी आकांक्षासे प्रेरित न होकर उच्च सिद्धान्तोंके लिए हुए। यह उच्च सिद्धान्त था स्वर्गकी प्राप्ति।[1] समुद्रगुप्तमें भी यही भावना परिलक्षित होती है। उसकी मुद्राएं इस तथ्यका स्पष्ट संकेत करती हैं।[2] प्रत्येक राजाका शासन सिद्धान्त मुख्यतः इसीपर आधृत था। हिन्दू राजा नागर या सानुनय राजकीय व्यवस्थाको पसन्द करते थे और उनके शासन प्रबन्धमें सैनिकवादका प्राधान्य न था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि साधारणतः हिन्दू राज्यके दीर्घजीवी होनेके लिए परम्परागत सर्वमान्य राजनियमोंका पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता था।

चौलुक्य राजाओंका प्राचीन भारतीय राजाओंकी भांति यही महान लक्ष्य था कि विदेशी आक्रमणों अथवा आन्तरिक उपद्रवोंसे अपनी प्रजाकी रक्षा करना तथा अपने सीमान्तको व्यापक विस्तृत बनाकर उन प्रदेशोंको अपने अधीनस्थ करना। वस्तुतः उनका राजनीतिक आदर्श राजा विक्रमादित्य था, जिसने सभी दिशाओंके प्रदेशोंमें आक्रमण कर राजमंडलोंको अपना सेवक बना लिया था।[3]

चौलुक्य राजे राज्यमें सेना रखनेके अतिरिक्त सामन्तशाहीकी स्वीकृति भी देते थे। इसप्रकार सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको एक सौ अश्वोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल, अर्णो-

---

महीं द्धुरिप्ट्वा क्रतुभिर्महात्मा
त्रिविष्टपं स्थानमुपैति शाश्वतं। शान्ति पर्व ६१

[1] हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीटयूशन, अध्याय २, पृ० ७६।

[2] "राजाधिराजा पृथ्वीम् अवनित्य दिवं जयति अप्रतिवार्यवीर्य" जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री खंड ६, उपखंड २, स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री', पृ० ३२।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३४।

राजाके विरुद्ध युद्ध करने गया तो यह कहा जाता है कि उसकी सेनामें "महाभूत" तथा "भटराजा" नामके सेनानायक थे।[1] यह स्थिति स्पष्ट करनेका अभिप्राय इतना ही है कि गुजरातके चौलुक्यराजाओंका शासन सानुनय था, सैनिक नियमोंके अनुसार यहांकी राजव्यवस्था न थी। केवल युद्धके समय राज्यकी सेनाके साथ अधीनस्थों तथा राज्यके बाहरके प्रधानोंकी सेनाका एकीकरण हो जाता था और शत्रुसे सघटित युद्ध होता था।

केन्द्रीय सरकार

चौलुक्योंके समय नौकरशाही अथवा सामन्तशाही शासन पद्धति थी, इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कहना कठिन है। इसका ठीक ठीक निर्द्धारण करना तो आधुनिक कालमें भी कठिन हो जाता है। आज भी जबकि लम्बे चौड विशद विधान बन गये है, यह श्रेणी विभाजन सच्चे अर्थमें सभव नही। इसके लिए तत्कालीन समय और परिस्थितियोंका विचार करना ही होगा। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना होगा कि साम्राज्यकी आवश्यकताओंके अनुसार राजाओंकी नीति निर्द्धारित हुई होगी। जहांतक एतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, उसके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि चौलुक्यकालीन गुजरातमें शासन यन्त्रकी व्यवस्थित प्रणाली विद्यमान थी।

राजा और उसका व्यक्तित्व

कुमारपालका साम्राज्य व्यापक और विशाल था, यह हम देख चुके है। उसीके कालमें चौलुक्योंकी शक्ति तथा प्रभुत्व चरमसीमापर पहुच गया था। शिलालेखो, ताम्रपत्रो, दानलेखो तथा साहित्यिक सामग्रियोंसे

---

[1] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३३।

विदित होता है कि उसके समयमें सुदृढ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन-व्यवस्था विकसित और विद्यमान थी। शासनका सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वही सम्मान तथा उपाधियोंका वर्षण-वितरण किया करता था।[1] उसकी मुख्य रानी 'पट्टमहिषि' कही जाती थी।[2] मुख्य राजकुमार अथवा युवराज, राजाके बाद सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्तित्व रखता था। राज्यके शासन सचालन तथा सपादनका कार्यभार उसके प्रमुख कर्तव्योंमें था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि सिंहासनारूढ होनेपर कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पट्टरानी बनाया। राजाकी अस्वस्थता अथवा अनुपस्थितिमें ये उसका कार्य करते थे।[3]

तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंमें राजाका वर्णन इसप्रकार मिलता है—प्रभुसत्ता सम्पन्न राजाका व्यक्तित्व राजकीय वैभवसे पूर्ण रहता था। उसके ऊपर लाल मखमलका राजछत्र रखा जाता था। उसके सिरके पृष्ठभागमें सुनहरे सूर्य मडलका चित्राकन चमकता रहता था। उनके गलेमें बहुमूल्य मोतियोंका हार तथा उसके हाथोंमें चमकते हुए हीरोंका कंकण रहता था। उसका व्यक्तित्व तथा आकृति भी असाधारण होती थी। उसके विशाल बाहुमें भाला तथा तलवार सुन्दर लगते थे। युद्धभूमिमें उसके नेत्रोंसे अग्निवर्षा होती थी। युद्धभूमिका प्रचड शख-निनाद भी उसे उसी प्रकार परिचित रहता, जितना राजप्रासादका गम्भीर ध्वनियन्त्र। वह शस्त्रधारी होता था और साथ ही अभिषिक्त प्रधान। वह क्षत्रियपुत्र होता था और रानीका राजकुमार होता था।[4]

---

[1] इपि० इडि० : खड २, पृ० २३७।

[2] महारानी राजाके राज्याभिषेकके समय सिरपर सुवर्णपट्ट धारण करती थीं। इसलिए उसे "पट्टरानी" कहा जाता था।

[3] सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारतका इतिहास पृ० ४५८।

[4] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

राजाके कर्त्तव्य

राजाके कर्तव्य मुख्यत. तीन प्रकारके थे। वह शासन परिषदका अध्यक्ष था। वह प्रधान सेनापति था और वही होता था न्यायाधिकरणका सर्वोच्च अधिकारी। कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताने कुमारपालकी दिन-चर्याका जो वर्णन किया है उससे राजाके विभिन्न कर्तव्यो तथा कार्योका स्पष्ट परिचय मिलता है।[1] सोमप्रभाचार्यका कथन है कि राजा बहुत सवेरे ही उठ जाता था और पवित्र जैनधर्मके पच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण तथा देवताओ और गुरुओका ध्यान करता था। इसके पश्चात् स्नानादिके अनन्तर वह राजप्रासादके मन्दिरमें जैन मूर्तियोका वन्दन-अर्चन करता था। यदि कभी समय रहता था तो अपने मन्त्रियोके साथ वह हाथीपर कुमार विहार मन्दिर भी जाया करता था। वहा अष्टागिक पूजन करनेके अनन्तर वह हेमचन्द्रके पास जाता था। उनका वन्दन तथा धार्मिक शिक्षा श्रवणकर वह माध्याह्नमें राजप्रासाद लौटता। तब वह साधुओको भिक्षा देता और अपने मन्दिरकी जैन मूर्तियोको प्रसाद भोग लगाता और फिर स्वय भोजन करता। भोजनके पश्चात् वह विद्वानोकी एक सभामें सम्मिलित होता और धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर उनसे विचार विमर्श करता। इसमे कवि सिद्धपाल प्रमुख थे, जो कुमारपालको अनेकानेक प्रासगिक कथाए सुनाकर प्रसन्न करते थे। दिवसके चतुर्थ प्रहरमें राजसभामें राजा सिहासनपर आसीन हो राज्यका कार्य सम्पादन करता। इसी समय वह जनताकी प्रार्थना सुनता तथा तद्विषयक निर्णय भी सुनाता था। कभी कभी वह राजकीय कर्तव्य भावनाके अन्तर्गत मल्ल-युद्ध, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोमें भी सम्मिलित होता था।

इसके पश्चात् वह सूर्यास्तके लगभग ४८ मिनट पूर्व सन्ध्याका भोजन

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ४२२ तथा ४७१।

करता। प्रत्यक पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको वह केवल एक शाम ही भोजन करता। भोजनोपरान्त वह प्रासाद स्थित मन्दिरोंमें पुष्पोंसे अर्चना करता तथा नर्तकियों द्वारा देव मूर्तियोंके सम्मुख दीपक नृत्यका आयोजन कराता। इस पूजा और अर्चनाके अनन्तर वह वाद्ययन्त्र तथा चारणोंसे संगीत सुनता। इसप्रकार दिन व्यतीत कर वह मस्तिष्कमें त्यागकी भावना रख विश्राम करने जाता था।[1]

यद्यपि कुमारपालप्रतिबोधसे बहुत ही सीमित और संक्षिप्त ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है, फिर भी विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि यह संक्षिप्त जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय और प्रामाणिक है। उक्त ग्रन्थका लेखक कुमारपालका केवल समसामयिक ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनकी अंतरंग वार्तोंका भी ज्ञाता था। कुमारपालके धार्मिक गुरु हेमचन्द्रने अपने कुमारपालचरित्रमें उसकी दिनचर्याका जो विवरण दिया है वह सोमप्रभाचार्यके वर्णनसे पूर्णतः साम्य रखता है।[2]

श्रीफोर्वस्ने राजाके दैनिक जीवनके कार्यक्रमका जो विवरण लिखा है वह भी उक्त वर्णनसे समानता रखता है। उसका कथन है कि राजाकी निद्रा प्रभातकालमें राजकीय वाद्य तथा शंखनादसे भंग की जाती थी। राजा शैय्याका त्यागकर अश्वारोहणके लिए चला जाता था। माध्याह्नमें

---

[1] सो राया वुट्ठयग्ग विसज्जिअ दिवस चरम-जामम्मि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाई।
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण दंसण देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडीयार।
कय-निद्दिवेय जण विम्हियाइ कारि अंक मल्लजुद्धाइ
रज्जट्ठिइ त्ति कइया वि पेच्छए छिन्नवक्खो वि।

कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित्र, सर्ग १, श्लोक २९, ७४।

वह लोगोकी प्रार्थनाए और आवेदन-निवेदन सुनता था। राजसभाके द्वारपर सशस्त्र सैनिक रहते थे। ये ही सभामे लोगोको प्रवेश करने देते अथवा निषेध करते थे। युवराज अथवा भावी उत्तराधिकारी, राजाके पार्श्वमें रहता। मडलेश्वर तथा सामन्त राजाके चारो ओर रहते थे। मन्त्रिराज अथवा प्रधान अपने सचिवोके साथ वहा विद्यमान रहता था। वह मितव्ययिता तथा साधुपरामर्शके लिए सदा प्रस्तुत रहता था। अपने परामर्शकी पुष्टि और प्रामाणिकताके लिए वह लिखित व्यवस्था तथा पूर्वमे हुई उसी प्रकारकी घटनाकी परम्पराकी व्यवस्था—पत्र भी प्रस्तुत रखता था। आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर पडित तथा विद्वान आमन्त्रित किये जाते थे और उनके साहित्य तथा व्याकरणशास्त्रका रसास्वादन होता और उनपर विचार विमर्श होता।[1]

शासन-परिषदका अध्यक्ष

उपर्युक्त आधिकारिक विवरणोसे स्पष्ट है कि राजाको तीन प्रकारके कर्तव्य सम्पादन करने पडते थे। शासन—परिषद्के अध्यक्ष होनेके नाते उसे राजकीय व्यवस्थाका निरीक्षण करना पडता था। उक्त ग्रन्थोंके वर्णनोंसे स्पष्ट है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमे (लगभग ३ बजे) राजा, सभामें सिंहासनपर आसीन होकर राज काजका निरीक्षण करता था।[2] महामडलेश्वर तथा सामन्त उसके चतुर्दिक रहते थे। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियो सहित साधुतापूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते हुए लिखित आधिकारिक व्यवस्था लिए सदा प्रस्तुत रहते थे।[3] स्पष्टत राजाको राज्यकार्य सम्पादनम मन्त्रियोसे सहायता प्राप्त होती थी।

---

[1] फोर्बस् : रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[3] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

सैनिक कर्त्तव्य

राजा रणभूमिमें प्रधान सेनापति भी होता था, परिणामस्वरूप उसे सेनाके प्रशासनकी भी देखभाल करनी पडती थी। यद्यपि दडाधिपति या दडनायकपर ही प्रधान सेनापतिका समस्त उत्तरदायित्व रहता था और उसीपर सैनिक व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी फिर भी राजा स्वय सैनिक टुकडियोका निरीक्षण किया करता था। कुमारपालप्रतिबोधमें कहा गया है कि यदा कदा राजकीय कर्त्तव्य पालन करनेके लिए कुमारपाल मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोंमें सम्मिलित होता था।[1] यह केवल मनोरजनके निमित्त न था अपितु राजकीय कर्त्तव्यके अन्तर्गत था। इससे विदित होता है कि सैनिक प्रदर्शनो, घुडदौडा, हस्तियुद्धा आदिमें सम्मिलित हो कुमारपाल अपने आवश्यक सैनिक कर्त्तव्य का पालन करता था।

वैचारिक कर्त्तव्य

न्यायाधिकरणके उच्चतम अधिकारीके रूपमें राजा जनपक्षके तर्क भी दिनमें सुनता था।[2] राजा अपने राजदरबारमें सिंहासनपर आसीन होकर जनतासे पुनर्वाद सुनता तथा अपना निर्णय देता था।[3] राजा अपना यह वैचारिक कर्त्तव्य गूढ परिषदके अध्यक्ष रूपमें सम्पन्न करता था। इसके अतिरिक्त अधिस्थानकके अधीन अनेक स्थानीय तथा प्रान्तीय न्यायालय रहे होंगे। राजा जहा महत्त्वपूर्ण पुनर्वाद सुना करता था वह सर्वोच्च न्यायालय था। यहा वह बहुत ही आवश्यक प्रश्नो तथा पुनर्वादोंको सुनता और मन्त्रियोकी सलाहसे निर्णय दिया करता था। उसके

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

मन्त्री, जिनके विषयमें हम पहले ही देख चुके हैं, लिखित आधिकारिक व्यवस्था पत्र तथा पहले निर्णीत प्रश्नोंका उदाहरण प्रस्तुत रखते थे और न्याय सम्पादनमें राजाकी हर प्रकारसे सहायता करते थे। इस बातपर पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि पूर्वकालमें हुए निर्णयोंकी अवहेलना न हो।[1]

अन्य विभिन्न कर्त्तव्य

इनके अतिरिक्त भी राजाको अन्य विभिन्न कर्त्तव्योंका पालन करना होता था—यथा धार्मिक कर्त्तव्य आदि। वह विद्वत्परिषद् तथा पंडित मंडलीमें उपस्थित हो उसमें दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श किया करता था। वह साधुओं सन्यासियोंको भोजन-भिक्षा दिया करता था, और मन्दिरोंमें अन्नादिकी भेंट करता। शासन कार्योंका सम्पादनकर, पंडित तथा विभिन्न विषयोंके आचार्य आमन्त्रित कर लिये जाते थे और साहित्य तथा व्याकरण शास्त्रकी चर्चा छिड जाती॥ इससे भी अधिक आकर्षक कार्यक्रम होता था भ्रमणशील चारण अथवा चित्रकारका आगमन। ये राम तथा विभीषणकी प्राचीन कथायें सुनाते अथवा किसी विदेशी सुन्दरीके सौन्दर्यका चित्रण कल्पना-चक्षुके सम्मुख उपस्थित करते।[2] उपर्युक्त कार्य राजाके अतिरिक्त कर्त्तव्योंके अन्तर्गत थे, जिनका सम्पादन उसे अपने दैनिक उत्तरदायित्वोंको वहन करनेके साथ ही साथ करना पडता था।

राजा-नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित

चौलुक्य राजा, प्राचीन हिन्दू राजतन्त्रके अनुसार अनियन्त्रित राजे थे। राजा ही शासन सम्बन्धी समस्त विभागोंका अध्यक्ष और सर्वोच्च अधिकारी था। सिद्धान्ततः उसकी शक्ति और अधिकारमें कोई हस्तक्षेप

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

नहीं कर सकता था, किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अंकुश लगानेवाली अनेक शक्तियाँ थीं। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमें सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ़ होनेमें राजधानीके सम्पन्न जैन दलोंने बड़ी सहायता की
६ थी। ये जैन करोड़पति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोंपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दंडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोंके साथ पाटन छोड़कर चले गये थे और उन्होंने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बड़े बड़े जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओंका प्रभुत्व सहन न था। यशदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओं की स्वेच्छाचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौलुक्य राजाओंका शासन कायम मन्त्रियों द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमें मन्त्रियोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिये, क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमें सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओं और सहायकोंके बिना राज्य उसी

---

[1] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ३।

[2] वही, पृ० ४५।

भाति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुंगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"में सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राज-दरबारमें मन्त्रियोंकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत हैं कि कुमारपालके यहां मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पंडितोंकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज सभामें वह महामंडलेश्वरों तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओंकी उपेक्षा अथवा उल्लंघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टतः इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुमारपालको राज्य-शासन संचालनमें मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियों तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासन-कालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1] न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्मं स नो यत्र न चास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलकानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

[2] कुमारपालप्रति-बोध, पृ० ४२३—४४३।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

नही कर सकता था, किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा अंकुश लगानेवाली अनेक शक्तियां थी। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमें सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ होनेमें राजधानीके सम्पन्न जैन दलोंने बडी सहायता की थी। ये जैन करोडपति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोंपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दंडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोंके साथ पाटन छोडकर चले गये थे और उन्होंने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बडे बड जैन उद्योगपतियोंको, राजपूत राजाओंका प्रभुत्व सहन न था। कर्णदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओं की स्वेच्छाचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओंको शासन कार्यमें मन्त्रियों द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकाजमें मन्त्रियोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिये, क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमें सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओं और सहायकों बिना राज्य उसी

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, खंड १, पृ० ३।

[2] वही, पृ० ४५।

भाति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना, ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"में सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राज-दरबारमें मन्त्रियोंकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध, द्वयाश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रश्नपर एकमत हैं कि कुमारपालके यहां मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था[2]। वह पंडितोंकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राज सभामें वह महामंडलेश्वरों तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों सहित लिखित आदेशपत्र लेकर सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओंकी उपेक्षा अथवा उल्लंघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टतः इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुमारपालको राज्य-शासन संचालनमें मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियों तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व, जयसिंह सिद्धराजके शासन-कालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1] न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्म स नो यत्र न चास्ति सत्य सत्य न तद्यत्कृतकानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि · चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५३।

[2] कुमारपालप्रति-बोध, पृ० ४२३—४४३।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

जब सिद्धराजके उत्तराधिकारीका निर्वाचन हो रहा था, उस समय मन्त्रीगण सिंहासनके आकांक्षी राजकुमारोंसे प्रश्नकर उनकी योग्यताकी परीक्षा ले रहे थे। जब एक राज्यसिंहासनाकांक्षीसे पूछा गया कि वह सिद्धराजके अठारह क्षत्रोंका शासन कैसे सञ्चालित करेगा तो उसका यह उत्तर कि आपके परामर्श तथा आदेशानुसार उन मन्त्रियोंको उचित नहीं प्रतीत हुआ जो सिद्धराज जयसिंहके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। इसलिए वह अयोग्य ठहराया गया।[१] प्रभावकचरितमें इस बातका उल्लेख है कि कुमारपालका राज्यारोहण श्रीमन्त सभाके द्वारा हुआ था, जिसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता।[२] इसीप्रकार कुमारपालप्रतिबोधका कथन है कि मन्त्रियोंने परस्पर विचार-विमर्शकर कुमारपालको सिंहासनारूढ किया।[३] द्वयाश्रय काव्यके प्रणेता हेमचन्द्रने भी लिखा है कि मन्त्रियोंने कुमारपालको राज्यसिंहासनपर आसीन किया।[४]

मन्त्री और उनका स्वरूप

इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि एक न एक रूपमें

---

[१]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[२]प्रभावकचरित २२, ३५६, ४१७।

[३]एवं परप्पर मंतिऊण तह गिण्हिऊण सवाय
सामुद्दिय मोहुत्तिय साउणिय नेमित्तिय नराणा।
रज्जंमि परिट्ठविओ कुमारवालो पहाण पुरिसेहिं
तत्तो भुवणमसेस परिओस-परं व संजाय।
कुमारपालप्रतिबोध, प० ५।

[४]तत्थ सिरि कुमरवालो वाहाए सव्वओवि धरिअ धरो
सुपरिट्ठ परीवारो सुपइट्ठो आसि राइन्दो।
द्वयाश्रय काव्य सर्ग १, पृ० १५, श्लोक २८।

इस समय मन्त्रिपरिषद्का अस्तित्व अवश्य था और उसका कार्य था राजाको शासन सचालन तथा न्याय निर्णयमे सहायता प्रदान करना। इस मन्त्रि-परिषद्का अध्यक्ष सम्भवत महामात्य, मन्त्री अथवा सचिव होता था। इसप्रकार जयसिंहके मुजाल, कुमारपालके महादेव[1] अजयपालके नागड[2] तथा सोमेश्वर,[3] भीम द्वितीयके रत्नपाल,[4] वीरधवल वस्तुपाल और तेजपाल वीसलदेवके नागड,[5] अर्जुनदेवके मूलदेव,[6] सारगदेव, मधूसूदन तथा वेध्या मन्त्री थ।[7] यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिशाली राजाओके अधीन ये मन्त्री तदनुकूल नीति निर्देशित करते थे। यह हम पहले ही देख चुके है। राज्यके उत्तराधिकारीके चुनावके अवसरपर एक राजकुमारका यह कथन कि "आपके आदेश तथा परामर्शानुसार" उन मन्त्रियोको उचित उत्तर प्रतीत नही हुआ जो सिद्धराजके गम्भीरस्वरपूर्ण आदेशोके पालनके अभ्यस्थ थे। यह बात स्पष्टत सिद्ध करती है कि शक्तिशाली राजाओके अधीन मन्त्रियोके लिए राजकीय सत्ताका विरोधकर सर्वथा स्वतन्त्र नीतिका निरूपण कदापि सम्भव न था।

कुमारपाल बहुत शक्तिशाली राजा था। यह हम पहले ही देख चुके है कि वह पचास वर्षकी अवस्थामें सिंहासनारूढ हुआ। उसकी प्रौढावस्था तथा विभिन्न देशोमें पर्यटनसे प्राप्त अनुभवोके फलस्वरूप उसम तथा

---

[1] आर्कलाजियल सर्वे आव इडिया वेस्टर्न सर्किल १९०७-८, ५४-५५।

[2] इडि० ऐंटी० : खड १८, पृ० ३४७।

[3] वही, पृ० ११३।

[4] इपि० इडि० . खड ८, पृ० २०९।

[5] इडि० ऐंटी० : खड ६, पृ० ११२।

[6] राव शिलालेख।

[7] इडि० ऐंटी० : खड ४१, पृ० २१२ तथा पूना ओरियटलिस्ट जुलाई १९३१, पृ० ७१।

उसके कतिपय पुराने उच्च कर्मचारियोंमें मतभेद उत्पन्न हो गया। पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि कुमारपाल जैसे योग्य तथा शक्तिशाली शासकके अधीन उनका प्रभाव एकदम विलुप्त हो गया है। परिणामस्वरूप उन्होंने राजाकी हत्याकर अपनी पसन्दका राजा गद्दीपर बैठानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे कुमारपालको इस षड्यन्त्रका पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारियोंको प्राणदंड मिला। निरंकुश तथा शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंकी स्थिति कैसी रहती थी, यह उसका एक उदाहरण है।

केन्द्रीय सरकारका संघटन

गुजरातके चौलुक्योंके शासनकालमें विभिन्न शासन यन्त्रोंका विकसित तथा पुष्टस्वरूप विद्यमान था। ऐतिहासिक तथा तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंके अतिरिक्त, शिलालेखों, दानपत्रों आदिके भी ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं, जिनसे विभिन्न राज्याधिकारियोंका पता चलता है। उनके कर्त्तव्योंपर प्रकाश डालते हुए ये विभिन्न प्रशासकीय इकाइयोंका भी नामोल्लेख करते हैं। कुमारपालका साम्राज्य बहुत लम्बा चौड़ा था, इसलिए शासनकी सुविधाके विचारसे इसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंमें विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सरकारमें विभिन्न अधिकारी और विभाग निम्नलिखित थे —

१ महामात्य[1]
२ सचिव
३ मन्त्री
४ महाप्रधान[2]
५ महामंडलेश्वर[3]

---

[1] आर्कि० सर्वे इंडिया वे० सं० : १९०७-८, पृ० ५४-५५।
[2] इंडि० ऐंटी० : खंड १३, पृ० ८३।
[3] इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १५९, इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २१९, इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ८३, वही, खंड १०, पृ० १६०।

६ दडाधिपति
७ दडनायक[1]
८ देश रक्षक[2]
९ कर्णपुरुष
१० अधिष्ठानक[3]
११ शौल्यपाल
१२ भट्टपुत्र
१३ विषयिक[4]
१४ पट्टाकिल[5]
१५ सान्धिविग्रहक[6]
१६ दूतक[7]
१७ महाक्षपटलिक[8]
१८ राणक[9]
१९ ठाकुर[10]

---

[1]आर्कि सर्वे इडिया वे० स० १९०७ ८, ४४-४५, ५१-५२, ५४-५५।
[2]आकलाजी आव गुजरात अध्याय ९, पृ० २०३ तथा मोहराज पराजय अक ४, पृ० ७८।
[3]वही।
[4]वही।
[5]वही तथा इपि० इडि० खड २३, पृ० २७४।
[6]इपि० इडि० खड ११, पृ० ४४।
[7]इडि० ऐंटी० खड ४१, पृ० २०२-३।
[8]आकलाजी आव गुजरात, अध्याय ९, पृ० २०३।
[9]इपि० इडि० खड ११, पृ० ४७ ४८।
[10]वही।

राजवंशके ही किसी व्यक्तिको उक्त पदपर नियुक्त किया जाता था। वह मडलका सर्वोच्च प्रशासक तथा कार्याध्यक्ष होता था। विक्रम सवत् १२०२ (सन् ११४५ ईस्वी)के दोहाद प्रस्तर लेखमे भी "महामडलेश्वर"-का उल्लेख आया है। इसमे कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिंह महान पदको प्राप्त कर सके। अनेक विद्वानोका मत है कि यद्यपि इसमे शासन करनेवाले राजाका स्पष्ट नाम नही दिया गया है, तथापि यह कुमारपालके शासनकालका ही है।[1]

अधिष्ठानक—राज्यके महत्त्वपूर्ण न्याय विभागका विचारक अधिष्ठानक कहा जाता था।

सान्धिविग्रहिक—राजनीतिक दूत थे, जिनका सम्बन्ध शान्ति और युद्धसे था। इनका महत्वपूर्ण कर्त्तव्य था—केन्द्रीय सरकारको पर-राष्ट्रीय परिस्थितियोसे अवगत रखना। कुमारपालके शासनकालके किरादू शिलालेखमें सान्धिविग्रहिककी भी चर्चा हुई है। इसमे कहा गया है कि यह आदेश राजा कुमारपालके हस्ताक्षरसे प्रसारित हुआ तथा सान्धिविग्रहिक खेलादित्यने इसे लिखा था।[2]

विषयिक—मडलसे छोटे किन्तु ग्रामोके समूहका सर्वोच्च शासक विषयिक होता था। यह सबसे बडा प्रादेशिक क्षेत्र होता था, जिसे आधुनिक कालमे प्रान्त कहा जा सकता है। प्रत्येक विषय अथवा पाठकके प्रशासनके लिए यह अधिकारी नियुक्त होता था तथा अपने उच्च अधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार हम देखते है कि वर्धिपाठकके महामडलेश्वर वयजलदेवके शासनकालमे महामडलेश्वर राणा सामन्तसिंह अमात्य नागडके अधीन थे।[3] वमनस्थलीके महत्तर शोयन-

---

[1] ध्रुव : इंडि० ऐंटी० : खंड १०, पृ० १६०।

[2] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४, सूची संख्या २८७।

[3] इडि० ऐंटी० : खंड ९, पृ० १५१।

देवके तत्कालीन उच्च अधिकारी सौराष्ट्रके महामडलेश्वर सोमराज थे।[1]

पट्टाकिल—यह गावकी मालगुजारी एकत्र करनेवाला अधिकारी था।[2] आधुनिक पाटिल अथवा पटेल इसी शब्दसे बने हैं। कोकणके शीलहारोंके शिलालेखोंमें पट्टालिक शब्द व्यवहृत हुआ है।[3] पट्टाकिल ग्रामका उत्तरदायी अधिकारी था और उसका मुख्य कर्त्तव्य था मालगुजारी एकत्र कराना। प्रान्तीय सरकारके माध्यमसे उसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारसे भी था।

दूतक तथा महाक्षपटलिक—ये क्रमश. राजदूत तथा अभिलेखपाल थे। महाक्षपटलिक राज्यका बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। राज्यके समस्त अभिलेख उसीके अधीन रहते थे। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे हमें विदित होता है कि यह विभाग राज्यमें बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा था और इसके अन्तर्गत विशद पद्धति प्रचलित थी।[4]

राणक तथा ठाकुर—ये भी राज्यके दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। यह दो उपाधियां ऐसी थी, जो राष्ट्र अथवा राज्यके प्रति की गयी सेवाओंके विचारसे किसी व्यक्तिको प्रदान की जाती थी। "राणक"का केवल गुजरातमें ही प्रयोग नहीं पाया जाता अपितु अन्य स्थानोंमें भी। सम्भवत यह राजपूत उपाधि "राणा"का पूर्व रूप है।[5] ठाकुर भी राज्यके उच्च अधिकारी थे। कुमारपालके शासनकालमें ठाकुर खेलादित्य सान्धिविग्रहिकका कार्य सम्पन्न कर रहे थे।[6] कुमारपालके शिलालेखोंम

---

[1] वही, खंड १८, पृ० १३३।

[2] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इंपि० इंडि० : खंड २३, पृ० २७४।

[4] अर्थशास्त्र : अध्याय २, श्लोक ७।

[5] आर्किलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[6] "... सान्धिविग्रहिक ठा० खेलादित्येन लि..." किरादू शिलालेख।

दूतक,[1] राणा,[2] तथा ठाकुर[3] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों, दानलेखों, अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-संचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खंडोंमें विभाजित था, जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खंड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। यही लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और वही गुर्जर मंडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमंडलका प्रयोग हुआ हो। मंडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अंकित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९९ तथा १२२९के मध्यमें की थी।

---

[1] "दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्ष्यगुण" इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २०२ ३।

[2] " मोरिपद्यके राणा लखमण राजे " इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] "स्वति सोनाणाग्रामे ठा० अणछीहुस्य " . वही।

उसने आभीरोके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोको दडनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्त्व विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम सवत् १२००के वाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योसे सदा लडते रहते थे। अन्तमे चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंहने चौहानोको पराजित किया। वालीमें जयसिंहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुल्यका नयाप्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजलदेव द्वारा प्रशासित था। ऐसा प्रतीत होता है कि चौहानोने अपने अधिपति चौलुक्योको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडसे उन्हे हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नये सेनापति वयजलदेवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामडलेश्वरोकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थे, जिनकी नियुक्ति वे स्वय करते थे, किन्तु उनकी स्वीकृति केन्द्रसे लेनी पडती थी। महामडलेश्वरोको पुरस्कृत और दडित करनेका भी अधिकार था। इसकी पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसमे कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शक्तिसिंहने उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मडलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई विषय तथा पाठक थे। विषय ग्रामोका समूह था तो पाठक बडा गाव था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनोमे कोई विशेष भिन्नता नही

---

[1] "श्री गूमदेवोवली यत्खड्गाहत भीति कंप तरलैराभीर वीरैः" पूना ओरियंटलिस्ट खड : १, उपखंड २, पृ० ३९।

[2] ". . .तस्मिन काले प्रवर्त्तमाने श्रीनड्डूले दंड श्रीवयजलदेव प्रभृति पचकुलप्रतिपत्तौ . ."—आर्कि० सर्वे० इडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा "महानड्डले भुज्यमान महाप्रवण दंडनायक श्रीवैजाक."—भटूंड शिलालेख।

दूतक,[1] राणा,[2] तथा ठाकुर[3] नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों, दानलेखों, अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-सचालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खंडोंमें विभाजित था, जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खंड था, जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। वही लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और वही गुर्जर मंडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमंडलका प्रयोग हुआ हो। मंडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अंकित है कि प्रभासपाटनके गूमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९६ तथा १२२६के मध्यमें की थी।

---

[1] "दूतकोऽत्र देवकरणो महं साक्ष्यगुणः" इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २०२-३।

[2] " वोरिपद्यके राणा लखमण राजे " इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] "स्वंति सोनाणाग्रामे ठा० अणसीहुस्य " : वही।

उसने आभीरोंके विद्रोहका दमन किया जिसका प्रभाव स्थानीय था।[1] कतिपय नवविजित प्रान्तोंको दडनायकके अधीन रखा जाता था। इसका कारण अवश्य ही सैनिक तथा स्थानके महत्त्व विशेषसे सम्बन्धित रहता था। विक्रम सवत् १२००के वाली शिलालेखसे विदित होता है कि चौहान चौलुक्योंसे सदा लडते रहते थ। अन्तम चौलुक्यराज सिद्धराज जयसिंहन चौहानोंको पराजित किया। वालीमें जयसिंहका अधीनस्थ अश्व राजा था। किन्तु इसी शिलालेखसे ज्ञात होता है कि नाडुलयका नयाप्रान्त कुमारपालके सेनापति वयजलदेव द्वारा प्रशासित था। एसा प्रतीत होता है कि चौहानान अपन अधिपति चौलुक्योंको अप्रसन्न कर दिया था और इसीके परिणामस्वरूप गोडवाडस उन्ह हटा दिया गया तथा उस प्रदेशके प्रशासनके लिए नय सेनापति वयजलदेवकी नियुक्ति की गयी।[2]

महामडलेश्वरोंकी सहायता प्रान्तके अन्य अधिकारी करते थ, जिनकी नियुक्ति वे स्वय करत थ, किन्तु उनकी स्वीकृति केन्द्रसे लेनी पडती थी। महामडलेश्वरोंको पुरस्कृत और दडित करनका भी अधिकार था। इसकी पुष्टि दोहाद शिलालेखसे होती है जिसम कहा गया है कि महामडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शकरसिंहन उच्चपद प्राप्त किया।

विषय तथा पाठक—मडलके बाद उससे छोटी प्रादेशिक इकाई विषय तथा पाठक थ। विषय ग्रामोंका समूह था तो पाठक बडा गाव था। किन्तु एसा प्रतीत होता है कि इन दोनोंमें कोई विशेष भिन्नता नहीं

---

[1] "श्री गूमदेवोवली यत्खड्गाहत भीति कप तरलैराभीर वीरै" पूना ओरियटलिस्ट खड १, उपखड २, पृ० ३९।

[2] " तस्मिन काले प्रवर्त्तमाने श्रीनड्डूले दड श्रीवयजलदेव प्रभृति पचकुलप्रतिपत्तौ "—आर्कि० सर्वे० इडिया वे० स० १९०७-८, पृ० ५४-५५ तथा "महानड्डले भुज्यमान महाप्रवण दडनायक श्रीवैजाक"—भटूड शिलालेख।

मानी जाती थी। एक स्थानमें गाम्भूत विषयके नामसे सम्बोधित किया गया है तो दूसरे स्थानमें उसे पाठक कहा गया है।[1] प्रत्येक विषय और पाठक एक पृथक् अधिकारीके अधीन था। यह अधिकारी अपने उच्च पदाधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। कुमारपालके शिलालेखोंमें इन प्रादेशिक इकाइयोंका नामोल्लेख हुआ है। विक्रम संवत् १२०९के पाली शिलालेखमें पल्लिका विषय (श्रीमत्पल्लिका विषये)की चर्चा आयी है जहां चामुण्डराज शासन कर रहे थे। यही प्राचीन पल्लिका नगर आधुनिक पाली है। इसीप्रकार ग्राम भी इस समय शासकीय इकाई था। वेल्हणके नडलाई शिलालेखसे विदित होता है कि विक्रम संवत् १०२३में चौलुक्यराज कुमारपालके शासनकालमें जब वेल्हण नाडुल्यके तथा राणा लक्ष्मण चोदिपद्यकके शासक थे, उस समय सोनाणाग्रामके ठाकुर अर्णसिंह थे।[2] आहार, द्रंगा, मडली तथा स्थली आदि शासकीय इकाइयोंका चौलुक्य शासनमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभी अभिलेखोंमें इनकी इतनी अधिक चर्चा आयी है कि चौलुक्योंके समय इनका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके दो कारण सम्भव हैं। एक तो काठियावाडके अनेकानेक स्थानोंका अभी तक उत्खनन नहीं हुआ है और दूसरा यह कि सम्भवतः ये मैत्रिकोंके बाद विलीन[1] हो गयी हों।

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९६-८ तथा (२) बी० ओ० जे० बी०, ३००। प्रथममें गाम्भूतको "पाठक" कहा गया और दूसरेमें "विषय"।

[2] श्रीकुवरपालदेव विजय राज्ये श्रीनाडुल्य पुरात श्रीकेल्हण. राजे चोरिपद्यके राणा लखमण राजे स्वतिसोनणाग्रामे ठा अणसी हुस्य ." इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४७-४८।

[1] आर्केलाजी आव गुजरात पृ० २०२।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारका सम्बन्ध

चौलुक्योंकी सरकारका केन्द्रीयकरण अत्यन्त सुदृढ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकारका शासनतन्त्र पृथक्-पृथक था तथापि प्रान्त, केन्द्रीय सरकारकी नीतिका ही अनुगमन करता था। उच्च प्रान्तीय अधिकारी विशेषत दडपाल तो केन्द्र द्वारा ही नियुक्त होता था। गाला शिलालेखमे यह बात स्पष्ट रूपमे अकित है कि राजधानी अनहिलपाटनमें महामात्य महादेव समस्त राजकार्यका सचालन करते थे। इसीके साथ उन सभी उच्चाधिकारियोंके नामोंका भी उल्लेख हुआ है, जिनकी नियुक्ति पहले महामात्य अम्बप्रसाद तथा चहडदेवने अपने शासनकालमें काठियावाडके उस प्रदेशमे की थी जहा गाला स्थित है।[1] इससे स्पष्ट है कि प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकारके प्रति उत्तरदायी थी।

कभी-कभी राजा स्वय आज्ञा प्रचारित करता था और उसको जनतासे कार्यान्वित कराना अधिकारियोका कर्तव्य होता था। विक्रम सवत् १२०६म कुमारपालने कतिपय विशेष दिनोंको पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवाले राजकीय परिवारके सदस्योंके लिए भी अर्थदडकी व्यवस्था थी और अन्य साधारण लोगोंके लिए मृत्युदड नियत था। यह आज्ञा कुमारपालके हस्ताक्षरसे स्वीकृत और प्रचारित की गयी थी।[2]

---

[1] "महामात्य श्रीमहादेव : (वे) इत्येतस्मिन काले प्रवर्तमाने . कुमारपाल पर? तडाग कर्म्मस्थाने महामात्य श्रीअम्बप्रसाद प्रतिबद्ध मेह० सजिग। महाक्ष० श्रीदेऊपप्रतिबध(द्ध) पारे० धवल। महाक्ष० श्री-कल्लनप्रसाद प्रतिबध(द्ध) द्वि पारे० बाघूय। महामात्य श्रीचाहडदेव प्रतिबध(द्ध) त्रि ? प्रता .. " पूना ओरियटलिस्ट : खड १, उपखड २, पृ० ४०।

[2] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४।

अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारकी एक विशेष स्थिति ध्यान देने योग्य है। साधारणत होता यह था कि विजयी राजाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लेनपर विजित प्रदेश उसके मूल शासकको पुन सौंप दिया जाता था। जब तक अधीनस्थ राजा विश्वस्त बना रहता था, यह स्थिति रहती थी। इससे विपरीत स्थिति होनपर राज्य जब्त कर लिया जाता था। कुमारपालके किराडू शिलालेखमें उस घटनाका उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि विक्रम सवत् ११९८में सिद्धराज जयसिंहकी अनुकम्पासे सोमेश्वरने सिन्धुराजपुर वापस प्राप्त कर लिया था।[1] विक्रम सवत् १२०५में कुमारपालकी कृपादृष्टिसे उसने अपने राज्यको और सुदृढ बनाया। इन कथनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि दन्दुकने भीम प्रथमसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे किन्तु प्रभुसत्ता और अधीनस्थ-में पुन विग्रहकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि किराडू प्रदेश गुर्जरराज द्वारा हस्तगत कर लिये गये। बादमें उदयराज तथा उसके पुत्र सोमेश्वरने सिद्धराजको युद्धमें सहायता प्रदान कर प्रसन्न कर लिया था। फलस्वरूप उसका राज्य लौटा दिया गया था। सोमेश्वर-ने किरातपुरमें दीर्घकाल तक शासन किया। यही किरातपुर आधुनिक किराडू है। विक्रम सवत् १२०९के किराडू शिलालेखसे ज्ञात होता है कि किरातकूप चौहान अलहणदेवके अधिकारमें कुमारपालकी कृपासे था, किन्तु शिलालेखमें इस बातका भी उल्लेख है कि यह परमार वशसे अधिकारमें आया था।[2]

स्थानीय स्वायत्त शासन

भारतमें अनेकानेक धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्तियां हुई, किन्तु

---

[1] इडि० ऐंटी० खड ६१, पृ० १३५, सूची सख्या ३१२।

[2] इपि० इडि० खड ११, पृ० ४३।

इनके होते हुए भी ग्रामोंकी स्वायत्तशासन करनेवाली सत्तापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भारतमें अंगरेजोंके आगमनके पूर्व तक ग्राम-पंचायतों और ग्राम-संघोंका अस्तित्व था। चौलुक्योंके शासनकालमें भी "देश" ग्रामोंमें विभाजित था। ग्रामीण, कौटुम्बिक कहलाते थे और ग्रामका मुखिया पट्टाकिल (पटेल) कहलाता था।[1] केन्द्रीय सरकारके संघटनमें हम देख चुके हैं कि पट्टाकिल मालगुजारी एकत्र करनेवाला राज्याधिकारी था।[2] कोंकणके शीलहारोंके शिलालेखोंमें पट्टाकिलका, जो बादमें पटेल हो गया, उल्लेख हुआ है।[3] यद्यपि वह ग्रामका मुखिया था और उसका मुख्य कार्य मालगुजारी एकत्र करना था तथापि विभिन्न कार्योंके सम्पादनमें उसे ग्रामसभासे अवश्य सहायता मिलती होगी। ग्रामशासन यद्यपि स्वतन्त्र तथा स्वायत्त था तथापि कुछ न कुछ अंशोंमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे वह केन्द्रके प्रति भी उत्तरदायी था।

नगरोंमें बड़े बड़े व्यवसायी कुबेर, महत्तर वणिज, महाजन तथा वणिकोंकी श्रेणियां और संघ थे। कुबेर नगरश्रेष्ठी कहा जाता था। सरकारपर इसका अत्यधिक प्रभाव था। राजधानी अणहिलवाडाके वणिक बहुत सम्पन्न थे। वहां अनेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोंपर बड़ी-बड़ी पताकाएं और घंटे लटकते रहते थे। उनका वैभव, राजकीय वैभवके समान प्रतीत होता था। कुमारपाल नगरश्रेष्ठीकी चर्चा बहुत आदरपूर्वक करता है,[4] और उसकी मृत्युका समाचार सुनकर

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०३।

[3] इंपि० इंडि० : खंड २३, पृ० २७४।

[4] निज विभवनिर्जितामरपुरीकमेते वयं सहानेन
यन्नगरमधिवसामः कथं न जानीम तं(स्तं) नाम।
मोहराजपराजय अंक ३, पृ० ५१।

शोकग्रस्त होता है।[1] चौलुक्य राजाओंपर उद्योगपतिवर्गका कैसा प्रभाव था, इससे स्पष्ट हो जाता है। राजधानी अणहिल्वाडमें वणिज श्रेणी अथवा संघ स्वायत्त शासनसे परिचालित होते थे और नगरपालिकाके शासनमें भी सहयोग प्रदान करते थे, इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिए अनेक कारण हैं।

आर्थिक व्यवस्था पद्धति

आर्थिक व्यवस्थाका विभाग राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग था। यह विदित था कि अर्थसे ही सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है। यही सभी धर्मोंका भी साधन है।[2] रामायणमें लंकाकाण्डमें लक्ष्मणने रामसे जो कथन व्यक्त किया है, उससे धर्म तथा अर्थका महत्त्व सम्यक् रूपेण स्पष्ट हो जाता है।[3] वास्तवमें राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिके लिए अर्थ अनिवार्य है। वैदिककालसे ही करका संग्रह राजाके कर्तव्यके अन्तर्गत समझा जाता रहा है।[4] यह परम्परा समयानुसार और भी विकसित हुई होगी और इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं कि चौलुक्योंने भी इस व्यवस्था और विभागकी ओर समुचित ध्यान अवश्य दिया था।

---

[1] कष्ट भो। कष्टम् मन्ये च तद्गृहादेवायमतीव करुणोरोदन ध्वनिरुद्गमत्। वही।

[2] वनपर्व ३३ ४८।

[3] अर्थेभ्योहि विवृद्धेभ्य संवृत्तेभ्यस्ततस्तत
क्रिया सर्वा प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगा
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्प तेजस
व्युच्छिद्यन्ते क्रिया सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा।
वाल्मीकि रामायण।

[4] "इय ते राट् कृषि त्वा क्षेमत्वा कोषत्वा"। शतपथ ब्राह्मण ५ २ २५।

भूमि ही आयका सबसे महत्त्वपूण साधन थी। हिन्दू समाजके इतिहासमें भूमि का प्रश्न सभीके मौलिक हित और स्वार्थका प्रश्न था। चौलुक्योंके समकालीन लेखको तथा ग्रन्थकारोंने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है और सम्भवत इसीलिए कि यह तो समस्त ससारको विदित ही था। प्रसगासे हमें ज्ञात होता है कि उपजमें राजाका भाग होता था। कभी राजा अपना यह भाग सीधे किसानसे या अपने कर्मचारी द्वारा जो 'मन्त्री' कहलाते थे, लिया करता था। कभी यह भी होता था कि किसानसे ग्रामका मुखिया उनका हिस्सा ले लेता था और राजा ग्रामके इन शासको द्वारा अपना अश प्राप्त करता था।

अवर्षणके फलस्वरूप राजाका अश किसान न दे पाता था और उसपर राजाका हिस्सा देनेके लिए दबाव डाला जाता था। किसान हठपूर्वक सिद्धान्त की दुहाई देता और असहाय बालकके समान अपना दुख प्रकट करता। दोनों पक्षोंमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं और एक न्यायालयमें अन्तिम समझौता होता। यह न्यायालय ठीक वैसा ही होता था, जैसा न्यायालय आज भी स्थानीय नियमोंके अनुसार देशके विभिन्न भागोंमें ऐसे प्रश्नोंका निर्णय किया करता है।[1] इसप्रकार आयका बहुत बडा भाग भूमिसे प्राप्त होता था। इसमें भूमिकी उपजका एक निश्चित अश द्रव्य या अन्न रूपमें देनेका सिद्धान्त नियत रहता था। अन्नरूपमें ही उक्त भाग देना अधिक अच्छा माना जाता था।[2] राजाको उपजका छठा हिस्सा करके रूपमें दिया जाता था। इसीलिए राजाको 'षड्भागभृतराजा', 'षड्भागभाक' और 'षड्स्ववृत्ति' कहा जाता था। इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि राजाका हिस्सा भूमिकी उपजका षष्ठ भाग नियत था।

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३१ २३२।

[2] हिन्दू एडमिनिस्टेटिव इस्टीट्यूशन अध्याय ४, पृ० १६३।

भूमि का विशाल भाग राज्यके अधिकारमें था। यह इस बातमें भी स्पष्ट है कि राजाओंने बहुतसी भूमि दान दी थी। मुख्यत राजाओंने धार्मिक व्यक्तियों अथवा मन्दिरोंको उक्त भूमिखंडोंका दान दिया था। इस प्रकारके अनेक उदाहरण अभिलिखित हैं। उदाहरणार्थ सिद्धपुर तथा सिहोर ग्राम ब्राह्मणों और जैन आचार्योंको राजाकी ओरसे दान दिये गये थे। राजा द्वारा इन भूमिखंडोंके पृथक्करणको "ग्रास" कहा गया है। यह शब्द तत्कालीन धार्मिक दानलेखोंमें साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। राजपरिवारके लोगोंको भी भूमि या जागीरें मिला करती थी। ऐसे लोगोंमें देवपुली तथा बघेलके नाम उल्लेख्य हैं। दयालुताके सम्राट कुमारपालके सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि उन्होंने संकटके समय अमूल्य सहायता प्रदान करनेवाले अलिंग कुम्हारको सात सौ गांव लिखकर दान कर दिये थे।[1]

भूमिसे आयके अतिरिक्त अणहिल्पाटकके राजाको व्यापारसे भी पर्याप्त मोटी रकमकी आय होती थी। राज्यमें ले जाये आनेवाले सभी मालोंपर निवासी कर तथा "दान" लिया जाता था।[2] पोत, समुद्र व्यवसायी तथा समुद्री लुटेरोंका भी उल्लेख आया है। व्यवसायियों तथा उद्योगपतियोंको वणिज, महत्तर वणिज और महाजन कहा जाता था।[3] यहाके उद्योगपति अत्यधिक सम्पन्न थे। जिस व्यवसायीके पास एक करोड़की सम्पत्ति एकत्र हो जाती थी उसे कोटयाधीशकी पताका फहरानेका गौरव प्रदान किया जाता था। योगराजके शासनकालमें,

[1] तदनु चौलुक्यराजा कृतज्ञ चक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्तशती ग्रामिता विचित्रा चित्रकूट पट्टिका ददे। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[3] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५०-७०।

एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़े और व्यापारके सामानोंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहपर बहकर आ लगा था। सिद्धराजके राज्य-कालमें समुद्रसे व्यापार करनेवाले सांयात्रिक अपना स्वर्ण, समुद्री डाकुओंके भयसे गांठोंमें छिपाकर ले जाते थे। अणहिलपाठकके राजाके अधिकारमें उत्तरी कोंकण तथा समस्त गुजरातके समुद्री स्थान भी थे। स्तम्भतीर्थ तथा भृगुपुर क्रमशः सूरत तथा गुडावाके बन्दरगाह हैं। सूर्यपुर सम्भवतः सूरत है तथा गुंडावा गुणदेवी है। देव्य, द्वारका; देवपाटन, मोवा, गोपनाथ आदि बन्दरगाह सौराष्ट्रके तटपर स्थित हैं।[1] स्पष्टतः राजाको भारी पैमानेपर होनेवाले इस उद्योगसे, राजकीय कोषमें पर्याप्त अच्छी धनराशि मिल जाती थी। अवश्य ही उद्योगके लिए उपयुक्त इन प्रसिद्ध बन्दरगाहोंसे भी राजकोशमें यथेष्ट परिमाणमें धन प्राप्त होता था।

राजकीय आयका इस समय एक और भी महत्त्वपूर्ण साधन था। वह यह था कि उत्तराधिकारी न छोड़नेवाले नि.सन्तान लोगोंकी मृत्युके बाद उनकी समस्त सम्पत्ति राज्य हस्तगत कर लेता था। ऐसे लोगोंके घरपर अधिकार कर चुकने तथा एक पंचकुलकी (समिति) नियुक्तिके पश्चात् राज्याधिकारी सभी वस्तुएं जब उठा ले जाते थे, तब कहीं शव अन्तिम क्रियाके निमित्त ले जाया जा सकता था। इसप्रकारकी घटनाका पता, कुमारपालके समसामयिक यशपालके नाटक मोहराजपराजयसे लगता है। इसमें कहा गया है कि राजाके पास चार उद्योगपति इस आशय-का समाचार लेकर पहुंचे कि राजधानीका कुबेर नामका एक लक्षाधिपति समुद्र यात्रामें दिवंगत हो गया है, इसलिए राज्याधिकारियोंको भेजकर उसकी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले।[2]

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

[2] वणिज :—देव ! कुबेरस्वामी निष्पुत्र इति तल्लक्ष्मीनरेन्द्र गृहानुपतिष्टते। तदादिश्यतामध्यक्षः कोऽपिपेन तत्परिगृह्यते गृह—

-मद्य तथा द्यूत भी राज्यकी आयके साधन थे। राजा तथा प्रजा दोनोंमें द्यूतका अत्यधिक प्रचार था। यह राज्यके नियन्त्रणमें होता था। यशपालने लिखा है कि द्यूत तथा मद्यसे राजकोषमें विशाल धनराशि आती थी।[१] वेश्यावृत्ति भी राज्यके निरीक्षणमें होती थी और यह भी राज्यकी आयका साधन थी।[२] खानें, चरागाह तथा जंगल राज्यकी आयके अतिरिक्त साधन थे, जिनसे अच्छी आमदनी होती थी। राजकोषके विचारसे खानें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आयका साधन थीं।[३] वनोंसे बहुमूल्य इमारती लकडियां प्राप्त होती थीं। औषधिके लिए वनस्पति भी यहींसे मिलती थी और हाथी जो युद्धके महत्त्वपूर्ण साधन थे, वनोंसे ही प्राप्त होते थे। आर्थिक दंड तथा न्यायालय शुल्क भी आयके साधन थे। असाधारण दिनोंमें सम्पन्न उद्योगपतियोंसे बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंटादिकी पद्धति भी ग्रहण की जाती थी। फोर्बसने लिखा है तीर्थयात्रियोंसे "कूट" नामक कर भी लिया जाता था।[४] इन विभिन्न साधनोंसे राजकोषमें विशाल धनराशि एकत्र हो जाती थी, इसमें सन्देह नहीं।

न्याय विभाग

देशके शासनमें न्याय विभाग अत्यन्त आवश्यक विभाग था। दिनमें राजा मुख्यमें सुभा भरता था। न्यायालयके द्वारपर सशस्त्र रक्षक रहते

सर्वस्वे करोति महाजनस्त शौर्यदेहकानि'।—मोहराज पराजय, अंक ३, पृ० ५२।

[१] " ननुवयं राजकुले द्रव्यं पूरयामः। देव। वयं द्यूतं आगलको मद्य शौखरी राजकुले प्रभूत द्रव्य पूरयामः। वही : चतुर्थ अंक : पृ० १०९-११०।

[२] "वेश्याव्यसन तु वराकमुपेक्षणीयम्"। : वही।

[३] "आकरो प्रभव कोषः" : अर्थशास्त्र।

[४] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३५।

थे जो अधिकारी व्यक्तिको ही प्रवेश करने देते और अवाछितोको द्वारपर ही रोक लेते थे। राजाके पार्श्वमें युवराज रहता और चतुर्दिक महामडलेश्वर तथा सामन्त। मन्त्रीराज या प्रधान भी अपने विभागके अधिकारियों सहित उपस्थित रहा करते थे। ये विचारपूर्वक मितव्ययिताका परामर्श देते रहते थे और प्रस्तुत रहते थे, पूर्वमे किये गये लिखित निर्णयोको लेकर, जिससे पहले दी हुई आज्ञा अथवा आदेशकी अमान्यता न हो।[1] रासमालामें फोर्बस्ने राजाके न्याय सम्बन्धी कार्योका जो उक्त उल्लेख किया है, उससे स्पष्ट है कि राजा न्याय सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य मन्त्रियोकी सहायतासे करता था। कुमारपाल प्रतिबोधमे भी राजाके इस महत्वपूर्ण कार्यकी चर्चा है। इसमे कहा गया है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमे (लगभग ३ बजे) राजा अपने दरबारमे सिंहासनपर आसीन हो जाता था। इसी समय वह शासन कार्य करता और जनतासे पुनर्वाद सुनकर उनपर अपना निर्णय सुनाता।[2]

कुमारपालके जीवनचरित्र लिखनेवाले विद्वानोका कथन है कि राजधानी अणहिलपुरमे राजा स्वय न्याय करता था। किन्तु इस राजकीय सर्वोच्च न्यायालयके अतिरिक्त साधारण अभियोगो तथा मामलोपर विचार करनेके लिए अन्य साधारण न्यायालय भी अवश्य रहे होगे। यह हम पहले ही देख चुके है कि अधिष्ठानक, विचारपति था और उसका कर्त्तव्य न्याय विभागसे सम्बद्ध था। ये न्यायालय सम्भवतः दो प्रकारके

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] तो राया वुहवग्गं विसज्जिअं दिवस चरम जाममि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि सिंहासने ठाइ
सामंत मति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण वंसणं देइ
विन्नत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तहा पडीयारं।
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

थे। एक दीवानी और दूसरा सैनिक। अपराधियोंका पता लगानेके लिए गुप्तचरोंकी नियुक्ति होती थी। मोहराजपराजय नाटकमें तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितिका सच्चा चित्रांकन हुआ है। इसमें दिखाया गया है कि मन्त्री पुडकेतुने जाच पडताल तथा सूचना प्राप्तिके निमित्त गुप्तचरकी नियुक्ति की थी और राजा उससे द्युतकुमारको पकडनेकी आज्ञा देता है।[1]

नियमो तथा शास्त्रोंसे न्याय किया जाता था। फोर्बस्ने लिखा है कि मन्त्रीराज अथवा प्रधान अपने कर्मचारियोंके साथ, पूर्वकालमें हुए लिखित निर्णयोंको लेकर सदा प्रस्तुत रहते थे। इस बातकी ओर भी सदा ध्यान रखा जाता था कि पूर्व निर्णयोंकी अवहेलना न होने पावे। इससे स्पष्ट है कि विवादोंका निर्णय करनेके लिए लिखित आधिकारिक अधिनियम बने थे। तत्कालीन साहित्यमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंसे भी अपराधोंके दंडका स्वरूप समझा जा सकता है। कारागार, निर्वासन आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं।[2] मोहराजपराजय नाटकमें कुमारपाल संसारको शृंखलामें बद्ध करनेकी आज्ञा देता है। चौर्य कर्म करनेपर कठिन दंड दिया जाता था। गंभीर अपराधोंके लिए निष्कासनका दंड नियत था। उक्त नाटकमें धर्मकुंजर कुमारपालकी आज्ञा पाकर द्यूत और उसकी पत्नी असत्या कांडली, मद्य, जागलक, सूना तथा मारिको खोजने जाता है। ये सभी राजाके धर्म परिवर्तनकी चर्चा करते हुए अपने निष्कासनकी अफवाहका भी उल्लेख करते है। धर्मकुंजर इन सभीको पकड़कर राजाके सम्मुख उपस्थित करता है। सभी अपने अपने पक्ष समर्थनका तर्क उपस्थित करते हैं और क्षमा याचना करते हैं। राजा उनकी एक

---

[1] मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, पृ० ८३।

[2] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ८२ एन तत्वत्कारागार निगडितं कुरु।

नही सुनता है और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[1] मृत्युदड भी दिया जाता था। शिलालेख इस तथ्यको प्रमाणित करते है कि राजाज्ञा उल्लघन करनेपर मृत्युदड दिया जाता था। विक्रम सवत् १२०९के कुमारपालके किरादू शिलालेखमे कहा गया है कि शिवरात्रिके विशेष दिन जीवहिंसाके अपराधके लिए साधारण लोगोको मृत्युदड दिया जाता था और राजपरिवारके सदस्योको अर्थदड देना पडता था।[2] इन सभी साधनोसे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि चौलुक्य राजाओने न्याय विभागका व्यवस्थित सघटन किया था और उसीके द्वारा प्रजाके निमित्त न्याय कार्य सपादित किया जाता था।

जन निर्माण विभाग

जनसेवाका कार्य सरकार अपने जननिर्माण विभाग द्वारा कार्यान्वित कराती थी। राजा केवल कर ही नही वसूलता था अपितु प्रजाका हित चिन्तन भी उसके कर्त्तव्यका एक अग था। राज्यको जल तथा स्थल मार्गसे अच्छे यातायातकी व्यवस्था करनी पडती थी। तालाब और कुओका निर्माण मुख्यत दो विचारोसे होता था। एक तो यात्रियोकी सुख-सुविधाका ध्यान रखकर और दूसरे सिंचाईके विचारसे। मोढरा, सिहोर तथा अन्य स्थानोमे जल सचित कर रखे जानेकी व्यवस्था थी। मोढेराके निकट ही लोटेश्वरमें यूनानी क्रास मुद्राकी भाति चार छोटे कुडोके मध्य एक गोल कुआ बडा ही विचित्र है। जूजूवारा, मुजपुर, स्यलाम

[1] वही, पृ० ८३-११०।

[2] ... जा(चव्यतिक्रम्य जीवाना वध कारयति करोति वासव्याया कोपिपापिष्ठत रोजीव वध कुरुते तदा समचन्द्रमंदंडनीय नाहराशि कस्यंको द्रम्मोस्ति। स्वहस्तोय महाराज श्रीअल्हणदेवस्य : इपि० इडि० खड ११, पृ० ४४।

गोल आकारमें तालाब मिलते हैं। इन तालाबोंमें अनकी गोलाई सात सौ गज थी। इनके चतुर्दिक छोटे-छोटे मन्दिर बने रहते थ और इसमें कोई आश्चय नहीं कि इनकी सख्या लगभग एक हजार थी।[1] प्रायद्वीपके निकट गोमोमें अब तक एक आयताकार तालाब है जिसका ध्वसावशेष अब वर्गाकारकी तरह है। यह सिद्धराज जयसिंहका बनवाया हुआ कहा जाता है। इसका नाम 'सोनरिया तालाब' है। जयसिंहकी माता मीनलदेवीके सरक्षणकालमें दो प्रसिद्ध तालाब बने थे। इनमें एक धोलकामें 'मुलाब' है तथा दूसरा वीरक्षयमगावमें 'मानसूर' है। "मानसूर" तालाबकी रचना शखाकारमें हुई है। समरभूमिमें भारतीयोंके रणवाद्य शखके आकारमें ही इसका निर्माण हुआ है। इसम जल सचयकी भी वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें चारो ओरके प्रदेशका जल पहले गहरे अष्ट-कोणाकार तालाबम एकत्र होता था। यहाँ जलका मिश्रित पदार्थ जम जाता था। फिर पानी एक नाली द्वारा प्रवाहित होकर तालाबम जाता था।

देशके विभिन्न भागोमें इस कालके जितने कुए मिलते हैं, वे दो प्रकारके हैं। एक तो गोलाईके आकारम बने हैं और उनमें कई खड तक आवास योग्य स्थान बन हैं। दूसर प्रकारके कुए "बावली के रूपमें निर्मित हैं। ये बावलिया जिनका सस्कृत रूप 'वापिका' है, अत्यन्त भव्य बनी हुई हैं। कुए और तालाबोका निर्माण निमित्त प्यासे जीवोकी तृषा शान्त करना था। साथ ही पारलौकिक दृष्टि भी इसमें सम्मिलित थी। पशु-पक्षियो और चौरासी लाख जीवोंके लिए इनका निर्माण हुआ था।[2] ये कुए और तालाब प्राय उन्ही स्थलोमें मिलते हैं जहा जलकी कमी रहती थी। उदाहरणार्थ राणिक देवीन पट्टनवारा स्थानको एसा जलकी कमी-

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २४५।

[2] वही, पृ० २४७।

वाला क्षेत्र बताया है, जहां पशु-पक्षी जलके अभावमें मरते थे। यातायातके केन्द्रों, नगर द्वारो, चौराहोपर भी कुएं तथा वापिका निर्माण होता था। यह कोई असंगत बात नही कि आवश्यकता पडनेपर जलके इन संग्रह स्थलोंसे सिंचाईका भी कार्य होता होगा।

कुमारपालप्रतिबोधसे विदित होता है कि कुमारपालने असहायों तथा जैन-आराधकोंके लिए भोजन वस्त्र प्रदान करनेके लिए सत्रागारकी स्थापना की थी। इसीके निकट उसने धार्मिक व्यक्तियोकी साधनाके लिए एक पोषधशालाका भी निर्माण कराया था। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था नेमिनागके पुत्र सेठ अभयकुमार द्वारा होती थी।[1] इन संस्थाओंके व्यवस्थापनके निमित्त ऐसे योग्य व्यक्तिके निर्वाचन तथा नियुक्तिके कारण कवि सिद्धपालने कुमारपालकी प्रशंसा की थी।[2] इन प्रसंगों और उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें निर्धन, असहायोंके लिए जनहित सम्पादन करनेवाला विभाग अवश्य ही विद्यमान रहा होगा। राज्य

---

[1] अह करावइ राया कण कोट्ठागार धय धरोपेयं
सत्तागारं गरुयाइ भूसियं भोयण सहाए।
तस्सासने रन्ना कारविया वियइ तुंग वरसाला
जिण धम्म हत्थि साला पोसह साला अइ विसाला
तत्थ सिरिमाल कुल नह निसि नाहो नेमिणाग
अंगरुहो अभयकुमारो सेट्ठीकओ-अहिट्ठायगो रन्ना।
कुमारपालप्रतिबोध : अध्याय १३, पृ० २४७।

[2] क्षिप्त्वा तोय निधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो,
रेवाऽऽवृत्य सुवर्णमात्मनि दृढं बद्धवा सुवर्णाचलः
क्षामध्ये च घनं निधाय धनदो विभ्यत्परेभ्यः स्थितः
किं स्यान्नैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत्।
वही।

द्वारा निर्मित तालाब और कुएं मानवताकी दृष्टिसे साथ ही सिंचाईके निमित्त भी बनवाये जाते थे। सत्रागारोंकी स्थापनासे प्रकट होता है कि राज्यमें लोककल्याणकारी समाजवादी प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। बाढ़, अग्नि, महामारी आदिके प्रकोपोंका सामना करनेके लिए राजकीय *व्यवस्था निश्चित रूपसे रही होगी, इसमें सन्देह नहीं।*

सेना विभाग

सेना विभाग द्वारा ही राजा आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करता था। सैनिक विभागकी समुचित व्यवस्थाका महत्त्व उस समय बहुत अधिक हो गया था जब मुसलिम आक्रमणका संकट उत्पन्न हो गया था। सेना प्राचीनकालकी भांति चतुरंगिणी थी। इस बातके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालके शासनकालमें सैनिक संघटन पूर्णरूपेण व्यवस्थित था। उस समय पैदल, घुड़सवार, हाथियों तथा रथ सेनाके विद्यमान होनेके प्रमाण मिलते हैं।[1] राजप्रासादके निकट चतुर्दिक विशाल भवनोंमें शस्त्रागार था, वहीं हस्तिसेना रहती थी। इन्हीं भवनोंमें अश्वों तथा रथोंके रहने तथा रखनेका भी प्रबन्ध था।[2] सेनामें हाथीका विशेष महत्त्व था। कुमारपालने जिन सैनिक अभियानों

---

[1] श्रीमान् कुमारपालोऽपि ज्ञात्वेति प्रणिधिव्रजैः। अक्षौहिणीं निजां सामन्तानथ सम पूजयत्। गजानां प्रतिमानानि शृङ्खलान् मुकुटास्तथा। अश्वानां कविका वल्गा दाम पल्ययनानि च रथानां किंकणीजालं चक्राणि युगशम्यिका। योधानां हस्तिकाः बीरवलयानि च चन्द्रकान्। सुवर्णरत्नमाणिक्य सूचीमुखमयान्यपि। चतुरंगेऽपि सैन्येऽसौ भूषणानि ददौ मुदा।

प्रभावकचरित, अध्याय २२ पृ० २०१।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३९।

का नेतृत्व स्वयं किया था तथा जिनका नेतृत्व उसके आदेशपर उसके सेनापतियोंने किया था, दोनोंमें हाथीका वर्णन विशेष विवरण सहित प्राप्त होता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि युद्धमें सफलता या विफलता अत्यधिक अंशोंमें इन्हीं हाथियोंपर निर्भर करती थी।[1] गुजरातके सभी किलोंमें राजाकी सेना रहती थी। सीमान्त प्रदेशके कुछ किलोंमें सामरिक महत्त्वके कारण सेना रखी जाती थी। इस प्रकारके सैनिक किले दुबोई तथा भृगुकच्छमें स्थित थे। सेनामें मुख्यतः क्षत्रिय ही रहते थे। किन्तु चौलुक्योंके शासनकालमें एक विशेष एवं विचित्र स्थिति दृष्टिगत होती है। वह यह कि इस समय सेनामें वणिक भी उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। उदयन तथा उसके पुत्र सेनापतिके पदपर थे। सैनिक विभागमें क्रमिक पद व्यवस्था थी। सामन्त सैनिक अधिकारी होते थे। कहा जाता है कि सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको सौ घोड़ोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अर्णोके विरुद्ध युद्धमें गया था तो उसकी सेनामें बीस और तीसकी सामन्तशाहीके सैनिक भी उपस्थित थे। इन्हें महाभूत कहा जाता था। एक सहस्रकी सामन्ती रखनेवालेको "भूतराज" कहते थे। इससे भी उच्च अधिकारी "छत्रपति" तथा नौबत रखनेवाले कहे जाते थे। इन्हें छत्र और वाद्य व्यवहार करनेकी आज्ञा थी। यह हम देख चुके हैं कि बहुतसे उच्च सैनिक पदाधिकारी वणिक थे। उदाहरणार्थ कुजराज तथा सुज्जनके मित्र जाम्ब थे, इनके उत्तराधिकारी मुंजाल जयसिंह सिद्धराजके सेवक थे। कुमारपालके शासनकालमें उदयन तथा उसके पुत्र उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। ऐसे सेनापति जो नियमित सेनाके अन्तर्गत न होकर भी समय-समय सैनिक सेवा करते थे, मुख्यतः बाहरी प्रदेशोंके प्रधान होते थे। यथा "कुलीयन"के

---

[1] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०१ तथा प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७९।

राजा तथा राठौर समाजी। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी ऐसी चर्चा आयी है, जिससे प्रकट होता है कि राजपूत निश्चित रूपसे पैदल सेनाके प्रतीक थे।[1] प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता मेरुतुंगका कथन है कि कुमारपालने अपनी सेनाके विभिन्न विभागों तथा अधीनस्थोंको बुलवाया तथा उन्हें मल्लिकार्जुनके विरुद्ध आक्रमणके लिए भेजा।[2] यह तथ्य बताता है कि कुमारपालके शासनकालमें सेनाके सभी विभाग पूर्णतः सुसंघटित थे।

कुमारपालचरित्र,[3] प्रबन्धचिन्तामणि[4] तथा प्रभावकचरित[5]के विवरणोंसे युद्धभूमिकी गतिविधिका सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। किसप्रकार किलेपर आक्रमण किया जाता था, सैनिक संघटनकी पद्धति क्या थी, राजधानीपर आक्रमणका ढंग, शत्रुका प्रतिरोध, भीषण युद्ध, खाद्य तथा ईंधनकी कमी आदि सभी बातोंका उल्लेख आया है। सेना दंडाधिपति तथा दंडनायकके अधीन रहती थी। कभी-कभी राजा, सेनाके सर्वोच्च सेनापतिकी हैसियतसे स्वयं समरभूमिमें सैनिकोंका नेतृत्व करता था।[6] चौलुक्योंके समय प्रायः युद्ध हुआ करते थे, इससे यह समझना अनुचित न होगा कि उनके पास विशाल सेना थी। शत्रु पक्षकी शक्ति तथा उनकी गतिविधिका पता लगानेके लिए गुप्तचर नियुक्त किये

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३३-२३४।

[2] "तद् विज्ञप्ति समनन्तरमेव तं नृपं प्रति प्रमाणाय बलनायकी कृत्य पंचाग प्रसादं दत्वा समस्त सामंतैः समं विससर्ज"। प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८०।

[3] द्वयाश्रय काव्य सर्ग ४, श्लोक ४२-९४।

[4] प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश ४, पृ० ७९-८०।

[5] प्रभावकचरित अध्याय २२, पृ० २०१।

[6] प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७९।

जाते थे। मोहराजपराजयमें कुमारपालके मन्त्रीने धर्मकुंजरको इस निमित्त नियुक्त किया।[1]

चौलुक्य राजाओंका महान उद्देश्य आदर्श राजा विक्रमादित्यका अनुगमनकर आन्तरिक उपद्रवो एवं बाह्य आक्रमणोंसे अपनी प्रजाका रक्षण तथा चतुर्दिकके राज्योको अधीनस्थ कर अपनी राज्य-सीमाका विस्तार करना था। ये सैनिक अभियान विजय यात्राके नामसे सम्बोधित किये जाते थे। कभी-कभी तात्कालिक कारणोंसे भी युद्ध घोषित होते थे। यथा जब गृहरिपुके विरुद्ध धार्मिक युद्ध प्रचारित किया गया अथवा जब यशोवर्मनके कार्योंसे सिद्धराज क्रोधित हुए थे। इतना होते हुए भी संघर्षका उद्देश्य वही रहता था। यदि शत्रु अपने मुखमें तृण रखकर 'कर' देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता तो विजेता इतने ही से सन्तुष्ट हो जाता था। वे विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकारका कभी प्रयत्न न करते। विजयका अर्थ होता था वार्षिक आयमेंसे एक अंशकी प्राप्ति। यह कर जिस प्रकार-से किसानोंसे एकत्र किया जाता था, उसी प्रकार विदेशी राजाओंके प्रदेशो-पर आक्रमणकर प्राप्त किया जाता था। वुणराजके वंशजोंने कच्छ, सौरपेठ, उत्तरी कोंकण, मालवा, झालोर तथा अन्य प्रदेशोंपर अनेकानेक आक्रमण किये किन्तु उन राज्योंके मूल शासकोंका मूलोच्छेद कर उन्हे अपने स्थायी अधिकारमें नहीं किया। मूलराजने गृहरिपुको पराजित किया और लक्षको तलवारके घाट उतार भी दिया किन्तु झारेगा तथा यदुवंशका मूलोच्छेद नहीं किया। इसी प्रकार यशोवर्माको जयसिंह सिद्धराजने युद्धमें पराजित किया था, फिर भी अनेक वर्षोंके पश्चात् मालवाके अर्जुनदेवने पुनः गुजरातपर हमला किया।

---

[1] एषपुण्यकेतुमन्त्रिणा विपक्षं पुरुषगवेषणार्थं नियुक्तो नित्यमप्रमतः परिभ्रमति धर्मकुंजरोनाम वांडपाशिकः—मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ७८।

सपादलक्षमें (शाकम्भरी-सांभर प्रदेश) अनहिलवाडेके शासकोंकी विजय पताका फहराती थी किन्तु फिर भी अजमेरके नरेश वुणराजके वशजोंके सदा विरोधी और प्रतियोगी बन रहे। इस वृत्तिका अन्त उसी समय हुआ जब चौहान तथा सोलंकी दोनों ही शक्तियां यवन आक्रमणोंसे समान रूपसे पराजित हुईं।[1]

परराष्ट्र नीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध

शक्तिशाली चौलुक्य राजाओंका प्रतिनिधित्व निकटस्थ राज्योंमें उनके कूटनीतिक दूत करते थे। ये दूत सांधिविग्रहीक कहे जाते थे। इनका कार्य अपनी सरकारको विदेशमें होनेवाले घटनाचक्रोंसे परिचित रखना था। इस कार्यमें उन्हें स्थान-पुरुषों अथवा उसी देशके लोगों या गुप्तचरोंसे सहायता मिलती थी। वाराणसीके राजाने सिद्धराजके सांधि विग्रहकसे अणहिलपुरके मन्दिरों कुओं तथा तालाबोंके आकार प्रकारके सम्बन्धमें प्रश्नकर उपालम्भ किया था।[2] एक समय सपादलक्ष देशसे कुमारपालके राजदरबारमें एक दूत आया। राजाने उससे सांभर नरेशकी कुशलता और सम्पन्नताके सम्बन्धमें पूछा। इसपर उक्त राजदूतने कहा उनका नाम विशवल ससारको धारण करनेवाला है। उनके सदा सम्पन्न होनेमें भला क्या सन्देह है। कुमारपालके पार्श्वमें विद्वान कवि कपर्दी मन्त्री उपस्थित था। उसने कहा शल् तथा श्यूल् धातुका अर्थ होता है शीघ्र जाना। इसप्रकार विशवल वह है जो चिड़ियाकी भांति शीघ्र उड़ जाय। इसके बाद जब राजदूत स्वदेश लौटा तो उसने बताया कि राजाकी उपाधिके प्रति कैसा असम्मान प्रकट किया गया। इसपर वहांके राजाने विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूसरे दिन वही

---

[1] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३४ २३५।

[2] रासमाला अध्याय १३, पृ० २४७।

दूत विग्रहराजकी ओरसे कुमारपालके दरबारमे उपस्थित हुआ, इस वर्ष पुन कपर्दीने अर्थ विश्लेषण कर समझाया कि उक्त नामका अर्थ हुआ शब्द न करनेवाले शिव और ब्रह्मा। वी अर्थात् विपा, ग्र अर्थात् शब्द, हर अर्थात् शिव और अज अर्थात् ब्रह्मा। वादम कपर्दी द्वारा अपने नामका हास्य न होने देनेके लिए राजाने "कवि वान्धव" नाम रखा।[1] ये कथाए स्पष्ट बताती हैं कि पडोसी राज्योके साथ कुमारपालका कूट-नीतिक दौत्य सम्बन्ध भी था। किन्तु इसका आधार साधारणत प्रभुशक्ति तथा अधीनस्थ राज्योके मध्य था। अपने समकालीन राजाओसे कुमारपाल-का कैसा सम्बन्ध था, इसका विवरण हेमचन्द्रने द्वयाश्रय काव्यमे दिया है।[2]

इस समय मडल सिद्धान्तकी राज्यनीति व्यवहारमें नहीं दृष्टगत होती। प्रत्येक राज्य एक दूसरेसे युद्ध करनेमे व्यस्त था। छोट-छोटे राज्य उस गृहका दृश्य उपस्थित करते थे, जिन्होने स्वय अपने विरुद्ध विनाशक नीतिको ग्रहण कर लिया था। परराष्ट्रनीतिमे न कोई एकता भावना थी और न कोई साम्य ही। ये ऐसे अदूरदर्शी थे कि विदेशी आक्र-मण तथा अन्तम विनाशके सकट तकको समझ ही न पाते थे। यदाकदा सैनिक सन्धि द्वारा एकताका प्रयत्न होता, किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ भावना-के कारण वह भी विफल हो जाता। सीमान्त सम्बन्धी नीतिके महत्त्वको वे ठीक-ठीक नही समझ सके और इसीके फलस्वरूप विदेशी आक्रामक बिना किसी प्रतिरोधके देशके भीतरी भाग तक पहुच जाता था। चौलुक्यो-की शक्ति इतनी प्रबल थी, किन्तु फिर भी वे उपयुक्त परराष्ट्रनीति कार्यान्वित न कर सके। सीमान्तपर किलेम राज्य सेना रहती थी। पर वह विदेशी आक्रमणोके रोकनेमें समर्थ नहीं हो सकती थी। सम्भवत: उसकी उपयोगिता पडोसी राज्योपर प्रभुत्वमात्रके लिए समझी जाती

---

[1] वही, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ४, श्लोक ७१, ९४।

थी। शत्रु जब द्वारपर आ जाता था, तब हिन्दू राजा रक्षात्मक तैयारियां प्रारम्भ करते थे। इसीलिए आक्रमणात्मक होनेकी अपेक्षा वे प्रायः आक्रमणसे अपनी रक्षामात्र करते थे। हिन्दू राजाओंकी विदेशी नीति इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि यद्यपि सपादलक्षम अनहिलवाडके राजाकी विजय पताका फहराती थी फिर भी अजमेरके राज वुणराजके वंशजोंसे उस समय तक खतरनाक प्रतियोगिता करते रहे जब तक चौहान और सोलंकी दोनों ही यवन आक्रमणसे पराजित तथा पददलित न हो गये। कुमारपालके समयमें चौलुक्योंकी राज्यसीमाका विस्तार अपनी पराकाष्ठाको अवश्य पहुंच गया था, किन्तु उसकी साम्राज्यविषयक नीति, आक्रमणात्मक न होकर रक्षणात्मक थी। शाकम्भरी, मालवा, और सुदूरदक्षिणमें कोंकण नरेशोंसे उसे बाध्य होकर ही युद्ध करने पडे। किन्तु इनका उद्देश्य साम्राज्यविस्तार न होकर सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोडे गये चौलुक्य साम्राज्यकी रक्षा था।

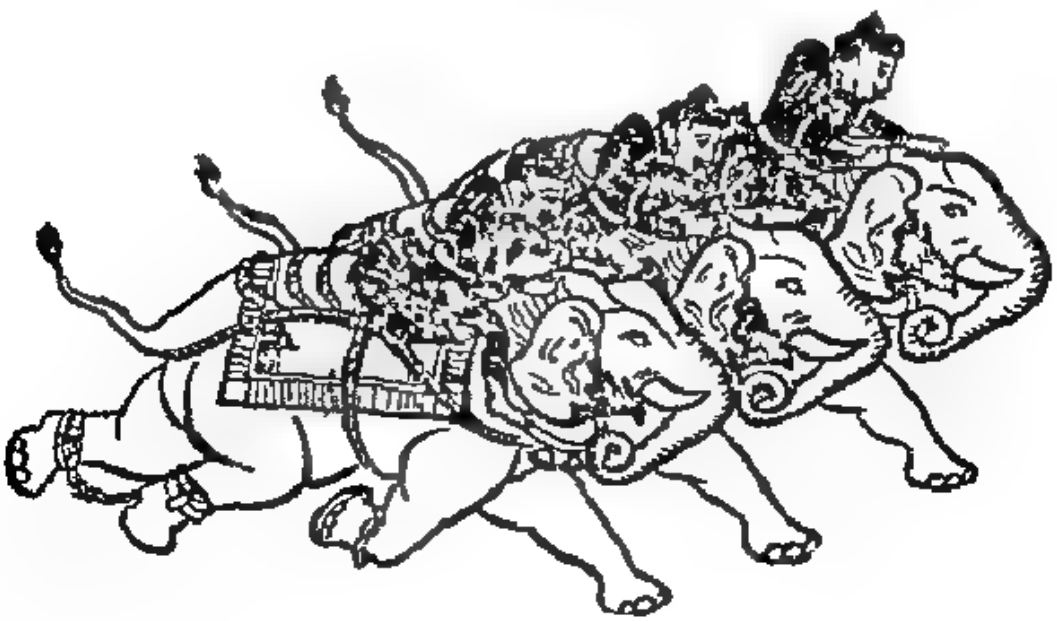

आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण समसामयिक नाटक "मोहराजपराजय"में सम्यक्रूपेण मिलता है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र, मेरुतुंग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओंमें भी इस कालके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झांकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमें विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जातीयताकी भावना संकुचित होती जा रही थी और वंश परम्परागत हो रही थी। समाजमें ब्राह्मणोंका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी समान रूपसे उनका आदर करते थे। चौलुक्योंके शासन-कालमें ब्राह्मणोंने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावान्वित किया था। मन्दिरोंके लिए बहुतसे दानपत्र लिख गये थे, जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमेंसे चार ब्राह्मण परिवार कनौज तथा उज्जयिनीके बड़े मठसे आये थे और इन्होंने भी गुजरातमें उसी प्रकारके मठोंकी स्थापना की। इसकालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतकी केन्द्र थी अब महाकाल, पाशुपत, आमर्दक, कापाला मतके शैवोंकी आदिभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात, काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोंके मुख्य पुजारी हो गये।[2]

---

[1] आर्क० सर्वे० इंडिया, वे० स०, १९०७-८, पृ० ५४-५५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०६।

समाजमें दूसरा स्थान क्षत्रियोंका था जो शासक वर्गके थे और जिनका आदर ब्राह्मणोंके बाद ही दूसरे क्रममें किया जाता था। ये शस्त्र चलाना जानते थे और इनका मुख्य धन्धा युद्ध करना था। राजाके साथ रणभूमिमें राजपूत जातिके योद्धा भी उपस्थित रहते थे। फोर्बस्ने इनका जो वर्णन किया है इससे इनके स्वरूपका सम्यक् बोध हो जाता है। उसने लिखा है कि भाला और तलवार उसकी विशाल भुजाओंमें सुशोभित होता था। समरभूमिमें उसके नेत्र क्रोधसे आरक्त हो जाते थे। उसके कानके लिए रणनिनादका स्वर उतना ही परिचित था जितना राजमहलके सुमधुर वाद्योंकी ध्वनि का। वह शस्त्रधारी व्यक्ति होता था और अभिषक्त प्रधान भी।[1] राज्यके शासन तथा सैनिक दोनों विभागोंमें ये महत्त्वपूर्ण उच्च पदोंपर नियुक्त होते थे। प्राय. सभी राजपूत घरोंके प्रधान बड़ी-बड़ी भूमिके स्वामी थे। इनमेंसे कुछ सामन्त अथवा सैनिक अधिकारी थे, तो कुछ सेनामें सैनिकके रूपमें भी थे। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी इसप्रकार चर्चा की गयी है जैसे वे निश्चित रूपसे पदाति सेनाके अन्तर्गत हों।[2] इसप्रकार राजपूत भूमिके स्वामी तथा राज्यमें कुलीनतन्त्रके प्रतिनिधि थे। इनका मुख्य कार्य, सेना तथा प्रशासनमें योगदान देना था।

इस समय गुजरातमें वैश्य भी समाजके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते थे। उद्योग और व्यवसाय ही उनका मुख्य धन्धा था। राजधानी अनहिलवाड़ेके वणिक बहुत ही सम्पन्न थे। नगरमें अनेकानेक लक्षाधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोंपर ऊंची पताकाएं तथा घंटे टंगे रहते थे। उनका वैभव पूर्णत. राजकीय वैभवके समान लगता था। उनके पास हाथी, घोड़े थे और उन्होंने सत्रागारोंकी भी व्यवस्था की थी।

---

[1] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३०-२३१।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३४।

व्यापारी पोतोसे विदेशी समुद्रमे जाकर व्यापार द्वारा विशाल धनराशि अर्जित करते थे।[1]

चौथा और अन्तिम वर्ण शूद्रोका था। ये मुख्यत खेतीमें लगे थे। धरती माताके इन पुत्रोकी आवाज सरकारमे नही थी। सामाजिक ढाचेमें वे सबसे निम्नतम जातिके माने जाते थे। इसी वर्णके अन्तर्गत उस जातिके लोग भी थे जिनका काम श्रम करना था और जिनका आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न था। एव सुदृढ सामाजिक ढाचेका स्वरूप विलुप्त हो गया था। धन्धेमे परिवर्तन सम्भव था किन्तु इसके लिए जाति परिवर्तनकी आवश्यकता न थी। मुसलिम आक्रमणोके फलस्वरूप विदेशी तत्त्वोका आत्मीयकरण त्याग दिया गया था और जातीय भावना अत्यन्त दृढ हो गयी थी।

चारो वर्ण अथवा जातियोका पारस्परिक सम्बन्ध था। ब्राह्मण शिक्षक और प्रचारक थे। क्षत्रिय शासन कार्य और देशकी रक्षा करते थे। वैश्य अपने उद्योग एव व्यवसाय द्वारा देशको सम्पन्न बनाते थे और शूद्र कृषि तथा अन्य शारीरिक श्रमका कार्य करते थे। इसप्रकार समाज-की भावना अविच्छेद्य और परस्पर सहयोगी सघटनकी भाति थी। किन्तु इस समय समाजका उक्त आदर्शवादी स्वरूप, व्यवहारमे दृष्टिगत न होता था। अनहिलवाडेमें ब्राह्मणो, राजपूतो तथा वैश्योमे राजनीतिक प्रभुत्वके लिए प्रतियोगिता होती थी। समाजके इस स्वरूपको समझनेके लिए उनके विस्तृत इतिहाससे परिचित होना आवश्यक है।

ब्राह्मणोकी वस्तिया

आधुनिक गुजरातमे ब्राह्मणोकी विभिन्न जातियोकी प्रधानताका परिचय शिलालेखो द्वारा मिलता है। कनौजिया, वडनागरा, सिहोरिया ब्राह्मण प्राचीनकालमे कान्यकुब्ज, आनन्दपुरा तथा सिहोरसे आये

---

[1] मोहराजपराजय, पृ० १०।

थे।[1] एक राष्ट्रकूट अभिलेखसे इस प्रकारके आगमनका निश्चित रूपसे पता लगता है।[2] इसमें मोटावाको ब्राह्मण स्थान कहा गया है। इनथोवनका कथन है कि मोटाका ब्राह्मण इस स्थानमें पाये जाते थे। उसका यह भी अनुमान था कि चौदहवीं शताब्दीमें ये गुजरातमें आये।[3] किन्तु राष्ट्रकूटोंके अनेक विवरणोंसे विदित होता है कि "मोटावा" ब्राह्मण नौवीं शतीमें भी गुजरातमें थे। बहुत सम्भव है कि राष्ट्रकूटोंके अधिकारके दिनोंमें ये दक्षिणसे आये हों। इनथोवनका कथन है कि ये सम्भवतः देशस्थ थे।[4]

एक परमार अभिलेखसे नागर ब्राह्मणोंकी प्राचीनता दो शताब्दी पूर्व तक जाती है।[5] इसमें आनन्दपुरके ब्राह्मणोंको नागर कहा गया है। वडनगर प्रशस्तिमें बादमें उक्त स्थानको द्विजमहासना तथा विप्रपुर कहा गया है।[6] मोढ ब्राह्मण विभिन्न शासन विभागोंमें सर्वप्रथम काम करते हुए दिखायी पड़ते हैं, विशेषकर वे महाक्षपटलिकके पदपर थे।[7]

---

[1] सिहोर (सिंहपुर) ब्राह्मणोंको वल्लभी कालमें संरक्षण प्राप्त हुआ था, किन्तु सिद्धराज जयसिंहने इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें बसाया था। देखिये हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रय, सर्ग १५, पृ० २४७।

[2] भड़ौचके धुव द्वितीयका दानलेख, इण्डि० एंटी० खंड १२, पृ० १७९।

[3] कास्टस् एंड ट्राइबस आव गुजरात : खंड १, पृ० २३४।

[4] वहीं।

[5] आनन्दपुरके एक नागर ब्राह्मणको मोहडवासक विषयके दो ग्राम कुम्भरोतक तथा जिहाका, सियाकट द्वारा दिये गये थे। —इपि० इण्डि० खंड १९, पृ० २३६।

[6] इपि० इण्डि० : खंड १, पृ० २९३-३०५ तथा इण्डि० एंटी० खंड १०, पृ० १६०।

[7] इनथोवन : ओ० सी० १, पृष्ठ २३८।

मूलराजने ब्राह्मणोंको श्रीस्थलपुर, गाय, स्वर्ण, रत्नादिके हारोंसे युक्त रथा सहित प्रदान किया था। उसने सिंहपुरकी सुन्दर तथा सम्पन्न नगरी अन्यान्य भेंटों सहित दस ब्राह्मणोंको दी थी। सिद्धपुर और सिंहोरके निकट उसने बहुतसे ब्राह्मणोंको छोटे-छोटे गाव दिये थे। उसने स्तम्भतीर्थ छ खभातियोंको साठ घोडो सहित दिया।[1] औदीच्य ब्राह्मणोंको, जो उदीच्य (उत्तर)से आये थे, कहा जाता है कि मूलराजने इन्हे उत्तरसे आमन्त्रितकर काठियावाड तथा गुजरातमे अनेक ग्राम दिये। इस सम्बन्धमें शिलालेख, दानलेख तथा जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उनसे इनकी विशेष पुष्टि नही होती।[2] एक शिलालेखमें "उदीच्य ब्राह्मण"का उल्लेख आया है।[3] बहुत सम्भव है कि कन्नौज तथा मारवाडसे आये ब्राह्मण ही औदीच्य कहे जाते रहे हो। शिलालेखादिसे यह नही विदित होता कि चौलुक्योंके समय गुजरातमे उत्तरके ब्राह्मण आकर बसे हो।[4]

इन विवरणों तथा प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमे बडी सख्यामे ब्राह्मणोंको राजसरक्षण प्राप्त हुआ था। इनकी गतिविधि धार्मिक कृत्यो तक ही सीमित न थी अपितु ये शासनविभागमे भी उत्तरदायी पदोंपर कार्यकर राजाको प्रभावित करते थे।

ब्राह्मणवादका पुनरोदय

यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मणोंको इसप्रकारका राज्य-

---

[1] रासमाला : अध्याय ४, पृ० ६४-६५।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०८।

[3] जर्नल आव बम्बई बडोदा रायल एशियाटिक सोसायटी १९००, अतिरिक्त अक. ४९।

[4] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २०८।

संरक्षण क्यों प्रदान किया गया था? सभी राजवंशोंके शिलालेखोंमें इस बातका उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणोंको दान देनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उन्हें दानादि देनेका दूसरा कारण था उनको "पंचमहायज्ञ" सम्पन्न करनेमें सहायता देना। पंचमहायज्ञ दैनिक यज्ञ थे। इसके अन्तर्गत पितृयज्ञ, अग्निहोत्र, आथितेययज्ञ और विश्वेदेवा यज्ञ किये जाते थे। त्रैकूटक अभिलेखोंमें ब्राह्मणोंके कार्योंके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है। माटकूरी, गुर्जर तथा अन्य कतिपय चौलुक्य अभिलेखोंमें इस बातका उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मणोंको ये दान पंचमहायज्ञोंके लिए प्रदान किये गये थे। तीनके अतिरिक्त सभी राष्ट्रकूट दानलेखोंमें भी उक्त उद्देश्य ही बताये गये हैं। इन तीनोंमें दो तो ब्रह्मदेयोंको बिना किसी उद्देश्य विशेषके दान दिया गया है। तृतीयमें, जो गोविन्द चतुर्थका है, साधारण यज्ञोंके अतिरिक्त दार्श, पौर्णमास, राजसूय, वाजपेय, अग्निस्तोम यज्ञोंके सम्पन्न करनेका भी उल्लेख मिलता है।[1] गुजरातके अभिलेखोंमें यह प्रथम अवसर है, जब इन वैदिक यज्ञोंका उल्लेख हुआ है।[2]

फोर्वसने भी इन यज्ञोंका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मूलराजने पवित्र ब्राह्मण परिवारोंका स्वागत किया। उत्तरी पर्वतों, तीर्थस्थानों, वनों, आदिसे मूलराजने इन्हें आमन्त्रित किया था। ये ऋषि सन्तान वेदोंमें पारंगत थे। इनमेंसे एक सौ पाच गंगा-यमुनाके संगम स्थलसे आये थे।[3] च्वनाश्रमसे सामवेदका पाठ करनेवाले सौ ब्राह्मण, दो सौ कान्यकुब्जसे तथा सूर्यकी भांति प्रकाशमान सौ ब्राह्मण वाराणसीसे गये थे। इनके अतिरिक्त दो सौ ब्राह्मण गंगद्वार तथा एक सौ नैमिषारण्यसे आये थे। कुरुक्षेत्रसे भी राजाने एक सौ तैंतिस

---

[1] इपि० इंडि० : खंड ७, पृ० २६।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १०, पृ० २०९।

[3] प्रयागसे जहा गंगा यमुना मिलती हैं।

ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया था। ये ब्राह्मण-समूह जब यज्ञ करते थे तो आकाश यज्ञधूमसे आच्छादित हो जाता था।[1]

ये यज्ञादि प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजरातमें यदि नियमित रूपसे न होते थे तो शान्ति तथा सम्पन्नताके दिनोंमें अवश्य किये जाते थे। विशेषत राजा जब इनके प्रति स्वय उत्साही रहता था। ऐसी शान्ति तथा सम्पन्नताकी अनुकूल परिस्थिति गुजरातमें उस समय उत्पन्न हुई, जब सिद्धराजने सहस्रलिंग तालाबका निर्माण किया तथा उसके तटपर ब्राह्मण-साहित्य, यज्ञ करने, पुराण पाठ, ज्योतिष और कल्प-सूत्रके अध्ययनार्थ मठ एवं शालाओंकी स्थापना की। इससमय निश्चय ही ब्राह्मणोंका प्रभुत्व, प्रतिष्ठा और सम्पन्नता अत्यधिक थी। यही परम्परा कुमारपालके शासनकालमें भी उससमय तक विद्यमान थी, जब तक वह जैनधर्ममें दीक्षित न हो गया।[2] जैन धर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी राजा ब्राह्मणोंका आदर करता रहा। भाववृहस्पतिकी वरावल प्रशस्तिमें ब्राह्मणों और उनके यज्ञोंके सम्बन्धमें कुमारपालके भावोंका उल्लेख सम्यक्रूपेण हुआ है।[3]

राजनीतिके क्षेत्रमें ब्राह्मण

ब्राह्मण राजाके मन्त्री भी हुआ करते थे। मन्त्रियोंके रूपमें देशके शासनमें उनके भाग लेनेका उल्लेख वडनगर प्रशस्तिमें हुआ है। इसमें कहा गया है कि "वे राजा तथा राष्ट्रकी रक्षा अपने परामर्श द्वारा करते

---

[1] रासमाला · अध्याय ४, पृ० ६४।

[2] वडनगर प्रशस्तिके १९से २९ तक श्लोकोंमें आनन्दपुरके नागर ब्राह्मणोंकी प्रशंसा की गयी है। कुमारपालने इसके चतुर्दिक एक दीवार बनवा दी थी। इंपि० इंडि० खंड १, पृ० २९३-३०५।

[3] बी० पी० एस० आई०, पृ० १८६, सूची संख्या १३८०।

थे"।[1] दूतक, महाक्षपटलिक आदिके महत्वपूर्ण पदोंपर भी ब्राह्मण कार्य करते थे।[2] फोर्बस्ने लिखा है कि चौलुक्योंकी राजसभामें नवीं पीढ़ीके ब्राह्मण थे।[3] विक्रम संवत् १२१३के कुमारपालके नाडोल पत्र-लेखमें उसके मन्त्रीका नाम वहडदेव लिखा है। यह सम्भवतः उसके प्रारम्भिक राज्यकालमें उदयनका पुत्र था जो प्रधान सेनापति अर्थात् दण्डाधिपति होनेके साथ ही प्रधान मन्त्री या महामात्य भी था।[4] किन्तु बालीके शिलालेखमें महामात्यका नाम महादेव लिखा है, इससे विदित होता है कि उसने पुनः खोया प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। नागर ब्राह्मणों तथा वैश्य वणिकोंमें प्रभुत्व प्राप्तिकी जो पुरानी प्रतियोगिता चली आती रही है, उसे मन्त्रिमंडलके इन परिवर्तनोंसे भली प्रकार समझा जा सकता है।[5] देशके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवनको ब्राह्मण अत्यधिक प्रभावान्वित करते थे, इसमें सन्देह नहीं।

वैश्योंका उदय

ब्राह्मणवादकी परम्परा और गुजरातमें इसके विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रचार-प्रसारका श्रेय यदि ब्राह्मणोंको है तो यहाके वैश्योंकी देन भी कुछ कम नहीं। गुजरातके वैश्यों, वणिकों या वणिजोंने ही मुख्यतः जैनधर्म और संस्कृतिका प्रचार किया। इन्होंने भव्य कलापूर्ण मन्दिरोंका निर्माणकर गुजरातको उन्नत कलाओंसे अलंकृत किया तथा राजनीतिके क्षेत्रमें पदार्पण कर शासनसूत्र हस्तगत करनेमें भी सफलता प्राप्त की। इनमें प्राग्वत

---

[1] इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३।
[2] इनथोवेन : ओ० सी०, पृ० २२८-२२९।
[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।
[4] इंडि० एँटी० : खंड ४१, पृ० २०२-३।
[5] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया, वेस्टर्न सरकिल।

जो पोरवाड तथा मोढके नामसे प्रसिद्ध है, विशेष उल्लेख्य है। देलवारा मन्दिरोंके निर्माणार्थ वस्तुपाल तथा तेजपालने अपने और अपने सम्बन्धियों विषयक अनेकानेक अभिलेख अंकित कराये थे। श्वेताम्बर जैनधर्मके स्तम्भ होनेके अतिरिक्त उनके पूर्वज राज्यके योग्य मन्त्री भी हो चुके थे।[1] इसी प्रकारकी मोढ़ोंकी भी परम्परा थी। एक शिलालेखमें कहा गया है कि ये बहुत उच्च और राजाकी प्रशंसाके योग्य माने जाते थे।[2] इनमें तथा पोरवाडों दोनोंमें जैन[3] तथा अन्य धर्मावलम्बी[4] होते थे। इस समय वैश्योंकी उपजाति कायस्थोंका भी उल्लेख आया है, जो अभिलेख आदि विशेषकर भूमि सम्बन्धी दानपत्र लिखा करते थे। उनके इस कार्यसे सम्बन्धके कारण ही "कायस्थ नागरी"का अस्तित्व हुआ और जिसकी प्रसिद्धि डाक्टर बूहरने की।[5] यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि राज्यके उच्चतम अधिकारियोंमें प्रमुख वणिक ही थे। यथा चुणराज तथा गुज्जनके जाम्ब, जयसिंह सिद्धराजके समय मुजाल और कुमारपालके समय उयदन, उसके पुत्र तथा अन्य लोग।[6]

इस राजनीतिक प्रभावके अतिरिक्त वणिक वर्ग ही उद्योगपतियों और

---

[1] आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २१०।

[2] यही। इसमें बम्बेके सूर्य मन्दिरका उल्लेख है जिसे एक जैनने बनवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मोढ़ और प्राग्वत परस्पर सम्बन्धी थे। आबू शिलालेखमें लिखा है कि वस्तुपाल प्राग्वतने....जो मोढ़ था उसके लिए बनवाया।

[3] बी० बी० एस० आई० पृ० २२७, सूची संख्या ६३९।

[4] इंपि० इंडि० : खंड ८, पृ० २२९। श्रीमाली तथा ओसवाल आबू और शिलालेखमें अंकित हैं।

[5] आर्केलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[6] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३३।

व्यवसायियोंका भी वर्ग था। सम्पत्तिके अनुसार वणिकोंकी विभिन्न श्रेणियाँ थीं। इसीके अनुसार व बनिया वणिक्, महत्तर वणिज और महाजन कहलाते थे। सबसे अधिक सम्पन्न तथा वैभवशाली उद्योगपति नगरश्रेष्ठि होता था।[1] जैन समाजाधिपति इस बातकी प्रतिज्ञा करते थे कि वे धन सम्पत्तिका एक निश्चित भाग ही लेंगे और शेष धार्मिक कार्योंमें व्यय करेंगे। कुबेरने छः करोड़ स्वर्ण मुद्रा, आठ सौ तुला चाँदी, आठ तुला बहुमूल्य रत्न, दो सहस्र अन्नके कुम्भ, दो सहस्र तेलकी खारी, पचास सहस्र घोड़े, एक सहस्र हाथी, अस्सी सहस्र गाय पाँच सौ हल, घर, गाड़ी, डिब्बे आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[2] इन जैन उद्योगपतियोंकी शक्ति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि नगरसेठ तथा दण्डनायक विमल पाटन छोड़कर चले गये थे और चन्द्रावती नामक नगर बसाया था। बहुतसे सम्पन्न उद्योगपति वहाँ गये और जाकर वहीं बस गये। राजधानीकी राजनीतिसे मुक्त होकर उन्होंने पंचायतोंके माध्यमसे कार्य प्रारम्भ किया। उनपर राजधानीका प्रभाव तथा नियन्त्रण केवल नामका था।[3]

जैन तथा राजपूतोंमें गहरी प्रतियोगिताकी भावना थी और प्रायः यह संघर्षका रूप धारण कर लेती थी। जैन वणिक धनी और शक्तिशाली दोनों थे। बादके चौलुक्य राजाओंके सम्मुख यह समस्या रहती थी, कि किसप्रकार धनी, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली जैन श्रावकोंको अनुकूल एवं नियन्त्रित रखा जाय। कर्णदेवके शासनकालमें राजधानीमें जैनोंका प्रभुत्व बढ़ गया था। बहुतसे श्रावक पाटन लौट आये और कर्णदेवकी दुर्बलताका लाभ उठाकर अपनी नीति कार्यान्वित करनेमें सफल हुए। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि राजा तो नाममात्रका राजा है, वास्त-

[1] मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५९।

[2] वही, पृ० १०-११।

[3] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व पृ० ३ तथा ४३।

विक शक्ति तो उनके हाथमें थी।[1] अभिप्राय यह कि जैन वणिजों तथा नगर श्रेष्ठियोंका राजनीतिमें प्रभाव दिन प्रतिदिन अधिक होता जा रहा था और ये एक नयी शक्तिके रूपमें अग्रसर हो रहे थे।

ब्राह्मणोंके पुनरोदय, वैश्योंकी शक्ति, नेतृत्व और उदारभावना, क्षत्रियोंकी सुदृढ़ रक्षात्मक तथा प्रोत्साहनपूर्ण कार्यपद्धति और सन्तुष्ट चतुर्थ वर्णके कर्त्तव्योंके फलस्वरूप मध्यकालीन गुजरात, वैभव एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा था।[2]

विवाह संस्था

विवाहकी संस्था इस समय अच्छी तरहसे संघटित और व्यवस्थित थी। सब प्रकारके विवाह साधारणतः होते थे। सगोत्र तथा सपिंडमें विवाह नहीं होता था। बहुविवाहके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। आभिजात्य वर्ग अधिकतर एकसे अधिक पत्नियां रखता था। इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने तीन रानियोंसे विवाह किया था। प्रभावकचरितमें उसकी रानीका नाम भोपालदेवी लिखा है।[3] ऐतिहासिक नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपाल और कृपासुन्दरीसे विवाहका वर्णन मिलता है, जो जिनमदनके अनुसार संवत् १२१६में हुआ था।[4] कुमारपालने मेवाड़ घरानेकी सिसोदिया रानीसे विवाह किया था,

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ३ तथा ४३।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १०, पृ० २११।

[3] "तस्य भोपालदेवीति कलत्रमनुगाऽभवत्"। प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९६।

[4] कृपासुन्दर्याः संवत १२१६ मार्गशुदि द्वितीयादिने पाणिजग्राह श्री कुमारपाल महीपाल. श्रीमदर्हद्देवता समक्षम्। जिनमदन : कुमारपाल-प्रबन्ध।

इसका भी उल्लेख मिलता है।[1] ब्राह्मणोंके धार्मिक कथाप्रसंगमें भी उक्त विवाहकी चर्चा आयी है।[2] यह कथा इस प्रकार है। जब सिसोदिया रानीने यह सुना कि राजाने प्रतिज्ञा की है कि राजमहलमें प्रवेश करनेके पूर्व उसे हेमाचार्यके मठमें जाकर जैनधर्मकी दीक्षा लेनी होगी, तो रानीने पाटन जाना अस्वीकार कर दिया जब तक उसे इस बातका आश्वासन न दे दिया जाय कि उसे हेमाचार्यके मठमें न जाना होगा। इसपर जब कुमारपालके चारण जयदेवने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया तब रानी पाटन आयी। उसके आगमनके कई दिन बाद हेमाचार्यने राजासे बातें की कि सिसोदिया रानी मेरे मठमें नही आयी। इस पर राजाने रानीसे कहा कि उसे अवश्य जाना चाहिये। इधर रानी अस्वस्थ हो गयी। उसकी बीमारीका हाल सुनकर चारणकी पत्नी उसे देखने गयी। रानीकी कहानी सुनकर चारणकी पत्नी उसका वेश परिवर्तनकर चुपचाप अपने घर ले आयी। रातमें चारणोंने नगरकी एक दिवार खोदकर एक छेद बनाया और उसी मार्गसे रानीको घर पहुचानेके लिए रवाना हुए। जब कुमारपालको इस घटनाका पता लगा तो वह दो हजार घुडसवारोंके साथ उसकी खोजमें निकला। चारणने रानीसे कहा कि मेरे साथ दो सौ घुडसवार हैं। हममेंसे कोई भी जब तक जीवित रहेगा, घबडानेकी आवश्यकता नही। रानीसे इतना कहकर वह पीछा करनेवालोंकी ओर मुडा, पर रानीका साहस जाता रहा और उसने गाडीमे ही आत्महत्या कर ली। उधर युद्ध चल रहा था और पीछा करनेवाले गाड़ीकी ओर आगे बढ़ ही रहे थे कि दासियोंने चिल्लाकर कहा "लडाई बन्द करो। रानी अब नहीं रही।" कुमारपाल तथा उसके सैनिक राजधानी लौट गये।

ब्राह्मण तथा जैनधर्मकी इस सघर्षमयी कहानीसे कुमारपालके उस

---

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

[2] वही।

विवाहका पता चलता है जो मेवाड़के घरानेमें हुआ था। इसप्रकार कुमारपालकी तीन रानियोंका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके जीवनवृत्त सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थ तथा समसामयिक साहित्यमें उसके इस विवाहका उल्लेख नहीं मिलता और न इस घटनाकी चर्चा ही आयी है। इससे इसकी सत्यता संदिग्ध है। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि राज्यारोहणके समय कुमारपालने अपनी रानी भोपलदेवीको पट्टरानी बनाया।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इसकालमें अन्तरजातीय विवाहके भी उदाहरण मिलते हैं। भीमदेवकी तीन रानियां थीं। जिनमें एक वणिक कन्या वकुलादेवी भी थी।[1] देवप्रसाद और नारसिंह मुंजालकी बहन हंसाका विवाह जो वणिक थी, इस प्रकारके विवाहका दूसरा उदाहरण है।[2] इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धपर प्रतिबन्ध न था। स्वयंवरकी कोटिके विवाह भी इस समय होते थे। संयुक्ताके स्वयंवरकी घटना पृथ्वीराज रासोमें अंकित है। फोर्बसने भी 'स्वयंवर मंडप'का उल्लेख किया है जिसमें राजकुमारी अपने इच्छित योद्धाको वरमाला पहनाती थी। उसने उक्त सभामंडपको विवाहका 'प्रधानमंच स्थल' कहा है, जहां प्रेमकी देवी अपने देवके पार्श्वमें विराजमान रहती थी।[3]

सामाजिक रीति और रिवाज

यह काल राजपूतोंकी वीरता तथा गौरवके युगका था। समाजका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। चरित्र तथा सम्मानके अभावमें लोग पापके पश्चातापपूर्ण जीवनके बदले मृत्युको उत्तम समझते थे। जयदेव चारणका

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : अध्याय ९, पृ० ७७ तथा के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व, पृ० ४२।

[2] पाटनका प्रभुत्व पृ० ४५।

[3] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३१।

उदाहरण हम देख चुके हैं, जिसने सिसोदिया रानीको ले जाने तथा अपने वचनके पालनमें जान तक दे दी। चारण जयदेवने देखा कि अब उसका वचन भग हो रहा है और उसका नैतिक पतन हो गया है, इसलिए उसने मृत्यु वरणका निश्चय किया। वह सिद्धपुर चला गया और वहासे उसने अपनी जातिके लोगोको लाल स्याहीसे पत्र लिखा। उसने पत्रमें लिखा था कि "हमारी जातिका सम्मान चला गया, इसलिए जो मेरे साथ चितामें जलनेके इच्छुक हो, वे प्रस्तुत हो जायें।" ईधनकी ढेर लगायी गयी और जो सपत्नीक जलना चाहते थे उन्होने दो और जो अकेले थे उन्होने एक ईख उठायी। चिताए प्रस्तुत की गयी। चिता और जमूर तैयार किये गये।[1] सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे प्रथम जमूर बनाया गया था। दूसरा पाटनसे थोडी दूर (बाणकी दूरी)पर और अन्तिम जमूर नगरके प्रवेश द्वारपर बनाया गया था। प्रत्येक जमूरपर सोलह सोलह भाट अपनी पत्नी सहित जलकर भस्म हो गये। जयदेव चारणकी बहनका एक लडका कन्नौजमें था। उसे भी एक पत्र लिखा गया था किन्तु उसकी माताने और कोई दूसरा पुत्र न होनेके कारण उसे जाने न दिया।

जमूरपर चारणोंके भस्म हो जानेपर उनके पुरोहितने उन भस्मोको गगामें प्रवाहित करनेका निश्चय किया। भस्म बैलगाडीपर लादी गयी और पुरोहित उसे लेकर कन्नौजकी दिशामें गये। सयोगसे जयदेवका भतीजा कन्नौजमें चुगी विभागमें था। उसने इस गाडीको व्यापारिक वस्तुओकी गाडी समझकर निकासी कर मागा। इसपर पुरोहितने सारा विवरण बताते हुए कहा कि बैलगाडीमें कैसी भस्म लदी है। इसपर भाट अपने परिवारको एकत्रकर पाटन आये। एक स्त्री जिसे कुछ समय पूर्व ही बालक उत्पन्न हुआ था अपना शिशु पुरोहितको सौंप अपने पतिके

---

[1] फोर्बस्ने लिखा है कि चिता केवल एक व्यक्तिके जलनेके लिए थी और जमूर एकसे अधिकके लिए।

साथ भस्म हो गयी। अब तक पाटन जिलेमें भाट और चारण अपनेको उक्त शिशुका ही वशज बताते हैं।[1] फोर्वस् द्वारा उल्लिखित उक्त कथाकी पुष्टिका अभाव तथा उसके समर्थनमें अन्य प्रामाणिक सूत्रोका मौन, उसकी सत्यतापर सन्देह उत्पन्न करता है। विशेपकर जब कि इस कालकी धार्मिक सहिष्णुता, भारतके इतिहासमें अभूतपूर्व रही है। इस-प्रकारकी धार्मिक सकीर्णताके लिए कुमारपालके राज्यकालमें कोई सम्भावना ही न थी। अत एतिहासिक घटनाके रूपमें, और स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमें रानीकी आत्महत्या तथा चारणोका चितामें भस्म होना सत्य नही, अपितु वर्ग विशेषकी विद्वेष भावनाकी कल्पना मात्र ही प्रतीत होता है।

इस कथाका विश्लेपण करनेपर उस युगके चरित्र विशेषका परिचय मिलता है। चिता और जमूरपर लोग अपना अन्तिम सस्कार करते थे। उस समय लोग अपने सम्मान तथा प्रतिष्ठाके लिए चिता अथवा जमूरपर जीवित जलकर भस्म हो जाते थे। इस समय कर्त्तव्य तथा ईमानदारीकी जैसी उच्च नैतिक भावना थी, उसका उदाहरण ससारके इतिहासमें कही नही मिलता। प्राचीन भारतीय इतिहासमे राजपूतोकी वीरता लोक-प्रसिद्ध थी। चितापर जलनेकी उक्त प्रथामें सती प्रथाका रूप भी देखा जा सकता है। उक्त कथासे यह भी विदित होता है कि मृत शरीरकी भस्म गगामें बारहवी शताब्दीमे भी प्रवाहित की जाती थी।

आर्थिक अवस्था

कुमारपालचरित[2] और कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिल-वाडाका जो वर्णन है, उससे हम देशके तत्कालीन आर्थिक जीवनकी झाकी प्राप्त हो जाती है। यही नही उनसे राज्यकी विभिन्न आर्थिक गतिविधि तथा जनताके उद्योग धन्धोपर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है। अणहिल-

---

[1] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १९३-१९४।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित, प्रथम सर्ग।

पाटण बारह कोस लगभग २४ मीलके घेरेमें बसा था। इसमें अनेक मन्दिर तथा उच्च विद्यालय थे। इसमें चौरासी महल्ले थे। इतनी ही संख्या यहांके बाजारोंकी भी थी। यहां स्वर्ण और रजतकी मुद्रा ढालनेवाले गृह भी थे। सभी वर्गोंका अपना पृथक-पृथक क्षेत्र था। व्यापारकी वस्तुओंमें हाथीदांत, रेशम, हीरे, मोती आदि उल्लेख्य थे। मुद्रा-विनिमय करनेवालोंका अपना अलग बाजार था, तो सुगन्धके विक्रेताओंका क्षेत्र भी पृथक था। चिकित्सकों, वस्त्रकारों, स्वर्णकारों और चादीका काम करनेवालोंके अलग-अलग बाजार थे। नाविकों, चारणों तथा वंशावलियोंके विवरण रखनेवालोंके स्थान पृथक-पृथक थे। अट्ठारहों "वरुण" नगरमें वास करते थे और सभी प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। राजप्रासादके चतुर्दिक भव्य भवनोंकी पंक्तियां थीं। हाथी, घोड़े, रथ तथा शस्त्रागारके लिए भवन बने थे। राज्याधिकारियों और जन आय-व्यय निरीक्षकोंके लिए भी पृथक स्थान थे।

प्रत्येक प्रकारके मालके लिए पृथक-पृथक चुंगीघर बने थे। यहां आयात-निर्यात तथा विक्रय कर एकत्र किया जाता था। कर तथा चुंगी लगनेवाली वस्तुओंमें मसाला, फल, दवाइयां, कपूर, धातु तथा देश-विदेशकी सभी बहुमूल्य वस्तुएं थीं। यह समस्त संसारके व्यापारका केन्द्र था। इस स्थानमें प्रतिदिन एक लाख तुलांस (टंका) कर रूपमें एकत्र होता था। यहांकी सम्पन्नताका इसी बातसे सरलतापूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि पानी मांगनेपर दूध मिलता था। यहां बहुतसे जैन मन्दिर थे। एक झीलके तटपर सहस्रलिंग महादेवका मन्दिर निर्मित था। यहांकी जनसंख्या गुलाबी सेवों, चन्दन, आम्रवृक्षों तथा विभिन्न प्रकारकी लताओंके मध्य उन फुहारोंके मध्य विचरणकर प्रसन्नताका अनुभव करती थी, जिनके जल अमृतके समान थे।[1]

---

[1] टाड : पश्चिमीभारत, पृ० १५/१-८।

उद्योग और धन्धे

उपर्युक्त विवरणमें विभिन्न जन उद्योग धन्धोंका उल्लेख आया है। जैन व्यवसायी बड़े उद्योगपति थे, इसका भी वर्णन मिलता है। विदेशोंसे व्यापार होता था। इसका प्रमाण हमें उस प्रसंगसे मिलता है जिसमें कहा गया है कि राजधानीके कुबेर नामक कोट्याधीशका निधन समुद्र-यात्रामें हो गया।[1] कुबेर विदेशोंसे व्यापार करनेके लिए पाटनसे भरूच (भृगुकच्छ) गया था और वहांसे ५०० पोतोंमें माल भरकर विदेश गया। विदेशोंमें अपना सारा माल विक्रयकर उसने चार करोड़ रुपयेका लाभ प्राप्त किया। वहांसे स्वदेश लौटते समय, समुद्रमें भीषण आंधी आयी और उसकी सभी नावें छिन्न विच्छिन्न हो गयीं। कुछ नावें भरूच बन्दरगाहपर आ लगीं, किन्तु कुबेरका कहीं पता न लगा। इसप्रकार समुद्रमें विशाल और बहुसंख्यक पोतों द्वारा व्यवसायका वर्णन भी मिलता है। जलपोतों, समुद्रमें व्यापार करनेवालों तथा समुद्री डाकुओंका भी उल्लेख आया है। जवहरी (जौहरी) रत्नके पारखी, व्यापारी, अत्यधिक धनी व्यवसायी होते थे। विदेशोंसे समुद्रपर व्यवसाय करनेवाले सांयात्रिक कहे जाते थे।

मोगराजके शासनकालमें एक विदेशी राजाका हाथी, घोड़ा तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओंसे लदा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहमें प्रवाहित होकर चला आया था। सिद्धराज जयसिंहके कालमें सांयात्रिक (समुद्र व्यवसायी) डाकुओंके भयसे गाठों और बड़ेलाभ स्वर्ण छिपाकर ले जाते थे।[2] इन सभी बातोंसे विदित होता है कि चौलुक्योंके शासन

---

[1] "गुर्जर नगर वणिग्मूर्धन्य कुबेरनामा श्रेष्ठी विदितो देवस्य . . . च जलधिपथर्मनि दयानोपतया स्वामिपादानाम सेवकतामशिश्रियत।" मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५१-५२।

[2] रासमाला . अध्याय १३, पृ० २३५।

कालमें बड़े पैमानेपर देशी विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दि
पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्वपूर्ण धन्धोंम
था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लग दिखायी देते हैं, वैसे
किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अं
निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक काटकी झाड़ि
लगा देते हैं। जब अन्नके पौध बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियों
उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानो
स्त्रियां जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती हैं, ठीक उसीप्रकार उस स
भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं अह्लादकी धारा प्रवाहि
कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थीं।[1]

सुवर्णकार तथा रजतकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रथ तथा अ
ऊंचे-ऊंचे भवनोंका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके विद्य
विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्र
व्यापार तथा यानोंका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्च
ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका संचालनका धन्धा भी कर उदरपोष
करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानी
इनके निवासका एक पृथक क्षेत्र ही था। इसप्रकार अनहिलवाड़में ए
उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग धन्धे तथ
कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहूं, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसक
भी व्यवहार करते थे। विरादू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होत

---

[1] वही, पृ० २३२।

[2] मोहराजपराजय अंक ३, पृ० ५१-५२।

कि लोग मांसाहारी थे। इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशु-की इस निषेधाज्ञाका उल्लंघन दंडनीय अपराध था।' किराडू शिला-लेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोंको आर्थिक दंड नियत था और साधारण लोगोंके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदंडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोड़े ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चालुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्बस् लिखता है कि सन्ध्यामें दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा "चन्द्रशाला" नामक ऊपरी भवनमें चला जाता था और वहीं विशिष्ट एवं विशेष भोजन करता

कालमें बड़े पैमानेपर देशी-विदेशी व्यापार होता था। उन प्राचीन दिनोंमें पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंमें एक था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लगे दिखायी देते हैं, वैसे ही किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अन्नके अंकुर निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा खींचकर उसके चतुर्दिक काटेंकी झाड़ियां लगा देते हैं। जब अन्नके पौधे बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियोंसे उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानोंकी स्त्रियां जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती हैं, ठीक उसीप्रकार उस समय भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं अह्लादकी धारा प्रवाहित कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थीं।[1]

सुवर्णकार तथा रजतकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रथ तथा अन्य ऊंचे-ऊंचे भवनोंका अस्तित्व इस समय था। इसलिए इस कलाके शिल्पियोंके विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्रसे व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्चय ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका संचालनका धन्धा भी कर उदरपोषण करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानीमें इनके निवासका एक पृथक क्षेत्र ही था। इसप्रकार अनहिलवाड़में एक उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग-धन्धे तथा कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहूं, चावल, जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसका भी व्यवहार करते थे। किराडू तथा रतनपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होता

[1] वही, पृ० २३२।

[2] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ५१-५२।

है कि लोग मासाहारी थे। इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका जो निषेध किया गया है, उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशु-वधकी इस निषेधाज्ञाका उल्लघन दडनीय अपराध था।[1] किराडू शिला-लेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोको आर्थिक दड नियत था और साधारण लोगोके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोडे ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चौलुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्बस् लिखता है कि सन्ध्याम दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा 'चन्द्रशाला' नामक ऊपरी भवनमे चला जाता था और वहाँ विशिष्ट एव विशेष भोजन करता था। इसमें मास तथा मदिरा भी रहती थी। सामन्तसिंहका अत्यधिक आसव पानकी दशामें ही अन्त हुआ था।[2] चौलुक्योंके पुरोगामी चावड भी मद्यपान करते थे। स्वय अणहिलपुरके सस्थापक वनराजको मद्य बहुत प्रिय था। उसके पश्चात् भी वहाके राजमहलोमें मदिरादेवीका खूब सत्कार होता था। मन्त्री यशपालके वर्णनसे यह स्पष्ट है। प्रबन्धगत प्रमाणोंसे प्रतीत होता है कि कुमारपाल जैनधर्मानुयायी होनेके पहले मासा-हार तो करता था लेकिन मद्यपानसे उसे हमेशा घृणा थी। यहा तक कि उसके कुलमें यह वस्तु त्याज्य थी। हेमचन्द्रके योगशास्त्रमें आये हुए एक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि चौलुक्य कुलमें मद्यपान ब्राह्मण जातिकी तरह ही निन्द्य था।[3] इसप्रकार स्पष्ट है कि भोजनके साथ मास और मदिरा भी ग्रहण की जाती थी। हेमचन्द्रके शिष्य होने-पर कुमारपालने मासभोजन तथा मदिरापानका त्याग कर दिया

---

[1] भावनगर इन्सक्रिप्शन, पृ० २०५-२०७।

[2] रासमाला, अध्याय १३, पृ० २३७।

[3] राजर्षि कुमारपाल : मुनि जिनविजय, पृ० १९।

था।[१] मांसभोजन, आसवपान तथा पशुवधके पापको रोकनेकी आज्ञा कुमारपालने दी थी।[२] वनराज तथा सभी चावड़े राजा अधिक आसव पानके अभ्यस्त थे।[३] युवावस्थामें कुमारपालको भी मांस खानेका व्यसन था और पर्यटनकालमें तो उसने मुख्यतः मांसपर ही निर्वाह किया था।[४]

उस समय भी लोग शाल और उत्तरीय वस्त्र उसीप्रकार ओढ़ते थे जिसप्रकार आजकल शाल और चादर धारण करनेकी चाल है। आधुनिक कालकी भांति ही स्त्रियां साड़ी पहनती थी।[५] फोर्बसका कथन है कि जब राजा भोजन कर चुकता था तो चन्दनकी सुगन्ध उसके शरीरमें लगायी जाती थी। सुपाड़ी खाकर वह छतमें लटकाये भूलनेवाले बिछावनपर विश्रामकी मुद्रामें आसीन होता था। उसकी लाल रंगकी राजकीय पोशाक कोच और तकियापर फैला दी जाती थी।[६] जैन आचार्योंकी लम्बी सफेद पोशाकका भी वर्णन आया है।[७] पुरुष उस समय धोती, उत्तरीय वस्त्र तथा पगड़ी पहनते थे।[८] स्वर्णकारों तथा रजतकारोंका

---

[१] मोहराजपराजय तथा कुमारपालप्रतिबोध सभी इसका उल्लेख करते हैं।

[२] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ८३।

[३] वनराजस्याह बहुमतोऽभूवमित्युपस्थितममुना
इय पयल हरे मुधिर चावुक्कडराय लालिओवसियो।
मोहराजपराजय, अंक ४, पृ० ४७।

[४] बालत्ताउ विचुह देव। निच्चमच्चतवल्लहो अहय
महसाहिज्जेण तया वयाइं देसतराइ तए। वही।

[५] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व, खंड २, पृ० १००।

[६] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७-२३८। यह प्रथा आज भी गुजरात और महाराष्ट्रके घरोंमें व्यापकरूपसे प्रचलित है।

[७] वही।

[८] पाटनका प्रभुत्व : खंड २, पृ० १०४।

अनेक स्थलोंमें उल्लेख हुआ है। जैन तीर्थंकरोंके चित्रोंसे मोतीकी मालाओ, वकण, कडा, कानकी ऐरन आदि आभूषणोंके विवरण मिलते है। आबू मन्दिरकी, मूर्तियो-चित्रोंसे ज्ञात होता है कि उस समय लोग दाढी-मोछ रखनेके साथ ही, कलाइयो तथा बाहोमें आभूषण पहने थे और कानमें गोल अगूठी (बाली) तथा गलेमे हार एव मोतीकी माला भी धारण करते थे। दर्शनादिके निमित्त मन्दिर जाते समय उनका वस्त्र एक छोटीसी धोती और उत्तरीय होता था। उत्तरीय वस्त्रको दोनो कन्धेपर डालकर बाहोपर लटका लिया जाता था। स्त्रिया वचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। इनका ऊपरी वस्त्र आधुनिक ओढनी जैसा था। स्त्रिया कानपर बडे कमडल धारण करनेके अतिरिक्त बाहो और हाथोमें कडा तथा चूडिया धारण करती थी।[1] यशपालके नाटक मोहराजपराजयमे भी सुन्दर वस्त्राभूषणोका वर्णन मिलता है।[2]

चौलुक्यकालीन सिक्के

चौलुक्यराजाओंके सम्बन्धमे जब प्रभूत एव प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, तो यह वस्तुत आश्चर्यका विषय हो जाता है कि उस कालकी मुद्राए क्यो दुर्लभ और अप्राप्य है। बारहवी शताब्दीम गुजरातका साम्राज्य आर्थिक सम्पन्नताके विचारसे अत्यधिक समृद्ध था। समसामयिक साहित्य, विदेशी इतिहासकारोंके विवरण तथा अन्य साधनोंसे इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन नाटक 'मोहराजपराजय'म यशपालने कुबेरके वैभवका वर्णन करते हुए लिखा है कि कुबेरके पास ६ करोड स्वर्णमुद्रा[3] और आठ

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४, पृ० ११८।

[2] पौराः ! कुर्युर्विपणि पदवीमस्तपाशुं पयोभिर्मुक्ताहारं रुचिर वसनैर्हट्टशोभा विदध्यु.। मोहराजपराजय : अक ४, पृ० ९२।

[3] स्वर्णस्य षटकोट्यस्तार स्याष्ट तुलाशतानि च महार्णाना मणीनादश.

—मोहराजपराजय।

सौ तोला रजत, बहुमूल्य रत्न आदि-आदि थे। गुजरातकी राजधानी पाटन तत्कालीन भारतकी 'वेनिस नगरी' कही जाती थी। गुजरातके स्तम्भतीर्थ (सूरत) भृगुपुर (भडोच) द्वारका, देवपाटन, मोटा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहोंसे विदेशी व्यापार बड़े पैमानेपर होता था। समुद्रमें व्यापारके लिए गये कुबेरके निधनके विवरणसे स्पष्ट है कि उस समय पाटन संसारके प्रमुख व्यापारकेन्द्रोंमें था और यहांसे व्यापारिक पोतोंका विशाल समूह विदेशोंसे व्यापार करने जाता था। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि चौलुक्यकालीन राजाओंने अपने सिक्कोंका प्रचलन न किया होगा, हास्यास्पद लगता है। उत्तरप्रदेशमें मिली सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्रासे विदित होता है कि उस समय सिक्के ढाले जाते रहे हैं और अर्थविभागके अन्तर्गत इसकी व्यवस्था अवश्य रही थी।[1] कुमारपाल-चरितके प्रथम सर्गमें तथा कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिलवाडा-का जो वर्णन मिलता है उनमें पाटनमें स्वर्ण तथा रजत मुद्राओंको ढालने-वाले गृहोंका भी उल्लेख आया है। यहां चौरासी बाजार थे जहां आयात-निर्यात तथा विक्रय कर लेनेकी व्यवस्था थी। यहां प्रतिदिन एक लाख तुरुस (टका) कर के रूपमें एकत्र होता था।[2] अब प्रश्न है कि ऐसी समृद्धिशील आर्थिक स्थितिमें चौलुक्यकालीन सिक्कोंका अभाव क्यों है? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि कुमारपालके उत्तराधिकारियोंके समय और उसके बाद जितने यवन आक्रमण हुए, उनमें स्वर्णके भूखे आक्रमणकारियोंने मनमानी लूटपाट की। बहुतसी स्वर्ण और रजत मुद्राएं तो इसप्रकार नष्ट हो गयी होंगी अथवा विदेश ले जायी गयी होंगी। दूसरा कारण, सिक्कोंका प्रचलन सम्बन्धी वह साधारण नियम है, जिसके अनुसार राज्यपरिवर्तन अथवा नवीन राजाके

---

[1] जे० आर० ए० एस० बी०, लेटर्स, ३, १९३७ नं० २ आर्टिकिल।

[2] टाड : एनल्स आव वेस्टर्न इंडिया, पृष्ठ १५६।

अधिकारग्रहणके बाद उसके पूर्वके अधिकांश सिक्कोंका नयी मुद्रा चलानेके लिए गला दिया जाना है। जब सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्राका पता चला है तो कोई कारण नही कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपालने राज्यारोहणके उपरान्त अपनी मुद्राए न प्रचलित की हो। विशेषकर उस स्थितिमें जब कि उसीके शासनकालमें गुजरातका साम्राज्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर था। यह केवल अनुमान ही नही, अपितु अन्य सूत्रोंसे भी विदित होता है। एक सूत्रसे पता चलता है कि अलाउद्दीनके मुद्रा अधिकारी लोगोंसे प्राचीन सिक्के लेते थे और द्रव्यपरीक्षा कर उसका मूल्याकन नये सिक्केमे करते थे। ऐसे ही एक प्रसगमे 'कुमारपालीय मुद्रा'का उल्लेख आया है।[1] इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियोकी लूटपाटसे अवशिष्ट सिक्के, यवनराज्यकी स्थापनाके कारण नये सिक्कोंके लिए गला दिये गये होंगे। इसके पश्चात भी बचे हुए सिक्के बहुत सम्भव है कि तत्कालीन वैभवकेन्द्रोंके ध्वसके नीचे दबे पडे हो। हम लिख चुके हैं कि पुरातत्त्ववेत्ता श्री सकालियाने जब उक्त क्षेत्रोमे सिक्कोंके सम्बन्धमे पूछताछ की तो उन्हें पता लगा था कि सहस्रलिंग तालावके निकट, नगरकी सीमाके बाहर जब एक सडकका निर्माण हो रहा था तो कुछ सिक्के सागर अप्सराके मुनि पुण्यविजयजीको मिले थे। इन स्थितियोमे यह स्वीकार करनेमें किसी प्रकारका सन्देह नही कि चौलुक्य राजाओ तथा उनमें सर्वप्रमुख कुमारपालने अपनी मुद्राए अवश्य ही प्रचलित की होंगी। निकट भविष्यमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके उत्खननपर, इस सम्बन्धमें और अधिक प्रकाश पडनेकी सम्भावना है।

मनोरंजन और खेलकूदके साधन

ऐसे सम्पन्न और उन्नतिशील समाजमें विविध प्रकारके खेलकूद तथा मनोरंजनके साधन होने स्वाभाविक ही थे। कुमारपालप्रतिबोधमे

[1] मुनिकान्तिसागर : खतर खेरू और उनके ग्रन्थ।

मल्लयुद्ध प्रतियोगिता, हस्तियुद्ध तथा अन्य मनोरजनोंके वर्णन मिलते हैं। द्यूत खेलनेकी प्रथा राजा और प्रजा दोनोंमें बहुत प्रचलित थी। धार्मिक समारोहोपर तो लोग सार्वजनिक और स्वतन्त्र रूपसे जुआ खेलते थ। द्यूत क्रीडाके पाच भेदोका वर्णन मिलता है। प्रथम भेद अग्घ्य था, जो नित्य राजा लोगो द्वारा वस्त्रके टुकडेपर बने वर्गपर खेला जाता था। दूसरा प्रकार नालय था, जिसे सम्पन्न लोग सुवर्ण लेकर खलते थे। तृतीय चतुरग था, जो आधुनिक कालका शतरज है। द्यूतका चतुर्थ भेद अक्ष था जिसे खलकर कौरवोंने विजय प्राप्त की थी। पाचवा प्रकार वराड नामका था, जिसे कौडियोकी सहायतासे खेला जाता था। जुआ खेलनेवालोका भी वर्णन मिलता है। कुछ लोगोके हाथ, पैर और कान काट लिये जाते थे। कुछ लोगोके तो नेत्र भी निकाल लिये जाते थे। दडस्वरूप जुआ खेलनवालोकी नाक, जीभ तथा कुछके पैर तक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोको इस अपराधमें नग्न कर दिया जाता था।[1]

द्यूत खेलनेवालोमें निम्नलिखित राजवशके सदस्याके नाम मिलते हैं —(१) मेवाडके राणाका पुत्र, (२) सोरठके राजाका भाई, (३) चन्द्रावतीका राजा, (४) नाडुलके राजाका भतीजा, (५) गोधरा नरेशका भतीजा, (६) धारानरेशका भाजा, (७) साकभरी राजके श्वसुर, (८) कच्छ नरेशका साला, (९) कोकण राजका सौतेला भाई, (१०) मारवाडके राजाका भाजा तथा (११) चौलुक्य राजका चाचा। द्यूत क्रीडामें ये इतने निमग्न रहते थे कि परिवारमें माता पिता या पत्नीकी मृत्यु भी हो जाती तो उसपर बिना शोक प्रकट किये, ये अपने खेलमे ही व्यस्त रहते। कहते हैं शूद्रकने अपना साम्राज्य द्यूत क्रीडासे ही हस्तगत कर लिया

---

[1]केवि कट्टिय चरण करकन्न, किवि कड्ढियनयणजुय केविनक्क अहरिहि विवज्जिय। किवि लूण सव्वावयव केवि जेव खवणय अलज्जिय।
[1]मोहराजपराजय : चतुर्थ अक, श्लोक २२।

था।[1] राजप्रासाद तथा नगरमें संगीत तथा नृत्यका भी उल्लेख मिलता है। कुमारपालके दैनिक कार्यक्रममें हमने देखा है कि जब वह राजप्रासादके मन्दिरोंमें पूजन-अर्चन समाप्त कर लेता तो नर्तकिया दीप लेकर देवताओंके सम्मुख नृत्य करती थी। आराधनके उपरान्त वह चारणो तथा अन्य लोगोंसे वाद्यसंगीत और गायन सुनता।[2] वेश्यावृत्ति कोई विशेष और बडा पाप नही समझा जाता था।[3] समारोहोंपर नागरिक सडकोंपर छिडकाव कराते थे तथा मोतियोके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे अपनी दुकान सुसज्जित करते थे। प्रमुख स्थानोमें उन्हे स्वर्णघट रखने पडते थे और सुसज्जित रंगमंचपर नर्तकिया नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थी।[4] समाजके शिष्टवर्गसे वेश्याओंका घनिष्ट सम्पर्क रहता था। वेश्याओंकी स्थिति भी आजकी भाति हल्की और व्यभिचारपोषक न थी। वेश्याओंका स्थान समाजमें एक प्रकारसे उच्च समझा जाता था। राजदरबारमें हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी। देवमन्दिरोंमें भी नृत्यसंगीत आदिके लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। व्यक्तिगत और सार्वजनिक

---

[1]वही, श्लोक २९।

[2]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ३८।

[3]मोहराज पराजय, पृ० ११—'वेश्याव्यसन तु वराकमुपेक्षणीयम्। न तेन किञ्चिद्गतेन स्थितेन वा।'

[4]भो भो. पौरा। महाराज श्रीकुमारपाल देवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रामहोत्सव भविष्यति। तत·

पौरा। कुर्य विपणिपदवीमस्तयांशु पयोभि
मुक्ताहारे रुचिर वसनैर्हट्ट शोभा विदध्यु·
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयंमुर्भवन्त
पड्क्तीभि सुरगृह सखान् मचकान भूषयेयु:।

वही, चतुर्थ अक, श्लोक १९।

महोत्सवोंमें भी उनका स्थान प्रमुख रहता था। कला और कुशलताकी वे शिक्षिका मानी जाती थी। नाटक तथा अन्य मनोरजक कार्यक्रमोंके आयोजनोंसे भी वर्णन मिलते हैं। हेमचन्द्रने लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह वेश परिवर्तनकर इन स्थानोंमें जाया करते थे। धनाढ्य उद्योगपतियोंके भव्य-भवनोंके उज्ज्वल प्रकाश या अन्य समारोहके स्थल उसके आकर्षणके विषय थ। अज्ञात समझकर भी वह जहा जाता और उसका आदर होता था। कभी वह शिव मन्दिरोंके प्रागणमें होनेवाले सगीत अथवा हास्यसे आकर्षित होकर जाता, जहा अभिनेता अपनी बुद्धि एव अभिनय कलासे जनसमूहको आह्लादित करते थे। एक समय जयसिंह सिद्धराज वेश बदलकर कर्ण मेरुप्रासादमें अभिनीत होनेवाले एक नाटकमें उपस्थित थे। ऐसे प्रदर्शनोंमें पर्याप्त धनराशिका व्यय होता था और धनाढ्य ही इसका आयोजन करनेमें समर्थ हो सकते थे। इसप्रकार एक सम्पन्न एव पूर्ण उन्नत समाजमें प्राप्य समस्त प्रकारके खेल-कूद, प्रदर्शन, सास्कृतिक आयोजन, कलात्मक अभिनय तथा मनोरजनके विविध साधन इस समय उपलब्ध थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था

सोलंकीराज कुमारपालका शासनकाल भारतके धार्मिक एव सास्कृतिक इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। जैन इतिहासोमें यह बात स्पष्ट लिखी है कि जैसे-जैसे कुमारपाल प्रौढावस्थाको प्राप्त हो रहा था, उसी प्रकार क्रमश उसपर हेमचन्द्रका अधिकाधिक प्रभाव होता जाता था और अन्तमे वह जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। कुमारपालके बीससे अधिक शिलालेखोमें उसे "उमापति वरलब्ध"—शकरका भक्त कहा गया है[1] तथा अनेक शिलालेखोमें उसके सम्बन्धम परम अर्हत सूचक विरुदका उल्लेख आता है। गुजरातके बहुतसे प्रतिष्ठित परिवारोमें जैन और शैव दोनो धर्मोका पालन किया जाता था। किसी घरम पिता शैव था तो पुत्र जैन, किसी घरमें सास जैन थी तो वधू शैव। किसी गृहस्थका पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव। किसीका मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। इसप्रकार गुजरातमे वैश्य जातिके कुलोमें प्राय दोनो धर्मोके अनुयायी थे। निष्कर्ष यह कि शैव और जैन दोनो मुख्यरूपसे गुजरातके प्रजाधर्म थे।[2] दोनो धर्मोमें सद्भावकी स्थिति थी तोभी सामान्यरूपसे राजधर्म शैव ही माना जाता था और गुजरातके राजाओंके उपास्य शिव

---

[1]इडि० ऐंटी० : खड १८, पृ० ३४१-४३ तथा इपि० इडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

[2]मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ५।

थ।[1] दसवी शताब्दीमें जब मूलराजने अनहिलवाडामें चौलुक्य राजवंशकी स्थापना की तो उस समय भी सोमनाथका पवित्र मन्दिर सर्वप्रसिद्ध था।[2] सिद्धपुरमें रुद्रमहालयका निर्माण कर मूलराजने उत्तरी गुजरातमें भी शैवमतका बीजारोपण किया। सिद्धराज जयसिंहके समय भी शैव मतकी अत्यधिक उन्नति हुई। उसने सहस्रलिंग तालाबका निर्माण करा उसके चतुर्दिक मन्दिरोंमें एक सहस्र शिवलिंगोंकी स्थापना करायी। इतना ही नहीं, झीलके चारों ओर अन्य देवी-देवताओंके मन्दिरोंका भी उसने निर्माण कराया।[3] निश्चय ही कुमारपालने जयसिंह सिद्धराजकी भांति शैवधर्मको राजसंरक्षण नहीं प्रदान किया और उसका झुकाव जैनधर्मकी ओर ही अधिक था। फिर भी हेमचन्द्रने लिखा है कि कुमारपालने अनहिलवाडामें कुमारपालेश्वर नामक शिवमन्दिरकी स्थापना की।[4] इसके अतिरिक्त उसने सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया तथा केदार मन्दिरको बनवानेका आदेश भागवतको दिया।[5] उसके उत्तराधिकारी अजयपालने शैवधर्मका प्रचार-प्रसार बड़े उत्साहसे किया। इस समयसे लेकर चौलुक्य-वंशके अन्त तक शैवधर्मको राज्य समर्थन एवं संरक्षण प्राप्त रहा।

---

[1]हेमचन्द्रके द्वयाश्रय काव्यमें जो चौलुक्यकालीन गुजरातकी प्रामाणिक रचना है, मूलराजसे जयसिंह सिद्धराज तकके वर्णनमें जैनधर्मका कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

[2]द्वयाश्रयमें मूलराजकी सोमनाथ यात्राका उल्लेख है। भिलरी शिलालेखके अनुसार लक्ष्मण राजा ई० सन ९६०में सोमेश्वरकी आराधना करने गया था। इंपि० इंडि० : खंड १, पृ० २६८।

[3]द्वयाश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११४, १२२ तथा अप्रकाशित "सरस्वती पुराण"।

[4]वही, सर्ग २०, श्लोक १०१।

[5]द्वयाश्रय महाकाव्य : सर्ग २०, श्लोक ९५।

शैवमतका प्राधान्य

इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके पश्चात् इस निर्णयपर पहुचना उचित होगा कि कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेके पूर्व शैवधर्म ही राज्यधर्म था। कुमारपाल अपने उत्तरार्ध जीवनमें जैनधर्मको मुख्य मानने लगा था। सिद्धराजके इष्टदेव अन्त तक शिव ही थे किन्तु कुमारपालके इष्टदेव पिछले जीवनमें जिन थे।[1] कुमारपालके शासनकालमें भी शैव सम्प्रदायकी अवनति नही हुई। इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि शैव और जैनधर्म दोनो साथ-साथ फल-फूल रहे थे। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार हेमाचार्यके गुरु देवसूरिसे जब कुमारपालने पूछा कि उसका नाम किस प्रकार चिरस्मरणीय हो सकता है तो देवसूरिने उत्तर दिया—'समुद्रकी लहरोंसे ध्वस्त सोमनाथके काष्ठ मन्दिरका ऐसा नवीन निर्माण कराओ जो एक युग तक ठीक रहे।' कुमारपालने मन्दिर निर्माण करना स्वीकार किया तथा सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी गडभाव बृहस्पतिकी अध्यक्षतामें एक पचकुल अथवा मन्दिर निर्माण समितिका सघटन किया।[2]

भावबृहस्पतिकी प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "कामके शत्रु सोमनाथके मन्दिरको ध्वस्त देखकर उसने (कुमारपालने) देवमन्दिरके पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी।" कुमारपालने जब मन्दिरके शिलान्यासका समाचार सुना तो हेमचन्द्रके आदेशके अनुसार यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मन्दिरका पूर्ण निर्माण न हो जायगा तब तक वह व्यसनादिका त्याग रखेगा। अपनी इस प्रतिज्ञाकी साक्षीके लिए उसने हाथमें जल लेकर नीलकठ महादेवपर छोडा, जो सम्भवत उसके इष्टदेव थे। दो वर्षोंमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया और उसपर पताका फहराने लगी। हेमाचार्यने

---

[1] राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

राजासे उस समय तक अपनी प्रतिज्ञा न तोडनेका परामर्श दिया जब तक नवीन मन्दिरमें वह देवका दर्शन नही कर आता। राजाने यह स्वीकार किया और सोमनाथ गया। हेमाचार्य भी पहले ही पैदल रवाना हुए और शत्रुजय तथा गिरनार हो आनेके बाद सोमनाथ आनेका भी वचन दिया। सोमनाथ पहुचनेपर कुमारपालका भव्य स्वागत वहाके राज्याधिकारी गड वृहस्पतिने सोमनाथकी जनता तथा मन्दिर निर्माण समितिकी ओरसे किया। कुमारपालकी राज-सवारी नगरके मुख्य मार्गोसे होती हुई, सोमनाथ महादेवके नवनिर्मित मन्दिर तक निकाली गयी। मन्दिरकी सीढियोपर राजाने अपना मस्तक नत किया। गडवृहस्पतिके निर्देशनके अनुसार उसने देवका पूजन कर, हाथियो और अन्य बहुमूल्य वस्तुओकी भेंट रखी। उसने सिक्को द्वारा अपना तुलादान भी किया और वह समस्त धनराशि मन्दिरमें अर्पित कर दी। इसके पश्चात् कुमारपाल अणहिलपुर वापस लौटा।[1]

फोर्बस् लिखता है कि वुणराज तथा उसके उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह और उसके बाद कुमारपाल, (उस समय तक जब कि कुमारपालने हेमचन्द्राचार्यसे अर्हंतके सिद्धान्तोको ग्रहण न किया था) शैव मतावलम्बी थे।[2] कुमारपालने, केवल सोमनाथका नवीन मन्दिर निर्माण ही न कराया अपितु शैवधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा, चित्तौर तथा उदयपुर (ग्वालियर) स्थित समिद्धेश्वर और उदयलीश्वरके शिवमन्दिरोको दानमे ग्राम देकर भी प्रकट की थी। कुमारपाल जीवनके उत्तरकालमे जैनधर्ममे दीक्षित हो जानेपर भी शैवमतका सरक्षक था, इसका प्रमाण चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेख द्वारा मिलता है। इस शिलालेखका प्रारम्भ जैनदर्शनके 'ओम नम सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिव प्रार्थनासे होता है। इसमे इस घटनाका भी उल्लेख है कि शाकम्भरी भूपालसे जब वह युद्ध करने जा रहा था तब उसने

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

[2] रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

चित्रकूट पर्वतपर स्थित समिद्धेश्वर महादेवका पूजन किया था और भेटके अतिरिक्त एक ग्राम दान भी किया था।[1] इसीप्रकार उदयपुर प्रस्तर लेखमें उदयपुर नगरके उदयेश्वर मन्दिरमें महाराजपुत्र वसन्तपाल द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है। यह शिलालेख शाकम्भरी तथा अवन्तिराजको पराजित करनेवाले अनहिलपाठकके राजा कुमारपालके शासनकालका है।[2] कुमारपाल जीवनके प्रारम्भमें शिवका अनन्य भक्त था, इस तथ्यकी पुष्टि उसके बहुसंख्यक शिलालेखों द्वारा होती है जिनमें उसे उमापति शिवका प्यारा "उमापति वरलब्ध" कहा गया है।[3] इसप्रकार अपने पूर्वजोंकी भाँति कुमारपाल, शासनकालके प्रारम्भमें शिवका पक्का भक्त था और जनसंख्याका बहुत बड़ा दल भी इसी धर्म मार्गका अनुयायी था।

जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष

जैनसूत्र तथा साहित्यका दावा है कि यहां अतीत प्राचीनकालसे जैनधर्मका प्रसार था।[4] सम्भव है कि गुजरात तथा काठियावाडमें जैन-धर्मकी प्रथम लहर ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमें उस समय फैली जब भद्रबाहु दक्षिणकी ओर गये थे।[5] चालुक्योंके अधीन गुजरातमें जैनधर्मके प्रसारका

---

[1]इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

[2]इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४१-४३।

[3]आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सरकिल, १९०८, पृ० ५१, ५२। वही, ४४, ४५, पूना ओरयंटलिस्ट खंड १, उपखंड २, पृ० ४०, इपि० इंडि०-खंड ११, पृ० ४४ आदि आदि।

[4]सकालिया : दि ग्रेट रिनन्शियेसन आव नेमिनाथ, इंडियन हिस्टा-रिकल क्वाटरली, जून १९४०।

[5]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ११, पृ० २३३।

पता किसी प्राचीन ऐतिहासिक भवन या लेखादिसे नहीं प्राप्त होता। अवश्य ही कर्नाटकमें प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार था।[1] चौलुक्यकालमें गुजरात श्वेताम्बर जैनधर्मका सबसे बडा केन्द्र बना। हरिभद्रने आठवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी प्रमुखता और प्रसिद्धि करायी।[2] राजपूताना और उत्तरी गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका पता उन जैनमन्दिरसे भी लगता है जो दसवीं शतीमें हस्तिकुंडी वंशके राष्ट्रकूट राजा विदग्धराज द्वारा बनवाया गया था। चावड वंशके संस्थापक वनराजका पालन पोषण एक जैनसूरिने किया था, इससे भी जैनधर्मके प्राचीन प्रचलनकी स्थिति विदित होती है।

जो हो, महर्षि हेमचन्द्रके कालमें गुजरातमें जैनधर्मकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ ही न हुई अपितु कुछ समयके लिए यह राज्यधर्म भी बन गया। यह किस प्रकार हुआ, इसका विवरण जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य द्वारा ही विदित होता है। वह अपने द्वयाश्रय काव्यमें लिखते हैं कि वास्तवमें पहलेके राजाओंमें जैनधर्मके प्रति विशेष उत्साह नहीं था। समय-समयपर भले ही उनकी सदिच्छा इस धर्मके प्रति जाग्रत हुई हो और उन्होंने जैनमन्दिरोंके निर्माण भी कराये हो, किन्तु इससे यह अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता था कि वे राजे जैन थे। इन राजाओंके शैव होनेपर भी जैनधर्मपर उनकी आदरदृष्टि थी। विद्वान जैन आचार्य, राजाओंके पास निरन्तर आते रहते थे और राजा लोग भी अपने गुरुओंके समान ही उन्हें आदर करते थे। शैवधर्मके आदर्श प्रतिनिधि सिद्धराज भी जैनोंसे काफी सम्बन्धित थे। सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके साथ-साथ उसने 'रायविहार' नामक आदि-नाथका जैनमन्दिर भी बनवाया था। गिरनार पर्वतपर नेमिनाथका जो मुख्य जैन-मन्दिर आज विद्यमान है, वह भी सिद्धराजकी उदारताका

---

[1] विंटरनित्स : हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४३१।
[2] आर्कलाजी आव गुजरात : आयाय ११, पृ० २३५।

ही फल है। शत्रुंजय तीर्थका खर्च चलानेके लिए उसने बारह गाव उसके साथ लगा देनेके लिए अपने महामात्य अदवाकको आज्ञा दी थी।[1] हाँ यह अवश्य है कि हेमचन्द्रने इसका उल्लेख किया है कि जयसिंह सिद्धराज, जब सोमनाथसे यात्रा कर लौट रहे थे तो उन्होंने नेमिनाथका पूजन-वन्दन किया था।[2] जयसिंह सिद्धराजने सिद्धपुरमें महावीरका एक चैत्य भी बनवाया था।[3] किन्तु इससे यही पता चलता है कि गुजरातमें जैनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके लिए उपयुक्त वातावरण बन चुका था। कुमारपालके राजत्वकालमें जैनधर्मको राज्य संरक्षण तो मिला ही साथ ही सम्पूर्ण गुजरातमें इसका व्यापक प्रसार भी हुआ। कुमारपालने जैनधर्म स्वीकारकर ऐसी अहिंसा नीतिका राज्यभरमें प्रवर्तन किया, जिसने देशके भावी इतिहासको प्रभावित किया और जिसकी स्पष्ट छाप आज भी भारतीय जीवन और संस्कृतिपर दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल

कुमारपालप्रतिबोधके लेखकका कथन है कि जैनधर्मके इतिहासमें महर्षि हेमचन्द्रका व्यक्तित्व महान है। जैनधर्मावलम्बियों तथा आचार्योंमें उनका बहुत उच्च स्थान है। हेमचन्द्रने जैनधर्मके उत्कर्षके लिए महान आचार्यका कार्य किया। वह अपने समयके महापंडित भी थे। इसी पांडित्यपर विमुग्ध होकर राजा जयसिंह सिद्धराज उनसे सभी शास्त्रीय प्रश्नोंपर परामर्श लेकर पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते थे। यह हेमचन्द्रकी शिक्षा तथा उपदेशका ही प्रभाव था कि सिद्धराज जैनधर्मके प्रति आकृष्ट हुए और उन्होंने एक जैनमन्दिरका निर्माण कराया। हेमचन्द्रके प्रति

---

[1] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।
द्वयाश्रय काव्य : सर्ग १५, श्लोक ६९, ७५।
[3] वही, श्लोक १६।

राजाका ऐसा भाव हो गया था कि जब तक वह उनके अमृत समान उपदेशका श्रवण न कर लेते थे, उन्हें प्रसन्नताका अनुभव ही न होता था।[1] कहा जाता है कि मन्त्री वहडने कुमारपालसे कहा कि यदि वह सच्चे धर्मकी सम्प्राप्ति करना चाहता हो तो उसे श्रद्धायुक्त होकर आचार्य हेमचन्द्रके पास जाना चाहिये। अपने मन्त्रीके परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण करने लगा।[2] पहले हेमचन्द्रने पशुहिंसा, द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटकी बुराइयोंको दिखानेवाली कथाओं द्वारा कुमारपालको उपदेश दिया। उसने कुमारपालसे राजाज्ञा निकालकर राज्यमें इनका निषेध करनेकी भी प्ररणा की। तब उसने जैनधर्मके अनुसार सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्यधर्मका उपदेश करते हुए असत्देव, असत्गुरु तथा असत्धर्मकी बुराइयोंको दिखाया।[3] इसप्रकार कुमारपाल शनै शनै जैनधर्मका भक्त हो गया और इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया। पहले उसने पाटनमें मन्त्री वहड और कयड वंशके गर्गसेठके सर्वदेव तथा साबसेठ नामक दो पुत्रोंके निरीक्षणमें कुमारपाल विहार नामक भव्य मन्दिर बनवाया।[4] इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी विशाल

[1] युह यण चूडामणिणो भुवन पसिद्धस्स सिद्धरायस्स।
ससम पएसु सव्वेसु पुच्छणिज्जो इयो जाओ॥
जयसिंह देव-वयणा निम्मिय सिद्धहेम वागरण
नीसेस-सह-लक्खण निहाण मिमिणा मुणिदेण।
—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० २२।

[2] इय सम्म धम्म सरुप-साहगो साहियो असच्चेण
तो हेमचन्द सूरि कुमर-नरिंदो न मइ निच।—कुमारपालप्रतिबोध।

[3] वही, पृ० ४०, ११४।

[4] दाऊण य आएस "कुमर विहारो" करावियोएत्य
अट्ठावओ व्व रम्मो चउवीस-जिणालयो तुगो। वही, पृ० ११३।

पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की और साथके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें चौबिस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियां प्रतिष्ठापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने इससे भी विशाल एवं भव्य त्रिभुवन विहार नामक मन्दिरका निर्माण कराया। इसके साथके बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित की गयीं। इस मन्दिरका शिखर भाग स्वर्ण मंडित था। केन्द्रीय मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विभिन्न बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें अन्य तीर्थंकरोंकी पीतल धातुकी बहत्तर मूर्तियां स्थापित थीं। इनके अतिरिक्त केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस तीर्थंकरोंके चौबिस मन्दिर बनवाये। इनमें त्रिविहार मन्दिर प्रमुख था। पाटनके बाहर अपने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें भी कुमारपालने इतनी अधिक संख्यामें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया, जिसकी ठीक-ठीक संख्या निश्चित करना भी कठिन है। इनमें तारंगा पहाड़ीपर सुबेदार अभयके पुत्र जसदेवके निरीक्षणमें निर्मित अजितनाथका विशाल कलामण्डित मन्दिर विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।[1]

शिलालेखोंकी साक्षी

कुमारपालने अपने आध्यात्मिक गुरु हेमचन्द्रसे विक्रम संवत् १२१६में सकल जन समक्ष जैनधर्मकी दीक्षा ली थी और कुमार विहारका निर्माण कराया था, इसका उल्लेख केवल विभिन्न जैनग्रन्थोंमें ही नहीं, शिलालेख तथा अभिलेखोंमें भी मिलता है। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें लिखा है कि "कुमार विहार"में पार्श्वनाथका मूलबिम्ब प्रतिष्ठित था। इसकी स्थापना परमअर्हत, गुर्जरधराधीश महाराजाधिराज चौलुक्य कुमारपालने जावालीपुर (आधुनिक जालोर)के कंचनगिरि किलेमें प्रभु हेमसूरिसे दीक्षा लेनेके उपरान्त की थी। सोलंकी राजा कुमारपालने

---

[1]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० १४३, १७४।

इसका निर्माण कराया था और इसीलिए उसके नामपर इसका नामकरण "कुमार विहार" रखा गया।[1]

जैन समारोहोंका आयोजन

कुमारपालने इन मन्दिरोंका निर्माण कर जैनधर्मके प्रति अपने कर्त्तव्यकी इतिश्रीका अनुभव कर लिया हो, ऐसी बात नहीं। जैनधर्मके सच्चे अनुयायी और साधककी भांति वह जैनमन्दिरोंमें जाकर मूर्तियोंके समक्ष आराधन भी करता था। धर्मकी महत्ताका प्रभाव जनतापर डालनेके लिए वह बड़े समारोहपूर्वक अष्टान्हिका महोत्सवका आयोजन कराता था। प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन शुक्लपक्षके अन्तिम सप्ताहमें पाटनके प्रसिद्ध "कुमार विहार"में यह समारोह मनाया जाता था। उत्सवके अन्तिम दिन सन्ध्या समय हाथियों द्वारा चलनेवाले विशाल रथमें पार्श्वनाथकी सवारी नगरसे होती हुई राजप्रासाद जाती थी। इसमें राजाके उच्च अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक भी सम्मिलित रहते थे। चारों ओर जनसमूह नृत्य और गायन करता रहता था और इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरणके मध्य राजा स्वयं जाकर मूर्तिकी पूजा करता था। रात्रिमें रथ, राजप्रासादमें ही रहता था और प्रातः राजप्रासादके द्वारपर निर्मित विशाल मैदानमें चला जाता था। यहां राजा भी उपस्थित रहता था। राजा द्वारा पूजन-अर्चनके पश्चात् रथ नगरके प्रमुख मार्गोंसे होकर जाता था। मार्गमें बनाये गये मैदानोंमें ठहरता हुआ यह रथ अपने मूलस्थानको

---

[1] ....संवत १२२१ श्रीजावालिपुरीय कांचनगि(ग) रि गढ़स्योपरि प्रभु श्रीहेमसूरि प्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महारा(ज)धिराज श्री(कु)मारपाल देव कारिते श्रीपा(र्श्व)नाथ सत्कमू(ल) विंब सहित श्रीकुवर विहाराभिधाने जैन चैत्ये (।) सद्विधि प्रव (र्त्त)नाय ... इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४, ५५।

लौट जाता था।[1] राजा स्वयं तो यह समारोह मनाता ही था साथ ही अपने अधीनस्थोंको भी इसका समारोहपूर्वक आयोजन करनेका आदेश देता था। अधीनस्थ राजाओंने भी अपने-अपने नगरोंमें विहारोंका निर्माण कराया।

इस समारोहका विस्तृत विवरण सोमप्रभाचार्यने ही केवल नही किया है अपितु अन्य ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख आया है। नाटककार यशपालने रथके इस महोत्सवको, अपने नाटकमें—जिसका नायक कुमारपाल है, रथयात्रा महोत्सव कहा है। इसमें नागरिकोंको सूचना दी जाती है कि महाराज कुमारपालदेवने रथयात्रा महोत्सव मनानेकी आज्ञा की है, इसलिए समारोहकी समस्त तैयारी होनी चाहिये।[2] हेमचन्द्रके महावीरचरित्रमें भी इस रथयात्रा महोत्सवका विवरण मिलता है।[3]

---

[1]प्रेंखन्मडपफुल्ल सदध्वजपटं नृत्यद्वधूममंडलं
चन्चन्मन्चमुदंचदुच्चकदलो स्तम्भं स्फुरत्तोरणम्।
विध्वग्जैनरथोत्सवे पुरमिदं व्यालोकितुं कौतुका-
ल्लोका नेत्र सहस्र निर्मितकृते धर्मविधे प्रार्थनाम्।

—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७५।

[2]भो भोः पौराः महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति। यज्जिन रथयात्रा महोत्सवोभविष्यति। ततः—

पौराः! कुर्यविपणिपदवीमस्त पांशु पयोभि
र्मुक्ता हारं रचिर वसनैर्हट्ट शोभां विदध्युः
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयेयुर्भवन्तः
पंडस्त्रीभिः सुरगृहसखान् मचकान भूषयेयुः।—

मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

[3]प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति।—

महावीरचरित्रः सर्ग १२, श्लोक ७६।

कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ-यात्रा

एक समय जैनयात्रियोंका एक दल सौराष्ट्र (काठियावाड़)के मन्दिरोंकी तीर्थयात्राके लिए जाता हुआ पाटनमें ठहरा। यह देख कुमारपालके मनमें भी ऐसी ही तीर्थयात्राकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक बड़ी सेनाके साथ आचार्य हेमचन्द्र एवं जैन समाजके सहित कुमारपालने सौराष्ट्रकी यात्रा की। इस तीर्थयात्राके प्रसंगमें वह गिरनार (जूनागढ़) ठहरा, किन्तु शारीरिक निर्बलताके कारण वह पर्वतके ऊपर न जा सका। इसलिए उसने अपने मन्त्रियोंको पूजनके लिए भेजा। यहांसे सारा दल शत्रुंजय पहाड़ीपर स्थित ऋषभदेवके मन्दिरकी ओर अग्रसर हुआ। कुमारपालके आगमनके पूर्व राजाकी आज्ञासे मन्त्री बाहड द्वारा इस मन्दिरकी आवश्यक मरम्मत हुई थी। इस तीर्थयात्राके पश्चात् कुमारपाल राजधानी वापस आया। जब वह लौटा तो उसे गिरनार पर्वतपर न चढ़ सकनेका अत्यन्त खेद रहा। उसने इस आशयका आदेश जारी किया कि उक्त पहाड़ीपर सीढ़ियां बनायी जायं। कवि सिद्धपालके सुझावपर उसने अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर यह कार्य सौंपा। प्रबन्धचिन्तामणि[1] तथा पुरातन प्रबन्धसंग्रह[2]में भी कुमारपालकी इस तीर्थयात्राका विस्तृत विवरण मिलता है।

कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा

आचार्य हेमचन्द्रने कुमारपालके समक्ष जैनधर्मकी द्वादश प्रतिज्ञाएं रखते हुए प्राचीनकालके महान जैनसन्तों, आनन्द तथा कामदेवके साथ ही तत्कालीन पाटनके सबसे धनी जैनचड्डुआका उदाहरण दिया। राजाने

---

[1]"चलियो कुमारयालो सत्रुंजय तित्थ नमणत्थ
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९३।

अगाध श्रद्धाके साथ सभी प्रतिज्ञाए की और इसप्रकार पूर्णतया जैनधर्मम दीक्षित हो गया। राजा सवदा असीम भक्तिके सहित प्रसिद्ध जैन नमस्कार मन्त्रका पाठ करता था और कहा करता था कि जो वस्तु वह अपनी शक्तिशाली सेनासे नही प्राप्त कर सकता था, वह केवल इस मन्त्रके उच्चारणसे सुलभ हो जाती थी। इस मन्त्रकी शक्तिम उसकी इतनी अगाध श्रद्धा थी कि इससे उसके शत्रुओका दमन होता था। गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणका सकट दूर होता और उसके राज्यम कभी अकाल नही पडता था।[1]

जयसिंह रचित कुमारपालचरितके पाचसे लेकर दस सर्गोंमें उन परिस्थितियाका वणन किया गया है, जिनके कारण वह जैनधममें दीक्षित और जैनधर्मके प्रसार प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इसम कहा गया है कि आचार्य हेमचन्द्रके कथनपर उसन सर्वप्रथम मास तथा मदिराका त्याग किया।[2] इसके पश्चात् हेमचन्द्रके आदेशानुसार राजा कुमारपाल उसके साथ सोमनाथ गया। हेमचन्द्रन शिवका आह्वान किया और शिवन प्रकट होकर जैनधमकी प्रशसा की। फलस्वरूप कुमारपालन अभक्ष नियमको स्वीकार किया तथा जैनधमके गूढ सिद्धान्तोपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दीक्षा धारण करते समय उसन मुख्यरूपसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाए की थी—राजरक्षा निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावत् जीवन किसी प्राणीकी हिंसा और आखेट न करना। मद्यमासका सेवन त्याज्य समझना। नित्य जिनप्रतिमाका पूजन-अचन करना। अष्टमी और चतुदशीके सामयिक और पौषध आदि विशेष व्रतोका पालन करना तथा रात्रिको भोजन न करना आदि-आदि।

जयसिंहन आगामी अध्यायमें हेमचन्द्र तथा कुमारपालके मध्य एक

---

[1] पुरातनप्रबन्धसग्रह, पृ० ४२, ४३।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ३१६-४१५।

धार्मिक वादविवाद कराया है। सातव सर्गमें हमें विदित होता है कि उसने हेमचन्द्रसे श्रद्धाधर्म स्वीकार कर राज्यमें पशुहत्यापर प्रतिबन्ध लगाया था।[1] इस ग्रन्थके रचयिताका कथन है कि यह आज्ञा सौराष्ट्र, लाट, मालवा, अोभीकभेदापाट, मारी तथा सपादलक्षदेशमें लागू हो गयी थी।[2] इस आज्ञाका इतनी कठोरतासे पालन होता था कि सपादलक्षके एक व्यापारीने राक्षसके समान रक्त चूसनेवाले एक कीडेकी हत्या कर दी तो उसे चोरकी भाति पकड लिया गया और उसे यूक विहारके शिलान्यासके लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देनेके लिए बाध्य होना पडा।[3]

किराडू शिलालेखमें जो कुमारपालके समयका है, यह लिखा है कि शिवरात्रि चतुर्दशी तथा कतिपय अन्य निश्चित दिनोंमें कुमारपालने राजाज्ञा निकालकर पशुवधका निषेध कर दिया था। राजपरिवारका सदस्य आर्थिक दड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राणदडके लिए प्रस्तुत होकर ही उपर्युक्त दिन किसी पशुकी हत्या कर सकता था।[4] इसी आशयका आदेश रत्नापुरी नगरके एक शिलालेखमें भी प्राप्त हुआ है।[5] इस शिलालेखमें गिरिजादेवीकी उस निषेधाज्ञाका उल्लेख है, जिसमें विशेष तिथियोंको पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा था। इस आज्ञाका उल्लघन करनेवालोंके लिए अर्थदडकी व्यवस्था थी। नवरात्रमें बकरियोंका वध रोक दिया गया था और कुमारपालने अपने मन्त्रियोंको पशुहिंसा रोकनेके लिए काशी भेजा। जयसिंह कृत कुमारपालचरितके आठवें और नवें सर्गमें विभिन्न जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा चैत्यों और मन्दिरोंके निर्माणका वर्णन है। दसवें

---

[1] जयसिंह : कुमारपालचरित, ७वा अध्याय, ५७७।
[2] वही, ५८१-८२।
[3] वही, ५८८।
[4] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४४।
[5] बो० बी० एस० आई०, २०५७, सूची सख्या १५२३।

सर्गमें राजा कुमारपाल अपने गुरुको "कलिकाल सर्वज्ञ"की उपाधि प्रदान करता है।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें भी कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेकी चर्चा आयी है। इस नाटकमें कुमारपालने चार व्यसनोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया था, उसपर विशेष प्रकाश डाला गया है। राज्य द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका जो प्राचीन और परम्परागत नियम चला आ रहा था उसका कुमारपालने निषेध कर दिया था, इसका भी इस नाटकमें उल्लेख हुआ है।[2] नाटकमें राजा अपने दंडपाशिकको द्यूत, मांसाहार, मदिरापान, हत्या-लूट तथा खाद्यपदार्थोंमें मिलावटकी अबंध पद्धतिके दमन और विनाशका आदेश देता है।[3] यह आश्चर्यकी बात है कि वेश्या व्यसन तत्कालीन गुजरातमें गम्भीर पाप न समझा जाता था।[4]

जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा

समस्त जैन ग्रन्थकार कुमारपालके जैनधर्म की दीक्षा लेने के विवरण-पर एकमत हैं। शिलालेखादिके उल्लेखोंके आधारपर यह स्वीकार करना होगा कि उक्त वर्णन, सत्य और ऐतिहासिक घटनाके ही द्योतक हैं। किराडू[5] तथा रत्नपुरा[6] शिलालेख विशेष तिथियोंपर पशुवधका प्रतिषेध

---

[1]कुमारपालचरित : सर्ग १०, १०६। उसने परमार्हतकी उपाधि भी प्रदान की थी।

[2]मोहराजपराजयः अंक ४ तथा ५।

[3]वही, अंक ४।

[4]वही।

[5]ईपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४।

[6]बी० बी० एस० आई० : २०५-७।

करते हैं तो जालोर शिलालेखमें कुमारपालको परमार्हत कहा गया है। इतना होते हुए भी इस तथ्यके प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालने अपने परम्परागत शैवधर्मका कभी तिरस्कार नहीं किया न उसके प्रति अपनी आदर श्रद्धाकी भावनाका ही परित्याग किया। जैन ग्रन्थकारोंने भी लिखा है कि कुमारपाल सोमेश्वरकी आराधना करता था और उसने सोमनाथका मन्दिर निर्मित कराया था।[2]

वेरावल शिलालेखमें कुमारपालको "महेश्वर नृप" कहा गया है। यह शिलालेख सन् ११६९का है और इसीके कुछ वर्ष बाद ही सन् ११७४में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके अधिकांश शिलालेखोंमें शिवकी प्रार्थना अंकित है, तो अनेकमें जैनदेवताओंकी प्रार्थना भी मिलती है। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें उसे 'परमअर्हत' कहा गया है। चित्तौरगढ उत्कीर्ण लेखके प्रारम्भमें ही 'ओम नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिवकी प्रार्थना मिलती है।[3] जैन इतिहासोंमें हेमचन्द्रके प्रभावके प्रति ब्राह्मणोंके द्वेषकी भी चर्चा आयी है। इस संघर्षमें ब्राह्मण सदा पीछे पड़ जाते थे और राजाके कोपभाजन ब्राह्मणोंकी रक्षा दयालु हेमचन्द्र द्वारा ही होती थी। किन्तु जैनोंके साथ राजाके पक्षपातकी बात सन्देहास्पद है। वह समानभावसे शैवों और जैनोंका आदर करता था। कुमारपाल जैन सिद्धान्तोंको हार्दिकतासे स्वीकार करता था और उसके अनुसार

---

[1]इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४-५५। "हेमसूरिप्रबोधित गुर्जर धरावीश्वर परमार्हत चौलुक्य महाराजाधिराज श्रीकुमारपालदेवा"।

[2]द्वयाश्रयकाव्यमें अनहिलवाडामें कुमारपालेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। केदारेश्वर मन्दिरका पुनर्निर्माण भी कराया गया था। वही। मन्दिरोंकी मरम्मतके सम्बन्धमें देखिये वसन्तविलास ३:२६।

[3]इपि० इंडि० : ४१२, सूची संख्या २७९।

मन्दिर बनवानेका उल्लेख है किन्तु इनमें सूर्यका मन्दिर नहीं है। अप्रकाशित सरस्वतीपुराणमें सूर्य मन्दिरका उल्लेख है, जो भायाल स्वामीके नामसे प्रसिद्ध था। कहते हैं कि सहस्रलिंग तालाबपर जब यह स्थित था तो जयसिंह सिद्धराज इसकी आराधना करते थे।[1] प्रसिद्ध जैनमन्त्री वस्तुपालने सूर्य, रत्नादेवी तथा राजादेवीकी मूर्तियोंका प्रतिष्ठापन किया था।[2] कुमारपालकालीन प्रभास पाटन शिलालेखमें काठियावाड़में पाशुपत सम्प्रदायके भी प्रचलित होनेका उल्लेख मिलता है।[3] शिलालेखका विश्लेषण तथा उसका अभिप्राय-अर्थ स्पष्ट करनेपर यह विदित होता है, कि गड बृहस्पतिने पाशुपत सम्प्रदायके प्रचारके लिए प्रयत्न किया था। उसकी दूसरी व्याख्या करनेपर यह भी अर्थ किया जा सकता है कि सोमनाथका मन्दिर गड बृहस्पतिके आगमनके पूर्व पाशुपत मतका केन्द्र था। किन्तु इस मन्दिर तथा यहां प्रवर्तित पाशुपत मत दोनोंका ही पतन हो चुका था, इसलिए गड बृहस्पति उसकी रक्षा करने आया।[4] भाव बृहस्पतिकी वेरावल प्रशस्तिमें भवानीपति (शिव) गणेश तथा सोमकी आर्यना है। गणेश्वर शिलालेखमें वस्तुपाल द्वारा गणेश्वर मन्दिरमें एक मार्ग बनानेका उल्लेख मिलता है।[5] यद्यपि उक्त स्थानका पता नहीं चला है फिर भी इसमें जो तथ्य व्यक्त किया गया है उसके अनुसार १२वीं

---

[1] देवे · महाराजाधिराज, पृ० २९१।

[2] गनेश्वर शिलालेख, डब्लू० एम० आर०, राजकोट १९, २३, २४, २८।

[3] बी० पी० एस० आई०, पृ० १८६।

[4] शिलालेखमें अंकित है कि "गड पाशुपत केन्द्रकी रक्षा करना चाहता था और उनसे कुमारपालसे ध्वस्त सोमनाथके मन्दिरके निर्माणके लिए आर्यना की थी।

[5] द्वयाश्रय · सर्ग १५, श्लोक ९१९।

रातोंमें काठियावाड़में गणदा-पूजन भी प्रचलित था। मध्यकालीन गुजरातमें वैष्णव सम्प्रदायका भी अस्तित्व था। हेमचन्द्रने लिखा है कि जयसिंहने सहस्रलिंग तालाबके तटपर एक ऐसा मन्दिर बनवाया जिसमें दशावतारकी झाकी थी।[1] जयसिंह तथा कुमारपालके समयके दोहाद शिलालेखमें यह अंकित है कि जयसिंहने गोगनारायणका मन्दिर निर्माण करानेके लिए दधिपद्रमें एक मन्त्री नियुक्त किया था।[2] इसी मन्दिरमें कुमारपालके समय और भी दान दिये जानेके उल्लेख मिलते हैं।

विभिन्न मन्दिरों तथा देवालयोंकी व्यवस्था दान दिये हुए ग्रामोंसे होती थी। व्यक्तिगत मन्दिरोंका आर्थिक संचालन जनतापर लगे विशेष 'कर'से होता था और कभी-कभी राजकीय चुंगीगृहको भी अपनी आयका एक हिस्सा मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिए देना पड़ता था। मंगरोल उत्कीर्ण लेखमें उन करोंका विवरण दिया गया है जो चुंगी, द्यूतगृह आदि विभिन्न पदोंसे वसूल किया जाता था। दूकानदारों तथा व्यापारियों द्वारा दिये जानेवाली ऐच्छिक रकमकी भी इसमें चर्चा है। बटुकों और पुजारियोंके वेतन तथा मन्दिरकी व्यवस्था सम्बन्धी अन्य बातोंका भी इसमें उल्लेख है।

धार्मिक सहिष्णुताकी भावना

सभी धर्मके मूलतत्व एक हैं और सभी विभिन्न मार्गोंसे होते हुए एक ही लक्ष्य-स्थानपर पहुंचते हैं। फिर भी धर्मके क्षेत्रमें लोगोंमें सहिष्णुताके साथ संकीर्णता भी पायी जाती रही है। फोर्बस्ने लिखा है कि इस समय दो प्रमुख धर्मों—जैन तथा ब्राह्मणमें परस्पर विरोध था।[3] किन्तु तत्कालीन शिलालेख और प्रभूत जैन साहित्यसे इस तथ्यकी पुष्टि नहीं

[1] इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १५९ ६०।
[2] बॉ० पी० एस० आई० पृ० १५८।
[3] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३५।

होती। फोर्बस्की 'रासमाला'में ब्राह्मण और जैन आचार्योंमें संघर्ष और कटुभावनाको व्यक्त करनेवाली अनेक कहानियोंका उल्लेख मिलता है जिनमेंसे प्रमुख निम्नलिखित है—ब्राह्मण परम्पराके अनुसार कुमारपालने मेवाडके सिसौदिया वंशकी राजकुमारीसे विवाह किया था। जब रानीने राजाकी वह प्रतिज्ञा सुनी कि राजमहलमें प्रवेशके पूर्व उसे हेमचन्द्रके मठमें जाना होगा, तो उसने अनहिलवाडा जाना अस्वीकार किया। कुमारपालके चारण जयदेवने रानीको विश्वास दिलाया और इसपर रानी अनहिलवाडा गयी। उसके आनेके कई दिन बाद हेमाचार्यने सिसौदिया रानीके अपने मठमें न आनेकी बात कही। कुमारपालने रानीसे वहां जानेके लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रानी बीमार पडी और चारणोंकी स्त्रियां उसे अपने घर ले आयीं। चारण उसे घर पहुंचाने ले जाने लगा। जब कुमारपालने यह सुना तो उसने दो हजार घुडसवारोंके साथ पीछा किया। रानीने जब यह सुना तो उसका साहस जाता रहा और उसने आत्महत्या कर ली।[1] पहले ही कहा जा चुका है कि उक्त ब्राह्मणों और चारणोंकी परम्परा, तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्योंकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती और न इस धार्मिक द्वेषकी भावनाका इतिहास-सम्मत सामान्य आधार ही मिलता है।

ब्राह्मणों और जैनोंमें पारस्परिक संघर्षका परिचय करानेवाली एक दूसरी कहानी भी है। एक दिन कुमारपाल जब मार्गसे जा रहा था तो उसने हेमाचार्यके एक शिष्यसे पूछा कि आज मासकी कौन तिथि है। वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी, किन्तु जैन साधुने भ्रमवश पूर्णिमा कह दिया। कुछ ब्राह्मणोंने जब यह सुना तो जैनसाधुकी हंसी उडाते हुए कहा "ये सिर घुटाये हुए साधु क्या जानें कि आज अमावस्या है।" कुमारपालने यह सब सुन लिया था। राजप्रासाद पहुंचते ही उसने हेमाचार्य

---

[1]वही, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

तथा ब्राह्मणोंके प्रधानको बुला भेजा। इसी बीच हेमचन्द्रका शिष्य अत्यन्त दुःखी और लज्जित हो मठमें पहुचा। हेमचन्द्रने उससे सारा विवरण पूछा और दुःखित न होनेकी बात कही। तब तक कुमारपालका सन्देश-वाहक वहा पहुच चुका था। सवाद पाकर हेमाचार्यने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया। कुमारपालने उनसे पूछा कि आज कौनसी तिथि है? ब्राह्मण आचार्यने कहा कि आज अमावस्या है किन्तु हेमचन्द्रने कहा कि आज पौर्णिमा है। ब्राह्मणोंने कहा कि सन्ध्याका चन्द्रमा ही वास्तविक स्थिति बता देगा। यदि पूर्णिमाका चन्द्र निकला तो सभी ब्राह्मण इस राज्यसे निकल जायगे। यदि चन्द्रमा न निकले तो जैनसाधुओंका निष्कासन हो। हेमाचार्यने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मठ वापस पहुचे। उनकी एक सिद्धदेवी थी, उन्हींकी सहायतासे पूर्व दिशामें ऐसी कृत्रिमता उत्पन्न की गयी, जिससे सभीको विश्वास हो गया कि आज पूर्णिमा है। इसके पश्चात् घोषित किया गया कि ब्राह्मण हार गये और सभीको राज्य छोडकर चले जाना चाहिये। दूसरे दिन प्रात कुमारपालने ब्राह्मणोंको बुला राज्य छोडकर चले जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय शकर स्वामीका पाटनमें आगमन होता है। शकर स्वामीने आगे बढकर कहा राज्यसे किसीको निष्कासित करनेकी क्या आवश्यकता है। "नौ बजे समुद्र अपनी मर्यादा सीमा तोडकर सम्पूर्ण देशको उदरस्थ कर लेगा।" राजाने हेमचन्द्रको बुला भेजा और पूछा कि क्या यह सत्य है? हेमचन्द्रने जैन सिद्धान्तोंके अनुसार कहा कि यह ससार न कभी निर्मित हुआ और न कभी नष्ट होगा। शकर स्वामीने एक जलघडी मगवायी और कहा देखना चाहिये क्या होता है। तीनों वहीं बैठ गये। जब नौ बजा तो वे प्रासादके ऊपरी भवनमें पहुचे जहासे उन्होंने देखा कि समुद्रकी लहरें उमडती हुई चली आ रही हैं। लहर बढती गयी और सारा नगर जलमग्न हो गया। राजा तथा दोनों आचार्य ऊपरी मंजिलोंमें चढते रहे किन्तु जलका वेग ऊपरकी ओर निरन्तर बढता ही

गया। अन्तमें वे सातवीं और अन्तिम मंजिलपर पहुंचे। सबसे ऊंचे वृक्ष तथा मन्दिरके शिखर जलमग्न समाधिस्थ थे। उमड़ती हुई समुद्रकी भयंकर लहरोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था। कुमारपालने भयभीत होकर शंकर स्वामीसे बचनका उपाय पूछा। शंकर स्वामीने कहा कि पश्चिम दिशासे एक नाव आवेगी जो इस वातायनके निकटसे ही जायगी। जैसे ही यह हमारे निकट आवे हम उछलकर उसपर बैठ जाय। तीनोंने अपने वस्त्र संभाले और नावमें तत्परतासे बैठ जानेका उपक्रम किया। तत्काल बाद ही एक नौका दिखायी दी। शंकर स्वामीने राजाका हाथ पकड़कर कहा कि हम दोनों नावमें बैठनेमें एक दूसरेकी सहायता करेंगे। इतनेमें नौका वातायनके निकट आयी और राजाने उसमें कूदनेका प्रयत्न किया किन्तु शंकर स्वामीने उन्हें पीछे खींच लिया। हेमचन्द्र खिड़कीसे कूद गये थे। समुद्र और नौका वस्तुतः और कुछ नहीं मायाकी रचना थी। इसके पश्चात् जैन साधुओंपर उत्पीड़न होने लगा और कुमारपाल शंकरस्वामीका शिष्य हो गया।

धार्मिक संघर्षकी इन कथाओंसे उस समय वर्ग विशेषकी धार्मिक संकीर्णताकी स्थितिका परिचय मिलता है। जैनधर्मका अभ्युदय और उत्कर्ष न देख सकनेवाले संकीर्ण लोगोंकी कल्पना ही इन कथाओंका आधार है। न तो इस प्रकारकी घटनाओंका तत्कालीन साहित्यमें उल्लेख मिलता है और न कोई प्रामाणिक एवं मान्य आधार। इन्हें ऐतिहासिक तथ्य न मानकर कपोल कल्पनाकी ही कोटिमें रखना उचित होगा।

नवीन युगका समारम्भ

ब्राह्मण और जैनधर्मकी पारस्परिक सद्भावनापूर्ण स्थिति इस युगकी ऐतिहासिक विशेषता थी। यदि सामाजिक अभ्युत्थानका विचार किया जाय तो विदित होगा कि जैन धर्मके अभ्युदयके साथ देशमें एक नवीन जागरण और संस्कृतिके युगका समारम्भ हुआ था। कुमारपालप्रतिबोध

तथा मोहराजपराजयके रचयिताओंने समाजमें प्रचलित उन बुराइयोका उल्लेख किया है जिनसे सामाजिक स्तर निम्नतर होता जा रहा था। पशु हिंसा, द्युत क्रीडा, मास, मदिरा सेवन, वेश्याव्यसन, शापण आदिसे जनताका धन धर्म विलुप्त और मानसिक पतन होता जा रहा था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालने किस प्रकार विशेष तिथियोंको पशुवधका प्रतिषेध कर दिया था। यह तथ्य विभिन्न जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नही किराडू[1] तथा रत्नापुर[2] शिलालेखोंम भी उत्कीर्ण हैं। यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयम कुमारपालको अपने दडपाशिकको यह आदश देते हुए चित्रित किया है कि जूआ, मासाहार, मदिरापान तथा पशुहत्याके पापका दमन किया जाय। चोरी और खाद्यपदार्थोंमें मिलावटको नगरसे निष्कासित कर दिया गया था। दडपाशिक इनकी खोजम जाता है और सबको पकडकर लाता है। सभी राजाके समक्ष उपस्थित किए जाते हैं। ये अपने पक्ष समर्थनका तर्क देते हुए क्षमाकी याचना करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उन्हीके द्वारा राज्यको बहुत भारी आय होती है। किन्तु राजा उनकी एक भी नही सुनता और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[3]

इस समयकी एक क्रूर राजनीतिक परम्परा और प्रथा यह थी कि यदि कोई राज्यमें निस्सन्तान मर जाता तो उसकी समस्त सम्पत्ति राज्य अपने अधिकारमें कर लेता था। एसे व्यक्तिकी मृत्यु होते ही, राज्याधिकारी उसके घर तथा उसकी सारी सम्पत्तिपर जब अधिकार कर लेते और जब पचकुलकी नियुक्ति हो जाती, तभी शव अन्तिम सस्कारके लिए सम्बन्धियोको दिया जाता था। इससे जनताका घोर कष्ट और व्यथा होती थी। जैनधर्मकी शिक्षाका राजापर सबसे बडा जो प्रभाव दृष्टिगत

---

[1]इपि० इडि० . खड ११, पृ० ४४।

[2]वी० पी० एस० आई० २०५-७, सूची सख्या १५२३।

[3]मोहराजपराजय चतुर्थ अक, पृ० ८३-११०।

हुआ, वह यह कि उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका राजनियम (मृतधनापहरण) वापस ले लिया।[1] निर्वंशकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारके प्रजापीडक नियमकी कुमारपालपर कैसी घोर प्रतिक्रिया हुई और उसका कैसा प्रभाव पडा था, इस सम्बन्धमें द्वयाश्रय और मोहराजपराजयमें विशद विवरण मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्यने द्वयाश्रयमें ऐसे एक प्रकरणका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन जब रात्रिके समय कुमारपाल प्रगाढ निद्रामें सो रहा था तो निस्तब्धतामें उसे एक स्त्रीका रुदन सुनाई पडा। वेश बदलकर जब वह राजमहलसे उक्त स्थानपर पहुचा तो उसने देखा कि वृक्षके नीचे एक स्त्री गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्याकी तैयारी कर रही है। राजाने उससे इसका कारण पूछा। तब उस स्त्रीने अपने पति और पुत्रकी मृत्युका घटना प्रकरण बताते हुए कहा कि अब मेरी समस्त सम्पत्तिपर राजाका अधिकार हो जायगा और मेरा कोई आधार न रह जायगा। इससे अच्छा है कि मैं आत्मघात कर लू। इसपर राजाने उसे ऐसा करनेसे मना किया और आश्वासन दिया कि उसकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारी अधिकार न करेंगे। प्रात.काल राजाने मन्त्रियोको बुलाकर 'मृतधनापहरण'को समाप्त करते हुए उसके निषेधकी आज्ञा निकाली। कहते है कि इसप्रकार प्रतिवर्ष राजकोषमें एक करोड रुपये आते थे, किन्तु कुमारपालने इसकी तनिक परवाह न की और उक्त प्रथाका निषेध कर दिया। इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना-का वर्णन यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें मिलता है। कुबेर नामक करोड़पति नगरसेठकी मृत्यु हो जाती है। वह नि.सन्तान था पर उसकी माता जीवित थी। वह शोकमें विह्वल थी। पुत्रशोक और धनशोकके कारण उसके दु खका पारावार न था। राजाको इसकी सूचना मिलती है। वह बहुत उद्विग्न होता है। राज्यकी क्रूर नीतिका बीभत्स तथा

---

[1]मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७० ।

शोकसतप्त परिवारका करुण दृश्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। वह कुबेरकी माताके यहा जाता है। कुबेरके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित होता है। कुबेरके मित्रसे वह सारा विवरण पूछता है। कुमारपाल, कुबेरकी माताको सान्त्वना देता है और कहता है कि मै भी तुम्हारा ही पुत्र हू। उधर राज्यके अधिकारी कुबेरकी समस्त सम्पत्तिको एकत्रकर ढेर लगा देते है। कुमारपाल नगरसेठो और महाजनोंके सम्मुख घोषणा करता है कि आजसे निस्सन्तान मृतकोके धनको राज्यकोषमें लेनेके नियम-का मै निषेध करता हू। राजा अपने राजप्रासादमें लौटता है और मन्त्रियो-से परामर्शकर निषेधाज्ञा घोषित कराता है—

निःशूकैः शकित न यद्भूपतिभिस्त्यक्तु क्वचित् प्राक्तनै.
पत्न्या. क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
आपायोधिकुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धन
विभ्राणः सदय प्रजासु हृदय मुंचत्यय तत् स्वयम्॥

कुमारपालके इस महान सामाजिक और राजनीतिक सुधारकी प्रशसा करते हुए जैन आचार्य हेमचन्द्र कहते है —

न यन्मुक्तं पूर्वैः रघु-नहुष-नाभाक-भरत
प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
विमुञ्चन सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
कुमारक्ष्मापाल! त्वमसि महता मस्तकमणिः॥

निस्सन्तान मृतजनकी सम्पत्तिको राज्यकोषमें न लेनेकी घोषणा ऐतिहासिक और युगप्रवर्तक थी। सत्ययुगके महान राजा रघु, नहुष, नाभाक और भरत आदि परमधार्मिक नरेशोने भी जैसी कीर्तिका अर्जन न किया था वैसी धवलकीर्ति कुमारपालने अपने इस कार्यसे अर्जित की। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने लिखा है कि "बारहवी शतीमें गुजरातके राजा कुमारपालने बडी तत्परतासे पशुओंके वधका निषेध किया और इस नियमका उल्लघन करनेवालोपर कठोर दडकी व्यवस्था की। एक अभागे व्यापारीको एक विषैले कीडेकी हत्याके अपराधमें अनहिलवाडाके विशेष

न्यायालयमें उपस्थित किया गया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उक्त सम्पत्तिसे एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस विशेष न्यायालयकी कार्यसीमा और निर्णय, अशोकके धर्ममहामात्रोंके कार्यों एवं निर्णयोंकी भांति थी।[1]

जैनधर्मकी शिक्षासे प्रभावित होकर कुमारपालने एक सत्रागारकी स्थापना की जहां अपंग जैनसाधकोंको भोजन वस्त्र दिया जाता था। इसीके निकट एक मठ (पोषधशाला)का भी निर्माण किया गया जहां धार्मिक प्रवृत्तिके लोग एकान्त साधना कर सकते थे। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्थाका भार सेठ अभयकुमारको सौंपा गया था।[2] इस-प्रकार धर्मके प्रभावसे राज्यनीति और समाजके स्तर दोनोंमें परिवर्तन हुए थे। निर्धन और असहायकी सहायताके लिए मानवीय हितके कार्य प्रारम्भ किये गये। इन धार्मिक तथा सामाजिक नव व्यवस्थाओंके नियोजनने भारतीय इतिहास और समाजको अत्यधिक प्रभावान्वित किया था, और उसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कुमारपालकी इस अहिंसा प्रवर्तक रीतिका यह फल है कि वर्तमानकालमें भी सबसे अधिक अहिंसक प्रजा, गुजराती प्रजा है और सबसे अधिक परिमाणमें अहिंसा धर्मका पालन गुजरातमें होता है। गुजरातमें हिंसक यज्ञ-याग प्रायः उसी समयसे बन्द हो गये है और देवी-देवताओंके निमित्त होनेवाला पशुबध भी दूसरे प्रान्तोंकी तुलनामें बहुत कम है। गुजरातका प्रधान किसान वर्ग भी मांसत्यागी है। भले ही अतिशयोक्ति हो और उसका उपहास भी हो, किन्तु यह तथ्य है कि इसी पुण्यमय परम्पराके प्रतापसे जगतकी सबसे श्रेष्ठ अहिंसामूर्ति महात्माको जन्म देनेका अद्वितीय गौरव भी गुजरातको प्राप्त हुआ है।[3]

---

[1] विंसेंट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२। [2] कुमारपाल प्रतिबोध। [3] मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १८।

साहित्य और संस्कृति

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके संरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पड़ा और फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढसी आ गयी। इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भंडारोंमें भरे पड़े हैं। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भंडारोंमें रखे ताडपत्रकी पांडुलिपियोंकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पड़ता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनायें मिलती हैं। विंटरनित्सको उस समय तक जितनी रचनाएं प्राप्त हुई थी. उनका विभाजन उसने प्रबन्धकाव्य. काव्य. कोश तथा उपदेशात्मक

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके संरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पडा और फलस्वरूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढसी आ गयी। इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भंडारोंमें भरे पडे हैं। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भंडारोंमें रखे ताडपत्रकी पांडुलिपियोंकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है, यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पडता है। इनमें व्याकरण, नाटक, काव्य, दर्शन, वेदान्त, इतिहास आदिकी प्रभूत रचनायें मिलती हैं। विंटरनित्सको उस समय तक जितनी रचनाएं प्राप्त हुई थी, उनका विभाजन उसने प्रबन्धपरक, काव्य, कोश तथा उपदेशात्मक साहित्यके अन्तर्गत किया है।[2] श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने भी प्राप्य सामग्रीपर विश्लेषण और विचार किया है।[3]

---

[1] डिसक्रिपटिव कैटलाग आव मैन्यूस्क्रिप्ट इन जैनभंडारस् एट पाटन : जी० ओ० एस०, ७५, बड़ौदा १९३७।

[2] हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर : खंड २, पृ० ५०३-१४।

[3] गुजरात एंड इटस् लिटरेचर : पृ० ३६-४७

जयसिंह और कुमारपाल साहित्यके महान संरक्षक थे। वडनगर प्रशस्ति (३०वी पंक्ति)मे कहा गया है कि जयसिंह सिद्धराजने श्रीपालको अपना भाई माना था और वह कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। प्रवन्धोमें इस वातका उल्लेख है कि कवि चक्रवर्ती श्रीपाल जयसिंहदेवका राजकवि था। वीरोचन पराजय उसकी प्रमुख कृति थी। वह दुर्लभराज मेरु तथा श्रीस्थल सिद्धपुरम रुद्रमहालयके लिए प्रशस्ति लिखता था, इसका वर्णन प्रभावकचरितमें मिलता है।[1] पाटन अनहिलवाडाके निकट जयसिंह द्वारा निर्मित सहस्रलिंग तालावकी प्रशसामें श्रीपालने जो प्रशस्ति लिखी थी, उसका उल्लेख मेरुतुगने भी किया है।[2] इस प्रशस्तिम लिखा है कि कुमारपालके समय भी वह अपने पदपर बना रहा। सोमप्रभाचार्यने इसका उल्लेख किया है कि कवि सिद्धपाल कुमारपालके राजदरवारमें था।[3] कुमारपालकी दिनचर्याका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोकी सभामें उपस्थित हो धार्मिक एव दार्शनिक विषयोपर विचार विमर्श करता था।[4] इनमे कवि सिद्धपाल मुख्य थ और ये सदा राजाको कहानिया तथा कथा प्रसग सुनाकर प्रसन करते थे।[5] फोर्वस्ने भी लिखा है कि कार्य समाप्त हो जानेपर पडित और विद्वान आते थे और अमूल्य साहित्य तथा व्याकरणपर विचार एव विवेचन होता था।[6] इतनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि कुमारपाल महान् साहित्यप्रेमी था।

---

[1]प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० २०६-८।
[2]प्रवन्धचिन्तामणि : पृ० १५५-६।
[3]कुमारपालप्रतिबोध।
[4]वही, पृ० ४२३।
[5]वही, पृ० ४२८।
[6]रासमाला : अध्याय १३, पृ० २३७।

हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियां

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने समयका महापंडित तथा महान प्रतिभा-सम्पन्न ग्रन्थकार हुआ है। कहा जाता है कि उसने साढे तीन करोड श्लोको-की रचना की थी।[1] उसकी प्रथम रचना सिद्ध हेम शब्दानुशासन है। यह आठ अध्यायोकी रचना है जो सिद्धराजकी प्रार्थनापर उसके स्मारक रूपमें प्रस्तुत की गयी थी। हेमचन्द्रने स्वय इस रचनापर वृहत टीका लिखी जो अष्टदश सहश्रीके नामसे विख्यात है। इसीके साथ एक न्यास भी लिखा गया जो चौरासी हजार ग्रन्थोके बराबर था। अपने नवीन व्याकरणके नियमोका उदाहरण प्रस्तुत करने तथा चौलुक्य राजाओंके गौरवगानके निमित्त उसने द्वयाश्रय महाकाव्यकी रचना की। इसका, कुमारपालके राजत्वकालका प्राकृत अश, कुमारपालके शासनकालमें ही जोडा गया। उसके व्याकरणकी अन्य टीकाओकी भी इसी समय रचना हुई थी। अनेकार्थ सग्रहके साथ अभिधान चिन्तामणि देशिनाममाला तथा निघटु, काव्यानुशासन विवेक, छन्दोनुशासन तथा प्रमाणमीमासाकी रचना सिद्धराजके शासनकालमें ही हुई थी। इसप्रकार सिद्धराजके राज्यकालमे ही हेमचन्द्राचार्य अपनी अधिकाश साहित्य साधना कर चुके थे। कुमारपालके शासनकालमें उन्होने जो रचनाए की वे अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ थे। योगशास्त्र तथा वीतरागस्तु, कुमारपालके उपदेशार्थ प्रणीत हुए। तीर्थंकरोके जीवनदर्शनके ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितकी' रचना उसने कुमारपालकी प्रार्थनापर की थी। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम सवत् ११४५में हुआ था और विक्रम सवत् १२२९में चौरासी वर्षकी प्रौढावस्थामें उसका निधन हुआ। भाषण साहित्य और व्याकरणके क्षेत्रमे उसकी महान देन आज भी इतिहासके सुनहरे पृष्ठोपर अकित है।

---

[1] व्याकरण पचाग प्रमाणशास्त्र प्रकाणमीमासा
छन्दोलकृति चूडामणी च शास्त्रेविभुर्व्यहृत।

सोमप्रभाचार्य और उसकी रचनाएं

कुमारपालप्रतिबोधका रचयिता सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध जैन विद्वान था। कुमारपालकी मृत्युके ग्यारह वर्ष बाद विक्रम संवत् १२४१में उसने उक्त रचना की। इससे स्पष्ट है कि वह कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समसामयिक था। राजकवि श्री श्रीपालके पुत्र सिद्धपालके निवास स्थानपर रहकर उसने इस ग्रन्थकी रचना की। यहीं रहकर उसने अपनी दूसरी महान कृति 'सुमतिनाथचरित' का भी प्रणयन किया। कुमारपाल-प्रतिबोधके अतिरिक्त उसके तीन ग्रन्थोंमें सुमतिनाथचरित उल्लेख्य है। इसमें पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथकी जीवन गाथा वर्णित है। कुमारपाल-प्रतिबोधके समान ही इसका अधिकांश भाग प्राकृत भाषामें लिखा गया है और उसीकी भांति इसमें जैनधर्मकी शिक्षाको समझानेवाली कहानियां भी हैं। इसमें साढे नौ हजार श्लोक हैं। सूक्ति मुक्तावली, सोमप्रभाचार्य-की उल्लेखनीय रचना है, जिसमें मिश्रित प्रकारके सौ श्लोक हैं। इसका एक नाम सिन्दूरप्रकर भी है क्योंकि इसके प्रथम श्लोकका प्रथम शब्द सिन्दूरप्रकर ही है। जैनोंमें इस ग्रन्थकी बहुत प्रसिद्धि है और बहुतसे स्त्री-पुरुष इसे कंठस्थ करते हैं। इनकी रचनाशैली भर्तृहरिके नीति-

---

एकार्थानेकार्था देश्या निर्घट इति च चत्वारः
विहिताश्च नामकोशा भुवि कवितानत्युपाध्यायाः।
भ्युत्तरषष्टि शलाका नरेश व्रत गृहि व्रत विचारे
अध्यात्मयोगशास्त्रं विदधे जगदुपकृति विधित्सुः।
लक्षण साहित्यगुण विदधे च द्वयाश्रय महाकाव्यम्
चक्रे विंशतिमुच्चैः स वीतराग स्तवानाच
इति तद्विहित ग्रन्थसंख्यमेव हि न विद्यते
मामपि न विदन्त्येषा मादृशा मन्दमेधसः।

—प्रभावकचरित।

शतकके समान है। इसम हिंसाके विरुद्ध, सत्य, आस्तेय, पवित्रता तथा सत्के सम्बन्धमें छोटे किन्तु गभीर अर्थवाले श्लोक है। इसकी रचनाशैली अत्यन्त हृदयग्राही, सरल और बोधगम्य है।

सोमप्रभाचार्यकी तीसरी रचनाका नाम है शतार्थकाव्य। सस्कृत भाषापर उसके आश्चर्यजनक अधिकारका पता उसकी इस रचनासे लगता है। इस रचनामें वसन्त तिलक छन्दमें केवल एक ही श्लोक है और इसे सौ प्रकारसे समझाया गया है। इसी कृतिसे उसका नाम "शतार्थिक' पडा और इसी नामसे बहुतसे बादके ग्रन्थकारोने उसका नामोल्लेख किया है।[1] सोमप्रभाचार्यने इस ग्रन्थमें अपने समसामयिक लोगोका उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक रूपमें किया है। इनमें देवसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य जैसे जैनधर्मके आचार्योका वर्णन है, तो क्रमसे हुए गुजरातके चार राजा जयसिंहदेव, कुमारपाल, अजयदेव तथा मूलराजका भी विवरण है। इनके अतिरिक्त इसमें अपने समयके सर्वश्रेष्ठ नागरिक कवि सिद्धपाल और उसके दो गुरुओ अजितदेव तथा विजयसिंहकी भी चर्चा आयी है। सोमप्रभाचार्यकी चार रचनाओमें "सुमितनाथचरित"की रचना कुमारपालके शासनकालमें हुई थी।

राजसभामे विद्वान मंडली

कुमारपालके महामात्य तथा सचिव विद्वान थे। उसने अपनी राज-सभामें विद्वान, विशेषत सस्कृत भाषाके कवियोको रखनेकी परम्परा बनाये रखी। उस समय दो प्रमुख विद्वान रामचन्द्र और उदयचन्द्र थे। ये दोनो ही जैन थे। रामचन्द्रका उल्लेख गुजराती साहित्यमें बारम्बार

---

[1] "सोमप्रभोमुनिपतिर्विदित शतार्थी"—मुनिसुन्दर सूरिकृत गुर्वावली

ततः शतार्थिक ख्यात श्रीसोमप्रभसूरिराट्।

—गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्न समुच्चय।

आया है। वह अपने समयका श्रेष्ठ विद्वान था। उसने "प्रबन्धशत"की रचना की है। उदयनकी मृत्युके पश्चात् कपर्दी कुमारपालका महामात्य नियुक्त हुआ। कपर्दी विविध शास्त्रोंका ज्ञाता होनेके अतिरिक्त संस्कृत भाषाका कवि भी था। कुमारपालके शासनकालमें उस युगका सबसे महान जैन पंडित हेमचन्द्र उसका प्रधान परामर्शदाता था। कपर्दीकी विद्वत्ताकी एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी है। इसके अनुसार कुमारपालके दरबारमें सपादलक्षके राजाके दूतके आनेपर राजाने उससे साभर प्रदेशके राजाकी कुशलता पूछी। जब दूतने उत्तर दिया कि "उनका नाम विग्रहबल (संसारकी शक्ति) है फिर भला उनकी सदा कुशलतामें क्या सन्देह है? इसपर राजाके पास खड़े कपर्दी मन्त्रीने, जो कुमारपालका प्रिय पात्र विद्वान कवि था, "शुल" और "शुवल" धातुका अर्थ शीघ्रजाना बताते हुए कहा—वह है विग्रहबल, जो (ही) चिड़ियाके समान शीघ्र उड़ जाता है। दूत जब स्वदेश लौटा तो उसने इसकी चर्चा की। इसपर सपादलक्षके राजाने विद्वानोंसे परामर्शकर विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूत कपर्दीने इस नामका भी ऐसा हास्यास्पद अर्थ किया कि इसके बाद राजाने कपर्दीके भयसे अपना नाम कवि बान्धव रख लिया।[1]

भाषा, साहित्य और शास्त्रोंकी रचना

इस समय हेमचन्द्र व्याकरणशास्त्रका सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रणेता हुआ। संस्कृतमें लिखे नौ व्याकरणोंकी पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं, इनमें विक्रम संवत् १०८०का "बृद्धिसागर"[2] नामक ग्रन्थ जो जावालीपुर आधुनिक जालोरमें लिखा गया था, मिला है। हेमचन्द्रने प्राकृत तथा संस्कृत दोनोंमें रचनाएं की हैं। प्राकृत भाषामें उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति

---

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९०।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात, अध्याय १२, पृ० २५०।

शब्दानुशासन है। इसमें ११वी १२वी शतीके अपभ्रंश तथा आधुनिक प्राचीन गुजराती भाषाके पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्धका अध्ययन किया जा सकता है। हेमचन्द्रका द्वयाश्रय काव्य, व्याकरणशास्त्र होनेके साथ-साथ कुमारपाल तक चौलुक्यकालीन राजाओंका इतिहास भी है।

चौलुक्योंके समय नाटकके क्षेत्रमें दो प्रमुख नाटककार दृष्टिगत होते हैं। इनमें एक जयसिंह और दूसरे यशपाल हैं। पहलेकी कृति हम्मीरमदमर्दन है और दूसरेकी मोहराजपराजय।[1] नाटककार यशपालने अपनेको कुमारपालके उत्तराधिकारी चक्रवर्ती अजयपालके चरणकमलमें विचरण करनेवाला हंस कहा है। अजयदेवने सन् १२२९से १२३२ तक शासन किया। इसलिए नाटकके प्रणयनकी तिथि इसीके मध्यमें निश्चित की जा सकती है। मोहराजपराजय पाच अंकोंका एक रूपक है। इसमें कुमारपालके द्वारा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेका विशद चित्रांकन किया गया है। हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराजपराजय दोनों नाटकोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समयके नाटकोंकी जो पाडुलिपियां प्राप्त हुई हैं उसमें कालिंजरके परमार्दिदेव (सन् ११६५–१२०३)के मन्त्री वत्सराजके छ नाटक हैं।[2] इनसे गुजरातके अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक सम्पर्कका परिचय होता है।

कविताके क्षेत्रमें इस समयकी सर्वाधिक महत्त्वकी रचना संस्कृत भाषामें रचित उदयसुन्दरी कथा है।[3] इसका रचयिता लाटदेशका निवासी सोड्ढल है। इसमें तत्कालीन इतिहास तथा साहित्य सम्बन्धी उपयोगी जानकारी है।

तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा वेदान्त सम्बन्धी पाडुलिपियां भी प्राप्त

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीजमें प्रकाशित। संख्या ९, १०।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५०।

[3] गायकवाड ओरियंटल सिरीज : संख्या ११।

हुई हैं। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी पांडु-लिपि शान्तारक्षितकी तत्वसंग्रह[1] रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पंजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरात-पर प्रभाव ही नहीं परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवीं शताब्दीमें सांस्कृतिक एकताने, देशके विगत छोरोंको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक हैं। 'वसन्तविलास', सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती है। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्ता-मणि, विचारश्रेणि, पेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एवं संस्कृत साहित्यमें प्रभूत रचनाएं होती हैं। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर'से जोड़ते हैं। नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अंगोंकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमें, राज्यसंरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा संरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१।

शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री बहड तथा वायड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रों सर्वदेव तथा शभासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार"का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके साथके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें उसने चौबिस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तियां स्थापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार"का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित थीं। इन मन्दिरोंके शिखर भाग स्वर्णमंडित थे। मध्यके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरोंमें "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रखी काष्ठपर अंकित कलात्मक वस्तुएं हैं। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। संभवतः उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकड़ीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोंके ध्वसावशेष भी नहीं मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिनमें चावडा राजा रहते थे।[1] फोर्बस्ने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

[1] "इह धवलहरेसु चिर चावुक्कडराय लालिओ वसियो"।
—मोहराजपराजय अंक ४, पृ० ४७।

हुई है। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियां प्रकाशित हो चुकी है। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी पाडुलिपि शान्तारक्षितकी तत्वसग्रह[1] रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभास कृत पजिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरात-पर प्रभाव ही नही परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवी शताब्दीमें सास्कृतिक एकताने, देशके विभिन्न छोरोको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक है। 'वसन्तविलास', सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती है। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि, विचारश्रेणि, पेरावली, प्रभावकचरितका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एव सस्कृत साहित्यमें प्रभूत रचनाए होती है। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागर'से जोडते है। नागर ब्राह्मणोका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अगोंकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमें राज्यसरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा सरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय १२, पृ० २५१।

शासनकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमारपाल महान् निर्माता था। उसने पाटनमें मन्त्री बहड तथा बाहड परिवारके गर्गसेठके दो पुत्रों सर्वदेव तथा शंभासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार"का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके सायके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें उसने चौबिस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण, रजत तथा पीतलकी मूर्तिया स्थापित की। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार"का निर्माण कराया, जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित थी। इन मन्दिरोंके शिखर भाग स्वर्णमंडित थे। मध्यके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरोंमें "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रखी काष्ठपर अंकित कलात्मक वस्तुएं है। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। सभवतः उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकड़ीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोंके ध्वंसावशेष भी नही मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिनमे चावड़ा राजा रहते थे।[1] फोर्बस्ने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

---

[1] "इह धवलहरेसु चिरं चावुक्कडराय लालिओ वसियो"।
—मोहराजपराजय अंक ४, पृ० ४७।

है कि राजाका भवन "राजपायीव" कहा जाता था, जहा राजप्रासादके अतिरिक्त अन्य राजकीय भवन भी थे। यह वीति स्तम्भोसे अलङ्कृत किया जाता था। घटिका द्वार ही नगरद्वार था। यह नगरकी दिशामें खुलता था। मुख्य गलीमें तीन द्वारोकी त्रिपोलिया होती थी।[1]

चौलुक्योके कालकी सैनिक इमारतोमें किलोके ध्वसावशेष ही अब बच गये है। ये और कुछ नही अपितु नगरके चतुर्दिक विशाल दीवालके रूपमें है। उस समय जैसा एक शिलालेखमें कहा गया है इन्हे "प्रकार" कहते है। वडनगर प्रशस्तिमे लिखा है कि एक ऐसा "प्रकार" कुमारपालने आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) नगरके चतुर्दिक बनवाया था।[2] वडनगरकी उक्त दीवारका अवशेष भी अब नही मिलता, क्योकि वर्गेसने भी इसका उल्लेख नही किया है। हा, उसने नगरके उत्तरकी बाहरी दीवारोका उल्लेख अवश्य किया है।[3]

चौलुक्यकालीन ध्वसावशेषोमें धवोई तथा झुनजूवाडाके किले अध्ययन करने योग्य है। धवोईकी दीवारें प्राय ध्वस्त होकर गिर गयी है, किन्तु मुख्यद्वारके अवशेषसे उसकालके द्वारोकी सजावट तथा कलात्मक योजनाका अनुमान किया जा सकता है। सम्भवत सर्वप्रथम धवोईके चतुर्दिक दीवार जयसिंह सिद्धराजने बनवाई। वर्गेसका कथन है कि चार मुख्य द्वारोमें वडोदा द्वार सबसे कम क्षतिग्रस्त है। इसमें तत्कालीन वास्तुकलाका स्वरूप देखा जा सकता है। वर्गेसने झुनजूवाडामें एक ऐसे और द्वारका उल्लेख किया है, जो सम्भवत उस पहाडी किलेका होगा जिसे चौलुक्योने सौराष्ट्रसे होनेवाले आक्रमणोके प्रतिरोध निमित्त निर्मित

---

[1] रासमाला - अध्याय १३, पृ० २३७।

[2] इपि० इडि० : खड १, पृ० २९३।

[3] वर्गेस, ए० एस० डब्लू० आई० ७९, ८२-८६।

किया होगा।[1] इस द्वारपर अंकित कला भी घवोईसे प्रायः साम्य रखती है। हां, इसमें कतिपय भिन्न वस्तुएं भी हैं जो घवोईमें नहीं मिलती। ये हैं अश्वपर सवार मनुष्य, शार्दूल तथा नृत्य करती हुई मूर्तियां।[2]

इस कालके इतिहासों तथा शिलालेखोंसे झील, तालाब, वापी, कूप आदिके निर्माणका पता लगता है। ये राजकीय संरक्षणमें भी बनते थे और जनता द्वारा भी। भीमप्रथमकी रानी उदयमतिने अनहिलवाडामें रानी वाप बनवाया। कर्णने मोढ़ेरा तथा दधिपद्रके निकट रुपन नदीपर कर्णसागरका निर्माण कराया। इसीप्रकार सिद्धराज जयसिंहने सहस्रलिंग नामक विशाल तालाब बनवाया।[3] जयसिंहकी माता रानी मीनलदेवीने लगभग सन् ११००में वीरमगांवमें मानसूर झील बनवायी।[4] इसका आकार कुछ वक्र प्रतीत होता है और यह शंखाकार प्रतीत होती है।[5] इसमें जल तक पहुंचनेके लिए सीढ़ियां तथा घाट भी बने हैं। घाटपर प्राचीन समयके ५२० मन्दिरोंमेंसे अब केवल ३५७ ही छोटे मन्दिर रह गये हैं।[6] इन्हीं मन्दिरोंके अवलोकनसे इस बातकी कल्पना सम्भव हो सकती है कि सहस्रलिंग तालावमें एक हजार एक शिवलिंगकी स्थापना कैसे हुई।

सोमनाथका मन्दिर

गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके समय सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है। प्रबन्धचिन्तामणिमें

---

[1] वर्गेस : ए० के० के०, पृ० २१७।
[2] वही।
[3] ए० एस० डब्लू० आई० : ९, पृ० ३९।
[4] आर्किलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्ट सर्किल : अध्याय ९, पृ० ३९।
[5] वही, अध्याय ८, पृ० ९१।
[6] वही।

मेरुतुंगने लिखा है कि जब कुमारपालने हेमाचार्यके गुरु श्रीदेवसूरिसे अपना सुयश चिरस्थायी बनाय रखनेके सम्बन्धमें पूछा, तो श्रीदेवसूरिने कहा सोमनाथका एक नया मन्दिर पत्थरका बनवाओ जो युगांतर स्थायी रहे। लकड़ीका बना मन्दिर समुद्रकी लहरोंसे क्षतिग्रस्त हो गया है।

कुमारपालने इसे स्वीकार किया तथा एक मन्दिर निर्माण समिति नियुक्त की जिसे पंचकुल कहा जाता था। इस पंचकुल अथवा समितिके अध्यक्ष सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी ब्राह्म गडभाव बृहस्पति थे। सोमनाथ मन्दिरका अब नवनिर्माण हुआ है। उसके पूर्व समुद्रतटपर लहरोंसे क्षत विक्षत जिस मन्दिरका गर्भागार मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया गया था तथा जिसका शिखर भाग छिन्न विच्छिन्न हो गया था, यह उसी मन्दिरका अवशेष था, जिसे कुमारपालने बनवाया था। यहाकी वास्तुकला तथा शिल्पकला कुमारपालकालीन अन्य भवनों एवं मन्दिरोंमें पायी जानेवाली कलासे भी साम्य रखती थी। कुमारपालके बनवाय सोमनाथ मन्दिरको बादके मुसलिम शासकोंने अनेकानेक बार पुनः क्षति पहुचायी। इसके स्पष्ट विवरण मिलते हैं। १३०० ईस्वीमें अलफखानने, १३९०में मुजफ्फर द्वारा, १४९०के लगभग महमूद बगडा, तथा मुजफ्फर द्वितीय द्वारा सन् १५३०में इस मन्दिरको क्षति पहुचायी गयी।

कुमारपालके बाद खेंगार चतुर्थ (१२७९-१३३३म) द्वारा सोमनाथका पुनर्निर्माण बहुत प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजीने जब सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किया था, उसके पश्चात् ही उक्त नामके जूनागढके चौदहवें राजाने जिसका दो गिरिनारके शिलालेखोंमें उल्लेख मिलता है, सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। गिरिनार शिलालेखमें जूनागढका उक्त राजा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें उल्लिखित है।

सोमनाथके मन्दिरके निर्माणका वर्णन प्रभासपाटन शिलालेखमें मिलता है। यह भद्रकाली मन्दिरके निकट एक पत्थरपर अंकित है। पाटनमें भद्रकालीका एक छोटासा प्राचीन मन्दिर है। इसी भद्रकाली

मन्दिरके द्वारके निकट दीवारकी ओर एक ओरसे खडित शिलामें आदिकालसे सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी कहानीका उल्लेख है। इस शिलालेखमे हमें सोमनाथके ऐसे विवरण प्राप्त होते है, जिनका अन्यत्र कहींसे पता नही लगता। इस शिलालेखके दाहिनी ओरके पत्थरका कोना टूटा हुआ है, इससे लेखकी कतिपय पक्तिया अस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त शिलालेख सुरक्षित तथा एकदम सुस्पष्ट है।

यह शिलालेख सन् ११६९ तथा वल्लभी सवत् ८५०वा है। इसमे सोमनाथ मन्दिरके निर्माण विषयक प्राचीन गाथाका जो उल्लेख है वह इस प्रकार है—सोमेशदेव (सोमनाथ)का मन्दिर सर्वप्रथम स्वर्णका था और इसे चन्द्रमाने बनवाया था। इसके पश्चात् रावणने चादीका सोम मन्दिर निर्मित कराया। श्रीकृष्णने इसे लकडीका बनवाया। सम्राट कुमारपालके समय सोमनाथका यह मन्दिर गड बृहस्पतिके निरीक्षणमें निर्मित हुआ था।

कुमारपालने बहुतसे जैन चैत्य और मठ भी बनवाये। स्तम्भतीर्थ या कैम्बेमें उसने सागल वसहिकके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, जहा हेमचन्द्रने दीक्षा ली थी। जिस महिलाने विपत्तिकालमें उसे जौका आटा तथा दही खिलाया था, उसकी स्मृतिमे उसने पाटनमे "करम्बकविहार" नामक एक मन्दिर निर्मित कराया। इतना ही नही प्रारम्भिक जीवनके पर्यटन-कालमें मूपककी जो हत्या हो गयी थी, उसका प्रायश्चित करनेके लिए उसने "मूपकविहार" नामक मन्दिर बनवाया। हेमचन्द्रके जन्मस्थान धन्धूकमें उसने "झोलिका विहार" निर्मित कराया। इन मन्दिरके अतिरिक्त कुमारपालने एक हजार चार सौ चौआलिस मन्दिरोका निर्माण कराया था।[1]

---

[1]देखिये प्रबन्धचिन्तामणि तथा कुमारपालचरित।

शिल्पकला

भारतीय शिल्पकला वास्तुकलासे मिश्रित है और इसमें मुख्यत अलकरण वास्तुका प्राधान्य होता है। चौलुक्यकालकी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन, आबूके मन्दिरोमें जैन तीर्थंकरोके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रसग है। इनमें वस्तुपाल और तेजपालके पूर्वजो, परिवार तथा विमल मन्दिरके सामने हस्तिशालामें हाथी और घोडेपर सवार मनुष्यो-की आकृतिया, अध्ययनकी विशेष सामग्री प्रस्तुत करती है। आबू मन्दिरो-की आकृतियोंसे हमें विदित होता है कि उस समय लोगोका पहिनावा कैसा होता था। इन आकृतियोंसे ज्ञात होता है कि लोग उस समय दाढी और बडी-बडी मूछे रखना पसन्द करते थे। कलाई और बाहामें आभूषण, कानमें एरन तथा गलेमें हार पहननेकी उस समय प्रथा थी। मन्दिरमें दर्शनके समयका पहिनावा एक ऊची धोती तथा उत्तरीय होता था। उत्तरीयको बाधेके चतुर्दिक डाल देते थे और हाथसे उसके छोर पकड रहते थे। स्त्रिया कचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थी। ऊपरका वस्त्र आधुनिक ओढनी जैसा था। स्त्रिया कानोमें बड कुडल, बाहु तथा हाथमें बड अथवा कगन जैसे आभूषण धारण करती थी।[1]

आबूके विमल तथा तेजपाल मन्दिरोमें अनक तीर्थंकरोके जीवनकी विशेष घटनाओकी आकृतिया भी निर्मित की गयी है। एक बडे पट्टमें नमिनाथके विवाह तथा सन्यासकी घटना शिल्पम चित्रित की गयी है। पट्टमें कुल मिलाकर सात खड है। इनमसे चार अधोमुखी है और तीन उर्ध्वमुखी। प्रथम खडमें नमिनाथके विवाहका जलूस, नृत्य एव गायको सहित निकल रहा है। अन्य खडोम युद्ध, सेना, वधके लिए पशुओका वाडा, विवाहमडप तथा गानवाद्य आदिके दृश्योके अकन हुए है।[2]

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात - अध्याय ४, पृ० ११८।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात। अध्याय ४, पृ० ११८।

चौलुक्य मन्दिरोंके ऊपरी भागका निर्माण, हाथी अथवा घोडोंकी पंक्तिके स्वरूपको शिलामें अंकित कर होता था। अश्वोंकी पंक्तिका उत्खनन, विशाल मन्दिरोंकी विशेषता मानी जाती थी। हस्ति आकृतिका उत्खनन इस कालके मन्दिरोंकी निर्माणकलामें विशिष्ठ उत्कृष्टता मानी जाती थी। नवताल मन्दिरमें, सिंह, नान्दी, बन्दरकी भी आकृतियां मिलती हैं।[1] यहां ये आकृतियां मन्दिरके स्तम्भोंमें ब्राइकेटके रूपमें प्रयुक्त हुई हैं। इनमें शिल्पका सर्वोत्कृष्ट नमूना उस नान्दीका है, जो विशेष मुद्रामें अपना एक पैर फैलाकर बैठा है।[2]

चित्रकला

चौलुक्य शासकोंके राज्यकालमें चित्रकलाका पूर्ण विकास तथा उन्नयन हुआ था। चौलुक्यराजाओंके दरबारमें प्राय चित्रकार आया करते थे। इस तथ्यका समर्थन फोवस्के कथनसे भी होता है। उसने लिखा है कि दरबारमें चित्रकारोंकी कलाकृतियों सहित उनका परिचय कराया जाता था।[3] कर्णदेव सोलंकीके समय भी चित्रकारका उल्लेख मिलता है।[4] एक दिन जब राजाको सिंहासनस्थ हुए बहुत दिन नहीं हुए थे, सूचना दी गयी कि बहुतसे देशोंका परिभ्रमण कर आनेवाला एक चित्रकार राजदरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा चाहता है। राजाके आदेश पर चित्रकारको सभामें उपस्थित होनेकी अनुमति दी गयी। अभिवादनके बाद चित्रकारने कहा 'आपका यश बहुतसे देशोंमें फैल गया है और बहुतसे लोग आपके दर्शनाभिलाषी हैं। मैं भी बहुत दिनोंसे आपके

---

[1] बर्गेस · ए० के० के०, आकृतियां। क्रमश १, ११, ८, १०, १३।
[2] आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय ४, पृ० १२३।
[3] रासमाला अध्याय १३, पृ० २३७।
[4] वही, अध्याय ७, पृ० १०५-१०६।

दर्शनका इच्छुक था।" इसके पश्चात् चित्रकारने राजाके सम्मुख चित्रोंका समूह रखा। उन चित्रोंमेंसे एकमें राजाके सम्मुख लक्ष्मी नृत्य करती हुई दिखायी गयी थी और राजाके पार्श्वमें उससे भी एक सुन्दरी खड़ी चित्रित की गयी थी। कर्णदेवने जब इस चित्रका परिचय पूछा तो चित्रकारने बताया 'दक्षिणमें चन्द्रपुर नगरका राजा जयकेशी है। यह उसीकी राजकुमारी मीनलदेवीका चित्र है।" यह राजकुमारी सौन्दर्यकी प्रतिमूर्ति है। बहुतसे राजकुमारोंने उससे विवाहका प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमारीने सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। बौद्ध यतियोंने भी राजकुमारीके सम्मुख बहुतसे राजाओंका चित्र रखा। कुछ समयके उपरान्त एक चित्रकार आपका चित्र लेकर वहां उपस्थित हुआ। राजकुमारीने जब यह चित्र देखा तो प्रसन्न होकर आपको अपना पति चुना। यह कहानी चित्रकारोंके सौन्दर्यमय और यथातथ्य चित्रणकी कलाके अस्तित्वकी पुष्टि करती है। ऐसे आकर्षक चित्र बनाये जाते थे, जो हृदयहारी और मनोमोहक होते थे।

इसके अतिरिक्त यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी चित्रकलाका उल्लेख आया है। लक्षाधिपतियोंके विशाल भवनोंकी दीवारोंपर जैन तीर्थंकरोंकी जीवन घटनाके चित्रांकन किये जाते थे।[1]

नृत्य और संगीत

कुमारपालके शासनकालमें नृत्य तथा गायनवादनके अनेकानेक प्रसंगोंकी चर्चा आती है। राज्यारोहण समारोहपर जब वह सिंहासनपर आसीन हुआ तो सुन्दरी नर्तकियां अपनी नृत्य तथा संगीतकलाका प्रदर्शन करने लगीं। राजप्रासादका प्रांगण मोतीके टूटे हुए हारोंसे भर गया था। सारा संसार मंगलमय गानवाद्यसे प्रतिध्वनित हो उठा।[2] कुमारपालकी

[1] मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७०।
[2] कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५।

दिनचर्याके अन्तर्गत भी गान-वाद्य सुननेका उल्लेख आता है। सन्ध्या समय राजप्रासादके देवमन्दिरमें पुष्पोंसे पूजन-अर्चनके उपरान्त नर्तकियां दीप प्रज्ज्वलित कर देवताके सम्मुख नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थी। पूजनके पश्चात् वह चारण तथा कलाकारोंसे गान-वाद्य सुनता। समारोह तथा महोत्सवके समय नागरिक संगीतका आनन्द लेते और सुसज्जित रंगमंचपर वेश्याएं नृत्य करती। इस समय उन्नत रंगमंच तथा नाटक अभिनीत करनेका भी उल्लेख मिलता है। सिद्धराज जयसिंहको वेश परिवर्तन कर, कर्ण मेरुप्रासादमें नाटक अवलोकन करते हम देख चुके हैं। एक और अन्य अवसरपर एक उद्योगपति द्वारा आयोजित नाटक अभिनयमें भी जयसिंह सिद्धराजकी उपस्थिति हम विदित है। इन विवरणोंसे स्पष्ट है कि नृत्य और नाटयकलाके प्रयोग और आयोजन समय-समयपर हुआ करते थे और जनसाधारणके अतिरिक्त राजन्यवर्ग भी उनमें दिलचस्पी लेता था। वस्तुतः नृत्य और संगीतकी कलाका समाजमें बड़ा आदर था और इसकी दिनोदिन उन्नति हो रही थी।

महान
चौलुक्य कुमारपाल

गुजरात और भारतके इतिहासमें सम्राट् चौलुक्य कुमारपालका व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण एवं अभूतपूर्व है। जब वह (विक्रम संवत् ११९९ सन् ११४२)में सिंहासनारूढ़ हुआ तो सिद्धराजकी मृत्युसे शोक सन्तप्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी।[1] इस कालके सर्वश्रेष्ठ और महान् विद्वान् हेमचन्द्रने अपनी रचना महावीरचरितमें कुमारपालको चौलुक्य वंशका चन्द्रमा कहा है और कहा है कि वह महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा।[2] तत्कालीन विद्वानोंके ये वर्णन, उनके संरक्षककी 'कवित्वमय प्रशस्ति' मात्र ही नहीं, अपितु उसकी महत्ता और सत्ता, शिलास्तम्भों, ताम्रपत्रों तथा अभिलेखोंसे भी प्रमाणित होती है। कुमारपालके एक-दो नहीं, बाईस शिलालेख एकमत होकर एक स्वरसे उसके महान् व्यक्तित्व, शासकीय और प्रभुत्वका विशिष्ट उल्लेख करते हैं। इन सभी शिलालेखोंमें इस

---

[1] एको यः सकलकुतूहलितया बभ्राम भूमण्डलम्
भीत्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्यलक्ष्मी स्वयम्।
श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजा
कस्यासौ विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्यचन्द्रः।

—मोहराजपराजय अंक १, पृ० २८।

[2] कुमारपालो भूपालश्चौलुक्यकुलचन्द्रमाः
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्डशासनः।

—महावीरचरित्र, १२ सर्ग, श्लोक ४५।

बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल सर्वगुणसम्पन्न तथा उमापति वरलब्ध था।[1]

महान् विजेता

कुमारपालके इतिहासका अनुशीलन और विशेषत उसके प्रारम्भिक जीवनका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि वह अपने भाग्यका स्वय निर्माता और विधाता था। प्रारम्भमें वह निरन्तर सात वर्षों तक शत्रुओंके मध्य मित्रहीन और साधनहीन होकर यत्रतत्रसर्वत्र भटकता रहा। उसके अदम्य साहस और दृढ निश्चयका ही यह परिणाम था कि वह शक्तिशाली जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी हो सका। राजकीय सत्ता ग्रहण करनेपर उसने न केवल चौलुक्य साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंपर अधिकार बनाये रखा अपितु स्वय अनेक राज्योंपर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्यको भी सुदृढ बनाया। वह महान योद्धा पराक्रमी और सफल सेनानायक था। कुमारपालने चौहान अर्णो राजाको युद्धमें ऐसा पराजित किया कि स्वभुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकभरी भूपाल उसके नामका एक अग बन गया।[2] कुमारपालने जिन महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की उनमें कोकणराज मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप बल्लालकी पराजय उल्लेखनीय है।[3] वसन्तविलास[4] तथा कीर्तिकौमुदी[5] से भी इस तथ्यका

परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज उमापतिवरलब्ध प्राप्त राज्य श्रीऔढप्रताप लक्ष्मी स्वयवर स्वभुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात इडि० ऐंटी० खड ११, पृ० १८१।

[1] स्वभुज विक्रम रणागण विनिर्जित शाकभरी भूपाल श्रीकुमार पालदेव'।

[2] इडि० ऐंटी० खड ४ पृ० २६८।

[3] वसन्तविलास ३ २९।

[4] बम्बई गजटियर खड १, उपखड १, पृ० १८५।

पुष्टि होती है। इतने ही विवरणसे स्पष्ट है कि कुमारपाल एक महान् योद्धा था और उसने अपने चतुर्दिकके सभी प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। युद्धमें उसे सदा विजय ही प्राप्त हुई। उसका जीवन सैनिक विजयोंकी शृंखलासे अलंकृत था। उसकी नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। साम्राज्य विस्तार उसका अभिप्रेत न था किन्तु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े हुए प्रदेशोंपर अधिकार और प्रभाव बनाये रखना, अनिवार्यतः आवश्यक था। इसीलिए शाकम्भरी और मालवाके विरुद्ध उसे बाध्य होकर युद्ध करना पड़ा था।

महान् निर्माता

कुमारपाल न केवल युद्धकी कलामें पारंगत था, अपितु शान्तिके महत्त्वको भलीप्रकार समझता और उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता था। जब देशमें शान्ति स्थापित हो गयी तो वह उत्साहपूर्वक रचनात्मक कार्योंमें प्रवृत्त हुआ। प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें वह प्रख्यात है।[1] पाटनमें उसने कुमार विहारके विशाल मन्दिरकी स्थापना की।[2] इसके पश्चात् उसने अपने पिता त्रिभुवनपालकी स्मृतिमें और अधिक विशाल तथा भव्य "त्रिभुवन विहार" का बहत्तर छोटे मन्दिरों सहित निर्माण कराया।[3] कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताका कथन है कि कुमार-पालने पाटनमें जिन चौबिस जैन मन्दिरोंकी प्राणप्रतिष्ठा करायी उनमें त्रिविहारका मन्दिर सबसे भव्य था।[4] उसने केवल मन्दिरोंका निर्माण ही न किया अपितु इसका भी ध्यान रखा कि उनकी समुचित व्यवस्था

---

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड ४, पृ० २६९।

[2] इंपि० आई० खंड ११, पृ० ५४-५५।

[3] कुमारपालप्रतिबोध।

[4] वही।

होती रहे। पाटनके बाहर उसने जो सैकडो मन्दिर बनवाये उनमें तारंगा पहाडीपर स्थित अजितनाथका मन्दिर उल्लेख्य है। इस व्यापक, विशाल और भव्य निर्माणकी प्रेरणा कुमारपालको केवल जैनधर्ममें दीक्षित होनेसे ही नही प्राप्त हुई थी, बल्कि कला कौशल और वास्तुकलाके प्रति उसका सच्चा प्रेम ही बहुत अधिक अशतक इन कार्योंका प्रेरक था।

युगप्रवर्तक समाज सुधारक

गुजरातके इतिहासमे अपने समयके महान् समाजसुधारकके रूपमें कुमारपालका नाम स्वर्णाक्षरोमे अकित रहेगा। कुछ विद्वान यह कह सकते है कि कुमारपालने जो समाज-सुधार किये वे शुद्ध समाज-सुधारकके रूपमें नही अपितु जैनधर्मकी श्रद्धाभावनासे अनुप्राणित होकर किये गये थे। किन्तु यह कभी विस्मरण न किया जाना चाहिये कि इतिहासकारके लिए ठोस परिणाम एव निष्कर्ष ही सब कुछ है। इस समय गुजरातका समाज पशुवध, द्यूत, मासाहार, मद्यपान, वेश्यागमन तथा लूटपाटके बुरे परिणामोंसे अभिशप्त हो गया था।[1] इस समय राज्यका एक नियम अत्यन्त ही निन्दा-जनक था। यह था निस्सन्तान मरनेवालोकी सम्पत्तिपर राज्य द्वारा अधिकार कर लेना। राज्यके अधिकारी बिना उत्तराधिकारीके मृत व्यक्तिके घरकी जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओपर अधिकार कर लेते थे, तभी शवको अन्तिम सस्कारके लिए ले जाने देते थे। इससे जनताको बहुत कष्ट होता था।[2] कुमारपालने राज्यमे कुछ विशेष तिथियोपर पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लघन करनेवालोको भारी आर्थिक दड और मृत्युदड तक दिया जाता था।[3] कुमारपालने निस्सन्तान

---

[1] मोहराजपराजय : अक ३, तथा ४।

[2] वही।

[3] इपि० इडि० : खड ११, पृ० ४६, बी० बी० एस० आई० २०५-७।

व्यक्तियोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर दिया।[1] हेमचन्द्रने अपने महावीरचरित्रमें भी इस घटनाका उल्लेख किया है।[2] जिनमदनने कुमारपालप्रतिबोधमें लिखा है कि निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर कुमारपालने वस्तुतः 'राज्य पितामहकी' उपाधिके लिए अपनेको योग्य सिद्ध किया।[3] यद्यपि यशपालने लिखा है कि जूआ, मद्य और वध करना राज्यमें नहीं था। इससे यह समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि कुमारपालके राज्यकालमें इनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और इनके नियन्त्रण और निर्मूलीकरणके कार्यमें बहुत ही कडाई कर दी गयी थी। हिंसा, द्यूत, और मद्यपर प्रतिबन्ध लगानेके साथ ही उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्य अधिकारकी, प्राचीन परम्पराको समाप्त कर राज्यमें सर्वत्र निषेधाज्ञा प्रचारित करायी। वस्तुतः कुमारपालके ये साहसपूर्ण सामाजिक सुधार देशमें नये युगका समारम्भ करते हैं।

साहित्य और कलासे प्रेम

कुमारपाल साहित्य, विद्या और कलाका महान् प्रेमी था। शिल्पकला, और वास्तुकलाके प्रति उसके अत्यधिक प्रेमके निदर्शन उसके बहुसंख्यक मन्दिर हैं, जिनका निर्माण उसने जैनधर्मकी दीक्षाके उपरान्त कराया।

---

[1] मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक।

[2] अपुत्रमृतप्रसां स द्रविणं न ग्रहीष्यति
विवेकस्य फल ह्येतदतृप्ता ह्या विवेकिनः।
—महावीरचरित्र : सर्ग १२, श्लोक ६४।

[3] अपुत्राणा धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थवः
त्वं तु सन्तोषतो भुंजन सत्यं राजपितामहः।
—जिनमदन : कुमारपालचरित।

सोमप्रभाचार्यका कथन है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी परिषद्में पंडितोंसे मिलता और उनसे धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार-विमर्श करता था। इनमें कवि सिद्धपालका दल राजाको सुन्दर कहानियों और कथा-प्रसंगोंके कथन-श्रवण द्वारा प्रसन्न किया करता था।[1] कवि सिद्धपालकी उस स्थानमें भी चर्चा आयी है, जहां कुमारपाल सेठ अभयकुमारको दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्था भार सौंपता है। कहते हैं कि कुमारपालके इस सुन्दर और सुविचारित चुनावपर कवि सिद्धपालने उसकी प्रशंसा की।[2] कवि सिद्धपालके अतिरिक्त उस युगके विद्वान समाजका सबसे महान् व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र उसकी राजसभाकी शोभा बढाते थे। कुमारपालकी राजसभामें उसका महामात्य कपर्दी भी प्रसिद्ध विद्वान और कवि था। हेमचन्द्र द्वारा प्राकृत व्याकरणकी रचना तथा प्राकृतका प्रादुर्भाव, इस युगकी साहित्यिक प्रगतिकी दो महान् देन हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

कुमारपालका निधन

कुमारपालका शासनकाल भारतीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्णकाल था और गुजरातके इतिहासका तो स्वर्णकाल ही था। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार जब वह सिंहासनारूढ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी। इकतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करनेके बाद इक्यासी वर्षकी अवस्थामें सन् ११७४ (वि० सं० १२३०) में उसका निधन हुआ। अंगरेज इतिहास लेखक श्रीटाडने कुमारपालके सम्बन्धमें एक विचित्र कथन यह किया है कि मृत्युके पहले कुमारपाल तथा हेमचन्द्रने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। और यदि इस्लाम न भी ग्रहण किया था

---

[1] मोहराजपराजय : अंक ४।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश

हेमचन्द्रसे अपने भावी उत्तराधिकारीके विषयमें विचार विमर्श किया था और अजयपालको ही सिंहासनाधिकारी चुना था।[1] मेरुतुंगने एक कहानीमें कुमारपालसे कहा है कि श्रीमानका एक पुत्र हुआ है। इसपर राजाने उत्तर दिया कि वह इस नगरका नहीं, गुजरातका राजा होगा।[2] कुमारपालप्रबन्धमें यह लिखा है कि वह अपने दौहित्र प्रतापमल्लको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु अजयपालने उसके विरुद्ध विद्रोह का षड्यन्त्र कर उसे विष देकर छुटकारा पा लिया।[3] यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजयपाल द्वारा राजाको विष देनेकी कहानीका अबुल्फजल और मुहम्मदखान भी उल्लेख किया है।[4] हेमचन्द्रकी यह भविष्यवाणी कि कुमारपाल मेरे अवसानके छः माससे अधिक जीवित न रहेगा, अप्रत्याशित रूपसे सत्य की गयी-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ कुचक्र की शंका उस समय और भी साधार तथा सबल हो जाती है, जब हम देखते हैं कि कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालमें धार्मिक नीतिमें भयंकर प्रतिक्रिया हुई थी।

कुमारपालका इतिहासमें स्थान

किसी शासकका इतिहासमें स्थान उस युग विशेषमें उसकी सफलताओंसे ही अंकित और स्थिर किया जाता है। पहले व्यक्तिगत वीरता और युद्ध विजयपर ही राजाकी सत्ता एवं श्रेष्ठता मान्य होती थी। इस मानदंडसे कुमारपालके जीवनपर विचार किया जाय तो विदित होता है वह महान् योद्धा और विजेता था। उसने जितने भी युद्ध किये सभीमें

[1]कुमारपालचरित १०, पृ० ११८।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १४९।

[3]बम्बई गजेटियर खंड १, उपखंड १, पृ० १९४।

[4]ए० ए० के०, खंड २ पृ० २६३ तथा एम० ए० ट्रान्स०, पृ० १४३।

निरन्तर सफलता प्राप्त की। यदि केवल इसी मानदण्डसे विचार किया जाय तो भी, कुमारपालकी गणना, महान् राजाओंमें अवश्य करनी होगी। किन्तु इतिहासके संसार प्रसिद्ध लेखक एच० जी० वेल्सने इतिहासके महान् व्यक्तित्वोंकी महत्ताका मूल्यांकन करनेका दूसरा ही मानदण्ड माना है। इसके अनुसार यह देखना होगा कि अमुक राजाने संसारको प्रगति एवं सुखी बनानेमें सफलता प्राप्त की है अथवा नहीं।[1] इस मानदण्डसे कुमारपालके कार्यों और सफलताओंपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि, वह निश्चितरूपसे इसी ध्येयको सम्मुख रखकर अग्रसर हो रहा था। सोमप्रभाचार्यने लिखा है कि कुमारपालने असहायोंके भोजन करनेके निमित्त सत्रागारकी स्थापना की। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसने एक मठका भी निर्माण कराया था।[2] उसकी यह कृपालुता और दयाभावना मानव तक ही सीमित न थी अपितु विशेष तिथियोंका उसने पशुवधपर भी प्रतिषेध लगा दिया था।[3] केवल यही नहीं, जैनधर्मके प्रभावसे उसने गुजरातके तत्कालीन समाजमें फैली सामाजिक बुराइयोंके दमनमें राज्यशक्तिका भी उपयोग किया।[4] निस्सन्तान व्यक्तियोंके मरनेपर उनकी समस्त सम्पत्तिपर, राज्यके अधिकारकी अमानवीय नीतिका उसने परित्याग एवं निषेध कर, प्रजाके प्रति अपने पितृवत प्रेमको अभिव्यक्त किया था।[5]

---

[1] स्ट्रांड मैगजीन, सितम्बर, पृ० २१६।

[2] कुमारपालप्रतिबोध।

[3] इपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ४४ तथा बी० पी० एस० आई० २०५-७।

[4] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ९३-११०।

[5] वीतरागरतेर्यस्य मृत वित्तानिमुञ्चत:
देवस्येव नृदेवस्य युक्ताभूदमृतापिता।
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४३।

इन तथ्योंके आधारपर निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें प्रमुख हो गया है। हर्षवर्धनके पश्चात् कुमारपाल अन्तिम हिन्दू महान शक्तिशाली सम्राट् था, जिसने पश्चिमोत्तर भारतको एकछत्रके अन्तगत करनेमे पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुमारपाल निश्चय ही गुजरातका सबसे बड़ा चौलुक्य राजा था।[1] उसीके शासन कालमें चौलुक्य साम्राज्य उन्नति और उत्कर्षकी पराकाष्ठापर पहुंचा। विभिन्न शिलालेखोंमें कुमारपालके नामके साथ परमभट्टारक, पारमेश्वर आदिकी जो उपाधियां हैं वे उसके महान् राजकीय प्रभुत्वकी द्योतक हैं। प्राचीन भारतमें सभी महान् राजाओंने नवीन संवत्सरका प्रारम्भ किया है। हेमचन्द्रने भी सफल युद्धोंके बाद कुमारपाल द्वारा उसी प्रकारके संवत् प्रारम्भ करनेकी घटनाका उल्लेख किया है। ये समस्त तथ्य तथा परिस्थितियां इस बातकी सूचक हैं कि महाराजाधिराज सम्राट कुमारपाल, भारतके महान् शासकोंमें विशिष्ट था तथा गुजरातके चौलुक्य राजाओंमें सबसे महान् था।[2]

कुमारपाल और सम्राट् अशोक

प्राचीन भारतके विश्वविश्रुत और सबसे महान् मौर्यसम्राट अशोक तथा बारहवीं शताब्दीमें हिन्दू साम्राज्यके अंतिम भारत प्रसिद्ध शक्तिशाली चौलुक्य कुमारपालके राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आदर्शोंमें

---

[1]महीमंडल मार्तंडे तत्र लोकान्तर गते
श्रीमान्कुमारपालोऽथ राजा रञ्जिनवायुजा।
—कीर्तिकौमुदी सर्ग २, श्लोक ४०।

[2]न केवलं महीपाला सायकैः समरांगणे
गुणैर्लोक पर्णर्वेर्निर्जिता पूर्वजाअपि।
—वही, श्लोक ४२।

आश्चर्यजनक किन्तु तथ्यपूर्ण साम्य दृष्टिगोचर होता है। अशोकने ईसा-पूर्व २३२ वर्षमें भारतको चरम उत्कर्षपर पहुचाया तो कुमारपालने हिन्दू राज्यकालके अन्तिम समय बारहवी शताब्दीम स्वर्णकालकी अवतारणा की। अशोकने मगध और मौर्य साम्राज्यका प्रभुत्व स्थापित किया, तो कुमारपालने गुजरात एव चौलुक्य साम्राज्यका आधिपत्य प्रतिष्ठित किया। जिस प्रकार अशोकके राज्यकालमें उससे कोई अधिक शक्तिशाली प्रभुशक्ति देशम न थी, ठीक उसीप्रकार बारहवी शताब्दीके भारतीय मानचित्रपर कुमारपालसे अधिक सम्पन्न कोई दूसरा राजा न था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्सन ससारके पाच महान् राजाओ-की तुलना करते हुए अशोकको ही सबसे महान् स्वीकार किया है। रोमके सम्राट कान्स्टनटाइन, मार्कस ओरिलियस, सीजर और यूनानके सिकन्दर तथा मुगल सम्राट् अकबरकी तुलना करते हुए उनमें अशोककी महत्ता इसलिए स्वीकार की गयी है, कि उसन न केवल अपन प्रजावर्गका अपितु मानवमात्रके प्रति जिस उदारता, सहिष्णुता एव विश्वव्यापक कल्याण भावनाका प्रसार प्रचार किया, वैसी नीति कार्यान्वित करनेम दूसरे सफल न हुए। प्रजावर्गके हित सम्पादनकी जिस भावनासे अशोकको 'धम्मप्रचार' के लिए प्रेरित किया था, वैसी ही अन्तर भावना कुमारपालके हृदयमें भी प्रजाजनके लिए उत्पन्न हुई थी। मानवसेवाके जिस भावने अशोकसे जीवहिंसा, त्याग, अहिंसाप्रचार, दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और साधुता का प्रचार कराया, प्राय उसी प्रकार की प्रेरणा ने कुमारपाल द्वारा सप्त व्यसनो—हिंसा, मद्यपान, द्यूत, मासाहारादिका निषेध करा, उस युगके सामाजिक और सास्कृतिक जीवनमें नवीन युगका प्रवर्तन किया। कुमारपालने मद्य, द्यूत और मृतधनापहरणसे राज्यकोषमें करोडो रुपयोकी होनेवाली आयका त्याग कर, तत्कालीन सामाजिक जीवनमे सद्भावना, सदाचार और सद्विचारका प्रचार किया।

भारतीय इतिहासमें अशोक, "बौद्धधर्मका महान् प्रचारक माना

जाता है तो कुमारपाल जैनधर्म और संस्कृतिका उतना ही बड़ा प्रसारक तथा पोषक रहा है। अशोक भी पहले शैव था और कुमारपाल भी। दोनोंने राजसिंहासनपर आसीन होकर क्रमशः आठ तथा सोलह वर्षोंके बाद बौद्ध और जैनधर्मकी दीक्षा ली तथा जीवनभर सच्चे साधकके रूपमें अपने-अपने धर्मोंका पालन किया। जिसप्रकार अशोकने बौद्ध होकर अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णु तथा आदरभाव रखा, उसीप्रकार कुमारपाल भी जैन होकर शैव सम्प्रदायका समादर करता हुआ, धार्मिक सहिष्णुताकी भावना रखता था। ब्राह्मण और श्रमणका दोनों ही आदर करते थे। अशोकने धर्म महामात्रोंकी नियुक्ति, धर्मकी रक्षा, वृद्धि तथा धर्मात्माओंके हित एवं सुखके लिए सभी सम्प्रदायोंमें कार्य करनेके लिए की थी। इससे जिसप्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म समादरकी भावना सुस्पष्ट है, उसीप्रकार कुमारपाल भी उमापतिवरलब्ध प्रौढ़प्रताप और परमार्हत दोनों विरुद धारण करनेमें गौरव मानता था। बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अशोकने प्रस्तरस्तम्भों और शिलालेखोंका उत्खनन कराया, तो कुमारपालने भी जैनधर्म सिद्धान्त एवं संस्कृतिके निमित्त सहस्रों विहारों तथा मन्दिरोंका निर्माण कराया। अशोकने बौद्ध तीर्थस्थानोंकी श्रद्धापूर्वक धर्म-यात्रा की थी तो कुमारपालने भी जैनतीर्थोंके भक्तिपूर्वक नमनके लिए संघ सहित तीर्थयात्रा की।[1]

अशोकने सड़क और सड़कके किनारे शीतल छायाके लिए वृक्ष लगाये, कुएं खुदवाये, धर्मशालाएं बनवायीं और अस्पताल खुलवाये, ठीक उसी प्रकार चौलुक्य कुमारपालने सत्रागार'की स्थापना की। यहां दीन और असहायोंको भोजन वस्त्र दिया जाता था। यहीं नहीं उसने पोषधशाला का निर्माण कराया जहां धार्मिकजनोंके शान्त एवं एकान्त निवासकी

---

[1]चलियो कुमारपालो सत्तुंजय तित्थ नयणत्थ—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

समस्त सुविधाएं सुलभ थी। कुमारपालने न केवल 'पोषधशाला' और 'सत्रागार'की ही स्थापना की अपितु इन दातव्य सस्थाओकी व्यवस्था एव सुप्रबन्धके लिए विशेष तथा विशिष्ट अधिकारीकी नियुक्ति भी की थी।[1] सुप्रसिद्ध इतिहासकार विसेण्ट स्मिथने लिखा है कि पशुओंके वधका निषेध बारहवीं शताब्दीमें कुमारपालने बडी तत्परतासे अशोककी ही भाति किया था। इसका उल्लघन करनेवालोको चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी अनहिलवाडाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया जाता था। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस न्यायालयकी तुलना, सहजमें ही अशोक द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रोंके उन न्याय अधिकारोंसे की जा सकती है, जिनके अनुसार वे न्यायालयो द्वारा सुनाये गये निर्णयोंपर भी नियन्त्रण रखते थ।[2] जिस प्रकार अशोकने बौद्धधर्मके प्रसारके निमित्त धर्ममहा-मात्रोकी नियुक्ति की थी, उसी प्रकार कुमारपालने जैन तथा शैव तीर्थों के पुनरुद्धार एव निर्माण के लिए विशेष अधिकारियोको नियुक्त किया था। हमें विदित है कि गिरनार पर्वतपर सीढियोंके निर्माणके लिए उसने श्रीअमर-को सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर उक्त कार्य विशेषरूपसे सौंपा था। इसीप्रकार भारतीय सस्कृतिके प्रतीक सोमनाथ मन्दिरके निर्माणार्थ भी उसने 'पचकुल'का सघटन किया था, जिसके निरीक्षण एव निर्देशनमें मन्दिरके निर्माणका कार्य सम्पन्न हुआ था।

अशोकने कलिंग विजयके बाद कोई युद्ध न करनेका सकल्प किया था। कुमारपालने भी साम्राज्यविस्तारके लिए आक्रमणात्मक युद्ध न किये अपितु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोडे गये साम्राज्यकी रक्षाके लिए केवल रक्षात्मक युद्ध किये। इसी प्रसगमें जिन राजाओने उसके शत्रुओका पक्ष ग्रहण किया था, उनका मूलोच्छेद उसे राजनीतिकी दृष्टिसे वाछ्य

---

[1]वही।

[2]विसेण्ट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२।

होकर करना पडा। दोनो ही शान्तिप्रिय, धर्मप्रिय तथा विद्या एव कलाके अनन्य प्रमी थ। जिसप्रकार चन्द्रगुप्तवे समय मौर्यसाम्राज्य अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त हुआ, उसीप्रकार सिद्धराज जयसिंह द्वारा विजित चौलुक्य साम्राज्य, सम्राट कुमारपालवे शासनकालम समृद्धि एव सम्पन्नताके सर्वोच्च शिखरपर पहुच गया था।

इसप्रकार सम्राट् कुमारपाल गुजरातकी गरिमाका सर्वोपरि शिखर था। 'उसके समयम गुजरात विद्या और विभुताम, शौर्य और सामर्थ्यम, समृद्धि और सदाचारम, धर्म और कर्ममं, उत्कृष्टतापर पहुच गया था। उसके राज्यमें प्रकृतिकार वैश्य भी महान् सेनापति हुए, द्रव्यलोलुप वणिकजन भी महाकवि हुए और ईर्षापरायण ब्राह्मण तथा निन्दापरायण श्रमण भी परस्पर मित्र हुए। व्यसनासक्त क्षत्रिय भी सयमी साधक बने और हीना चारी शूद्र धमशील बन। सम्राट् अशोकसे इतनी अधिक समानताके गुण रखनेवाला चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल और उसका युग, वस्तुत भारतीय इतिहासमें सुवर्णाक्षरोम अकित करने योग्य है।

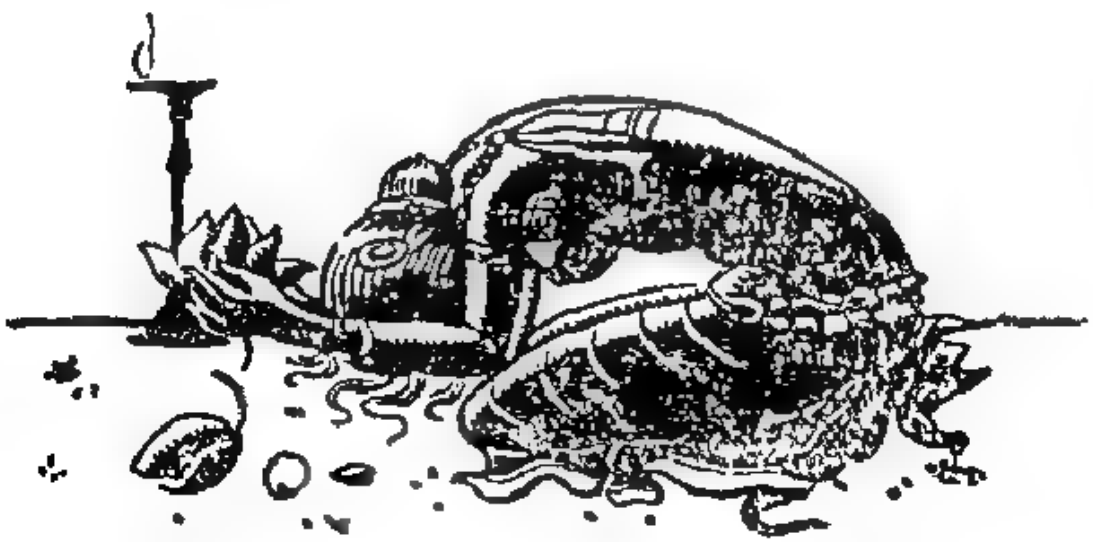

सहायक ग्रन्थोंकी सूची

मूलग्रथ

हेमचन्द्र द्वयाश्रयकाव्य, पी० एल० वैद्य, पूना द्वारा सम्पादित।
हेमचन्द्र महावीरचरित।
सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोध, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या १५
जयसिंह कुमारपाल चरित कान्ति विजय जानी, बबई द्वारा सम्पादित।
मेरुतुग प्रबन्ध चिन्तामणि, सम्पादक, जिनविजय मुनि, कलकत्ता।
मेरुतुग थेरावली, ज० बी० आर० ए० एस०, खड ६, पृ० १४७।
यशपाल मोहराजपराजय, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या ६, १९१८
उदयप्रभा सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, गायकवाड ओरियटल सिरीज परिशिष्ट २, पृ० ६७, ६०।
सोमेश्वर कीर्ति कौमुदी सम्पादक, ए० बी० कथावाट, बम्बई सस्कृत सिरीज सख्या २५।
बालचन्द्र वसन्तविलास, गायकवाड ओरियटल सिरीज, सख्या ७, १९१७।
जयसिंह हम्मीर मदमर्दन, गा० ओ० सिरीज, सख्या १०, १९२०।
चरित्र सुन्दर कुमारपाल चरित, आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर।
चन्द्रप्रभा प्रभावक चरित, सम्पादक जिनविजय मुनि।
पुरातन प्रबन्ध सग्रह सपादक जिनविजय मुनि।
जिनमदन कुमारपाल प्रबन्ध।

मुसलिम इतिहास

जियाउद्दीन तारीख ए फिरोजशाही, इलियट खड ३, पृ० ९३।

निजामुद्दीन तबकात ए अकबरी, बिबलिओथिका इनडिका।
तारीख ए फिरिश्ता ब्रिगम्, खंड १।
आइन ए अकबरी ब्लोचमन एंड जरेट, खंड २।
जफरुल वली वी मुजफ्फर वा अलीह गुजरातका अरबीम इतिहास।
तबकात ए नसीरी रावर्ट कृत अनुवाद, खंड १।
मीरात ए अहमदी सैयद नवल अली, गा० ओ० सिरीज, खंड ३३।
किताब जैनुल अखबार अबू सईद, सम्पादक नाजिम बरलिन।
तजुल मासीर आव हसन निजामी इलियट खंड २, पृ० २२६।

आधुनिक ग्रंथ

फोर्बस् रासमाला, सम्पादक रौलिंगसन, आक्सफोर्ड १९२४, खंड १।
टाड एनल्स एंड एंटीक्युटीज़ आव राजस्थान, सम्पादक, क्रूक आक्सफोर्ड।
बेली हिस्ट्री आव गुजरात, १८८६, लन्दन।
कमिश्नरियट हिस्ट्री आव गुजरात।
केम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया खंड ३, अध्याय २, ३, ५ तथा १३।
बर्गेस एंड कसन्स आर्किलाजिकल सर्वे आव इंडिया। उत्तरी गुजरात।
बर्गेस एंड कसन्स आर्किटेक्चरल एंटीक्वीटीज़ आव नारदरन गुजरात।
डाक्टर व्हूलर ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात।
डाक्टर व्हूलर उबर दस लेबन दस जैन मौंक्स हेमचन्द्र।
एच० डी० सकालिया आकलाजी आव गुजरात, नटवरलाल, बम्बई।
के० एम० मुन्शी गुजरात नो नाथ, खंड १ से ५, बंबई।
के० एम० मुंशी ग्लोरी दैट वाज़ गुजरात।
एच० सी० रे डाइनस्टिक हिस्ट्री आव नदर्न इंडिया खंड १, २।
कसन्स चालुक्यन आर्किटेक्चर, ए० एस० आई०, १९२६।
विंसेंट स्मिथ जैन स्तूप एंड अदर एंटीक्वीटीज़ आव मथुरा।
विंसेंट स्मिथ ए हिस्ट्री आव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलान।

जेम्स फर्ग्यूसन : हिस्ट्री आव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।
डाक्टर मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर फ्रोम वेस्टर्न इण्डिया।
साराभाई एम० नवाब : जैन चित्र कल्पद्रुम।
साराभाई एम० नवाब : जैन तीर्थज आव नदर्न इण्डिया।
मुनि श्री जिनविजय : राजर्षि कुमारपाल।

गजेटियर

गजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडेन्सी।
राजपूताना गजेटियर।
इम्पीरियल गजेटियर।
गजेटियर आव नार्थ वेस्टर्न फ्रान्टियर प्राविन्स।

जर्नल

इपिग्राफिया इंडिया।
इंडियन एंटीक्वेरी।
जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी।
जर्नल आव बाम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी।
पूना ओरियंटलिस्ट।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट व्यक्ति

अ

अजयदेव ३३, २४३
अनुपमेश्वर ३७
अभय ४०, २१६
अलाउद्दीन ४२, २०५, २५०
अबुलफजल ४२, ८५
अजयपाल ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, १५१, १५४, २१२, २४५, २६५, २६६
अरणोराजा (अण) १०३, १०४, १०७, १०८, १०६, ११०, १११, ११२, ११३, ११६, ११७, १२३, १४१, १७५, २६०
अशोक २६८, २६६, २७०, २७१, २७२
अलहणदेव १६२
अलिग १६६
अभयकुमार १७३, २३६, २६४

आ

आम्बड ११८, ११६, १२०

उ

उदयन ७६, ८०, ८२, ८३, ८५, ६६, १०७, १२०, १२१, १३७, १७५, १६०, १६१, २२७, २४४
उदयचन्द्र २४३
उदयमति २४६

ए

एलिफिनिस्टन २७, ५८, ६१
एडवर्ड्स १३३

क

कुमारपाल इति० सामग्री० २७, २८, २६, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ४०, ४२, ४३, ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७१, ७२। प्रारम्भिक शिक्षा ७५, ७६, ७७, ७८, ७६, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६। निर्वाचन ८६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८,

९९, १००; सैनिक अभियान १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४. १२५, १२६, १२७, राज्य और शासन १३२, १३६, १३९, १४०, १४१, १४३, १४४, १४६, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५४, १५६, १५७, १५८, १६०, १६१, १६२, १६३, १६७, १६९, १७०, १७३, १७४, १७५, १७६, १७८, १७९, १८० । आर्थिक-सामा० स्थिति १९०, १९१, १९३, १९४, १९५, १९७, २०१, २०२, २०४, २०५, २०७, धार्मिक-सांस्कृ० अवस्था २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६ । साहित्य और कला २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २५०, २५१, २५४। चौलुक्य कुमार-पाल २५९ से २७२ तक।

कुतुबुद्दीन ४२
कीर्तिराज ४७
कुलोत्तुग ५१
कुब्ज विष्णुवर्धन ५२
कर्णदेव ५३, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७५, ७६, ७८, १२७, १४८, १९२, २४९, २५३, २५४
कश्मीरादेवी ७१, ७२, ७५
कृष्णदेव (कान्हदेव) ७८, ८६, ९०, ९१, ९२, ९३, ९७, ९८, १३७
कर्ण १२२
कर्ण द्वितीय १३७
कपर्दी १७८, १७९, २४४, २६४
कृपासुन्दरी १९३
कुबेर १९९, २०३, २०४, २३४, २३५

ख

खलादित्य १५६, १५७
खेंगण चतुर्थ २५०

ग

गुणचन्द्र आचार्य ३१
गुमदेव ३९
गयाकर्ण १२३
गूहरिपु १७७

च

चरित्र सुन्दर ३३
चालुक्य विक्रमादित्य ३३
चामुण्डराज ३६, ६५, ६७, ६८, ६९, १६०
चाहड ३८, ११२
चोडदेव ५१, ५२
चुकुलादेवी ७१, ७२, ७५, ७८

ज

जिनमदन ३३, ३४, ७८, ८२, ८३, ८४, १९३
जयसिंह सूरि ३३, ३४, १०३, १०४, १२३, १२४, १२५, २२३, २२४, २४५, २६५
जियाउद्दीन बरानी ४२
जयसिंह द्वितीय ५२, ६६, ६७
जगलराज १०६

ट

टाड ५४, २६४

त

त्यागभट्ट १०४, १०५
तेजपाल ११७ १३८, १५१, १९१, २५२

द

दुर्लभराज ६५, ६६, ६७, ७०
देवपाल ६५
देवसूरि २१३, २४३, २५०

ध

धवल ३९

न

नूलक ३४
नयनदेव ३४
नेमिनाथ ४०, १७३, २१६ २१७, २१९
निजामुद्दीन ४२
नागड १५६

प

प्रभाचन्द्राचार्य ३२
प्रतापसिंह ३७

पार्श्वनाथ ३८, ४०
पुण्यविजय ४१, २०५

फ

फ्लीट २७
फोर्बस् ३३, ५८, ६१, ८९, १८४, १६८, १६९, १७०, १८४, १८८, १९०, १९५, १९७, २०१, २०२, २१४, २२९, २३०, २४०, २४७, २५३
फरिश्ता ४२

ब

बुद्धराज ५२

भ

भोजराज ३१
भीमदेव ४२, ५३, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७१, ७२, ७५, १२७, १३२, १६१, १९५
भुवनादित्य ५७, ६१
भूराजा ६१
भूवड ६१
भूपति ६२, ६३
भीमदेव द्वितीय ६८, ७०, १५१, १५५
भोपालादेवी ८२, ९६, १४२, १९३, १९५
भावबृहस्पति ११४, १८९, २१३, २२८, २५०

म

मल्लिकार्जुन २८, ११७, ११८ ११९, १२०, १२३, १७६, २६०
मेस्तुग ३१, ३२, ५७, ५८, ५९, ६०, ६४, ६८, ७६, ७८, ८३, ८९, ९६, ९८, १०८, १२०, १२६, १४९, १७६, १८३, २४०, २५०, २६६
मूलराज ३१, ३५, ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, १२७, १३२, १३७, १७७, १८७, १८८, २१२, २४३
मुजराज ३१
महादेव ३६, ३९, १५१, १५४, १६१, १९०
महिपाल ५६, ६५, ६८, ६९, ७१, ७२, ९२
मूलराज द्वितीय ६६, ६७, ६८, ६९, ७०
मीनलदेवी ७१, १७२, २४९, २५४
मुजाल १७५, १९१, १९५

य

यशपाल ३२, ३३, ४६, १०४, १३८, १५५, १६७, १६८, २०१, २०३, २२१, २२५, २३३, २३४, २४५, २४७, २५४, २६३

यशोधवल ३५, ११७, १२०

योगराज १६६, १६६

यशोवर्मन १७७

र

राजराजा ५०, ५२

राजी ५६, ५७, ५८, ५६, ६०, ६१, ६२, ६८

रामचन्द्र २४३

ल

लीलादेवी ५६, ५७

ललितादेवी ५८

व

वनराज ३१, १३७, २०१, २०२, २१६, २२७

वस्तुपाल ३१, १३८, १५१, १६१, २२८, २५२

विल्हण ३३, ५०

विक्रमादित्य ४६, १४०, १७७

विजयादित्य ५०

विमलादित्य ५०

विजराज ५४

वल्लभराज ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०

वहड ६६, १०७, १०८, १०६, ११०, १२७, १६०, २१८, २४७

वल्लाल १०७, १०८, ११३, ११४, ११५, ११७, १२०, १२३, २६०

विक्रमसिंह १०८, ११६, ११७, १२४

विमल १४८, १६२, २५२

वयजलदेव १५४, १५५, १५६, १५६

वपनदेव १५५, १५६, १५६

वुणराज १७७, १७८, १८०, १६१, २१४

श

शंकरसिंह ३४, १५५, १५६

श्रीपाल ३०, ३६, २४०, २४२

श्रीकृष्ण मिश्र ३३

स

सिद्धराज जयसिंह २८, ३१, ३६,

४१, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८५, ८६, ८९, ९०, ९१, ९२, ९४, ९६, १०७, ११०, १२७, १३७, १४०, १४९, १५०, १५५, १५९, १६२, १६७, १७२, १७५, १७७, १७८, १८०, १९१, १९९, २०४, २०५, २०८, २१३, २१६, २१७, २२७, २२८, २२९, २३९, २४०, २४३, २४६, २४९, २५५, २५९, २६०, २६१, २७१

सोमप्रभाचार्य २९, ३०, ६५, ९१, १४३, १४४, १४९, १८३, २२१, २४०, २४२, २४३, २४७, २६४, २६७

सिद्धपाल ३०, १४३, १७३, २२२, २४०, २४२, २६४

सोमेश्वर ३५, ३८, ४९, १६२

सामन्तसिंह ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, १५६, २०१

सौसर १२०, १२१, १२२, १२४, १३७

सोमराज १५७

ह

हेमचन्द्र २८, २९, ३०, ३२, ३३, ४८, ४९, ५३, ५९, ७६, ७७, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ९१, ९२, १०५, १०८, ११३, ११७, १२३, १२४, १४३, १४८, १५०, १७९, १८३, १९४, २०१, २०८, २११, २१२, २१३, २१४, २१६, २१७, २१८, २१९, २२१, २२२, २२३, २२४, २२६, २२७, २२९, २३०, २३१, २३२, २३५, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २५०, २५१, २५९, २६३, २६४, २६५, २६६, २६८

हर्षगनी ५३

हरिपाल ६८, ७१, ७२, ९२

हर्षवर्द्धन २६९

क्ष

क्षेमराज ६५, ६६, ७१, ७२, ७५

त्र

त्रिभुवनपाल ३५, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७१, ७२, ७५, ७६, ७८, २६१

त्रिलोचनपाल ४७

ऐतिहासिक स्थान

अ

अणहिलपुर (पाटा) २८, ४१, ४२, ४७, ५४, ५७, ५८, ६०, ६२, ६४, ६५, ७५, ७६, ७८, ८१, ८२, ८३, ८६, ८६, ११३, ११४, ११५, ११६, १२७, १३२, १३४, १३६, १३७, १३८, १६१, १६३, १६४, १६६, १६७, १६६, १७८, १८४, १८५, १६७, २००, २०४, २१८, २२७, २३०, २४६, २७१

अयोध्या ३३, ५०, ६३

आनन्दपुर ३६

अवन्ती १०३, १२७, १३२

अजमेर १७८, १८०

आ

आबू ३५, ४६, १०८, ११६, ११७, १५५, १८३, २५२

आभीरप्रदेश १०३

उ

उदयपुर ३८, ११२, ११६, १२७, १३२

उज्जयनी १०७, १८३, २१५

क

कश्मीर ३३

काठियावाड ३४, १२०, १२१, १२२, १२४, १२७, १३२, १३७, १६०, १६१, १८३, १८७, २१५, २२२, २२८, २२६

किरादू ३५, ३६, ३७, ३८, १५६, १६२, १७१, २०१, २२५

कन्नौज ५४, ५६, ५७, ६१, ६३, ६४, १८३, १८७, १६६

कल्याण ५४, ५७, ६३, ६४, ८४

कल्याणकल्प ५६, ६१

कुरुमण्डल १०३

कच्छ १०४, १०८, १२४, १२६, १२७, १३२, १७७, २०६

काची १०५

कोंकण ११७, ११६, १२६, १५७, १६३, १६७, १७७ १८०, २०६
कर्नाटक १२६, २१६
कीट १२६
कर्ण १२६

ग

गोद्राहक ३४
ग्वालियर ३८
गिरिनार ३८, २१४, २१६, २२२, २५०, २७१
गाला ३६, १६१
गोहाद ४६
गुर्जर १२६
गुजरात १२६, १२७, १३१, १३२, १३७, १४१, १५८, १६७, १७७, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८६, १६०, १६३, २०३, २०४, २०५, २११, २१२, २१५, २१६, २१७, २२५, २२७, २३६, २२६, २६२

च

चित्रकीर्ति ३५
चित्तौड ३५, ११२, २१४, २२६
चित्रकूट १०३, २१५
चन्द्रावती ११६, ११७, १४८, १६२, २०६

ज

जनागढ ३४, ३६, १२१, १५५, १५८, २२२, २५०
जोधपुर ३५, ३६, ३७, १२७, १३२
जालोर ३८, १०३, २१६, २४४
जालन्धर १०४, १०६
जवण १०५
जागल १२६

झ

झुनझूवारा १७५, २४८
झालोर १७७

त

तिलगाना १०५
तुरुष्कभूमि १२५
तारंगा २१६, २६२

थ

थारापद्र ३३

द

दोहाद (दधिपद्रमण्डल) ३४,

ग्रन्थ

अ

अष्टदश सहस्री २४१

अभिधान चिन्तामणिदशिनाम-
माला २४१

अध्यात्मोपनिषद २४६

आ

आईन ए अकबरी ८५

उ

उदयसुन्दरी २४५

क

कुमारपालचरित्र २८, ३३, ७८, ८२, १०३, १२१, १२३, १२४, १२५, १४४, १७६, १६७, २०४, २२३, २२४, २६५

कुमारपालप्रतिबोध २६, ३१, ३३, ७१, ६१, ६४, १४३, १४४, १४६, १४६, १५०, १६६, १७३, १६७, २०४, २०५ २१७, २३२, २४२, २६१

कीर्तिकौमुदी ३३, ४७, ११४, ११६, २४६, २६०

कुमारपालप्रबन्ध ३३, ३४, ६४, २६५

कलिंगतुम्भारानी ५०

काव्यानुशासन विवेक २४१

छ

छन्दोनुशासन २४१

ज

जमैयल उल-हिकायत १३४

त

तत्त्वसग्रह २४६

थ

थरावली ३२, ६४, ६५, ६८, ६४, २४६

द

द्वयाश्रयकाव्य २८, ५३, ५६, ७०, १०५, १०७, ११३, १२३, १२४, १२५, १३४, १३७, १४६, २१६, २२७, २३४, २४१, २४५

प

प्रबन्धचिन्तामणि ३१, ३२, ६५,

७५, ७८, ८३, ८४, ८६, ९३, ९४, ९५, १२१, १३४, १३७, १४९, १७६, २२२, २४६, २४९, २६४
प्रभावकचरित्र ३२, ८१, ८३, ८४, ८६ ९३, ९५, १५०, १७६, २४०, २४६
पुरातनप्रबन्धसग्रह ३२, ९३, ९५, २२२
प्रबोधचन्द्रोदय ३३
पृथ्वीराज रासा ४८, ५३, ५५, १९५
प्रमाणमीमासा २४१
प्रबन्धशत २४४

ब

बुद्धिसागर २४४

म

महावीरचरित्र २९, १२४, २२१ २५९ २६३
मोहराजपराजय ३२, ९५, ९६, १०४, १३८, १५५, १६७, १७०, १७७, १८३, १९३, २०३, २२५, २३३, २३४, २४५

य

योगशास्त्र २४१, २४६

र

रासमाला ३३, १६९, २३०
रत्नमाला ४८

व

विक्रमाकदेवचरित ३३, ५०
विचारश्रेणि ९४, २४६
वसन्तविलास ३३, १११, ११४, २६०
वीरोचनपराजय २४०
वीतरागवस्तु २४१
वस्तुपालचरित ५३, २४६

श

शुक्रनीति ९९
शतार्धकाव्य २४३

स

सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी ३३, १११, २४६
सरस्वतीपुराण २२८
सिद्धहेम शब्दानुशासन २४१, २४५
सुमतिनाथचरित २४२, २४३
सिन्दूरप्रकर २४२

ह

हम्मीरमदमर्दन ३३, २४५

त्र

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित २४१

ज्ञानपीठ के सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी
- हमारे आराध्य ३)
- संस्मरण ३)
- रेखाचित्र ४)

श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय
- शेरो-शायरी ८)
- शेरो-सुखन [पाँचोभाग] २०)
- गहरे पानी पैठ २॥)
- जैन-जागरणके अग्रदूत ५)

श्री० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
- आकाशके तारे · धरतीके फूल २)
- जिन्दगी मुसकराई ४)

श्री० मुनि कान्तिसागर
- खण्डहरोंका वैभव ६)
- खोजकी पगडंडियाँ ४)

डा० रामकुमार वर्मा
- रजतरश्मि [नाटक] २॥)

श्री० विष्णु प्रभाकर
- संघर्षके बाद [कहानी] ३)

श्री० राजेन्द्र यादव
- खेल खिलौने [कहानी] २॥)

श्री० मधुकर
- भारतीय विचारधारा २)

श्री० सम्पूर्णानन्द
- हिन्दू विवाहमें कन्या-दानका स्थान १)

श्री० हरिवंशराय बच्चन
- मिलनयामिनी [गीत] ४)

श्री० अनूप शर्मा
- वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)

श्री० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०
- मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)

श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी
- वैदिक साहित्य ६)

श्री० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य
- भारतीय ज्योतिष ६)

श्री० लक्ष्मीशंकर व्यास एम० ए०
- चौलुक्य कुमारपाल ४)

श्री० नारायणप्रसाद जैन
- ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] ६)

श्रीमती शान्ति एम० ए०
- पंचप्रदीप [गीत] २)

श्री० 'तन्मय' बुखारिया
- मेरे बापू [कविता] २॥)

श्री० राजकुमार जैन साहित्याचार्य
- अध्यात्म-पदावली ५)

श्री० बैजनाथसिंह विनोद
- द्विवेदी-पत्रावली २॥)